MAPA- 505

तुलनात्मक लोक प्रशासन (भाग- 1)

COMPRATIVE PUBLIC ADMINISTRATION (Part- 1)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

फोन नं0- 05946- 261122, 261123

टॉल फ्री नं0- 18001804025

ई0 मेल- info@uou.ac.in

वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 अशोक कुमार शर्मा, सेवानिवृत्त लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	प्रो0 उमा मेदुरी लोक प्रशासन विभाग, इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त वि0वि0 दिल्ली
प्रो0 बी0 अरूण कुमार लोक प्रशासन विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त वि0वि0 कोटा, राजस्थान	प्रो0 एम0एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
पाठ्यक्रम संयोजन और सम्पादक	
डॉ0 घनश्याम जोशी लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 मनीषा माथुर, लोक प्रशासन विभाग कनोरिया राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9
डॉ0 जाकिर हुसैन, सेवानिवृत प्रोफेसर, बरेली, उत्तर प्रदेश	10, 11, 12

प्रकाशन वर्ष- 2020

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण- 2020

प्रकाशक निदेशालय- अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अनुक्रम

तुलनात्मक लोक प्रशासन (भाग- 1)

खण्ड- 1 तुलनात्मक लोक प्रशासन- अर्थ, दृष्टिकोण, पर्यावरण	
1.तुलनात्मक लोक प्रशासनः अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व	1 – 20
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन: अध्ययन के दृष्टिकोण - परम्परागत, दृष्टिकोण, अर्वाचीन दृष्टिकोण- व्यवहारवादी दृष्टिकोण	21 – 50
3. प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश, प्रशासन का सामाजिक परिवेश, राजनीतिक पारवेश, आर्थिक परिवेश	51 – 69
खण्ड- 2 प्रशासन की विशेषताएं	
4. विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताएं	70 – 86
5. विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएं	87 . 108
6. भारतीय प्रशासन की विशेषताएं	109 – 136
खण्ड- 3 प्रशासन पर नियंत्रण	
7. प्रशासन पर कार्य पालिका का नियंत्रण,	137 – 149
8. प्रशासन पर संसदीय(विधायी) नियंत्रण	150 – 173
9. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण	174 – 187
खण्ड- 4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान- 1	
10. तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान (मॉडल)- मैक्स बेबर का नौकरशाही मॉडल	188 – 202
11. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण	203 – 222
12. विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल	223 – 251

इकाई-1 तुलनात्मक लोक प्रशासन अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा

1.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताऐं

1.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन

1.3.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन विशेषताऐं

1.3.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति

1.3.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

1.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन से सर्वथा भिन्न है। इसमें लोक प्रशासन के अध्ययन को नवीन और महत्व पूर्ण आयाम प्रदान किया गया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन से तात्पर्य है दो या दो से अधिक देशों, प्रान्तों, क्षेत्रों या स्थानों की लोक प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन तुलनात्मक रूप से किया जाये। यद्यपि तुलनात्मक लोक प्रशासन में पश्चिमी व्यवस्थाओं का अधिक अध्ययन किया गया है किन्तु इसकी, वर्तमान प्रवृति विकासशील देशों की प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करना है। प्रस्तुत इकाई

तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को विस्तार रूप से प्रस्तुत करेगी साथ ही इसके क्षेत्र एवं महत्व पर भी प्रकाश डालेगी।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन क्या है इसकी अवधारणा को जानेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व के विषय में भी जान पायेंगे।

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा

अवधारणा किसी विचार या वस्तु के सार सम्बन्धित सिद्धान्त को कहते है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में एक नवीन अवधारणा है। इसका उदय कुछ वर्ष पूर्व द्वितीय विश्व युद्ध के समय हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध तक तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में नहीं जाना जाता था, लेकिन इस विश्व युद्ध के बाद सम्पूर्ण विश्व के समक्ष कुछ ऐसी नयी समस्याऐं सामने आयीं जिनके लिये अध्ययन का प्राचीन एवं परम्परागत दृष्टिकोण अपर्याप्त सिद्ध हुआ और नवीन दृष्टिकोण की खोज की जाने लगी, फलस्वरूप लोक प्रशासन को तुलनात्मक रूप देकर उसके अध्ययन को विकसित किया गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन में विश्व में उपस्थित विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसमें लोक प्रशासन के अध्ययन के कुछ ऐसे नियम, सिद्धान्त एवं मान्यताऐं प्रतिपादित की जाती हैं, जिन्हें सभी देशों में लागू किया जा सके। अर्थात् विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं राजनीतिक पर्यावरण में लागू होने वाले सिद्धान्तों का निर्माण इस तुलनात्मक लोक प्रशासन के कारण ही सम्भव हो पाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय उत्पन्न समस्त समस्याओं के निराकरण में पारम्परिक दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता के कारण उसके बाद के वर्षों में विभिन्न सामाजिक विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण को विशेष महत्व देना शुरू कर दिया। एडविन स्टीन, साइमन तथा वाल्डो जैसे विद्वानों ने लोक प्रशासन को ओर अधिक वैज्ञानिक बनाने हेतु वैज्ञानिक साहित्यों की व्याख्या पर बल देना प्रारम्भ किया। परन्तु राबर्ट डहाल ने कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता है, तब तक विज्ञान होने का इसका दावा खोखला है।'' किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुशासन की तरह लोक प्रशासन में भी तुलनात्मक विश्लेषण की विधि का सुनिश्चित महत्व

है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर लोक प्रशासन के विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-साहित्य तथा प्रशासकों के तुलनात्मक विश्लेषण पर बल देना प्रारम्भ किया। अतः अब लोक प्रशासन को वैज्ञानिक बनाने हेतु किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुसंधान की तरह आजकल लोक प्रशासन के अध्ययन में तुलनात्मक अध्ययन को अधिक महत्व दिया जा रहा है। इस विषय के विकास के प्रारम्भिक चरणों में वाल्डो, फैरेल, हैडी आदि विद्वानों ने महत्व पूर्ण भूमिका निभायी और इसके बाद में तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को अधिक समृद्ध बनाने में फ्रेड रिग्स, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, रिचर्ड गेबल, फैरेल हैडी आदि विद्वानों ने महत्व पूर्ण योगदान दिया।

1.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताऐं

तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास अभी शैशव-अवस्था में है। अभी भी इस विषय पर प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका है। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताओं के सम्बन्ध में रॉबर्ट जैक्सन द्वारा व्यक्त मान्यताओं को भी प्रश्रय दिया जाता है। रॉबर्ट जैक्सन ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की चार मान्यताओं का उल्लेख किया है-

1. प्रशासनिक व्यवहार में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनका व्यवस्थित विश्लेषण किया जा सकता है।
2. प्रशासन के क्षेत्र के अर्न्तगत जो पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, उनका अध्ययन विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रों के सन्दर्भ में किया जा सकता है।
3. तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों की परीक्षा की जा सकती है।
4. ऐसी आशा की जाती है कि इस प्रकार का तुलनात्मक विश्लेषण प्रायोगिकता और सार्वभैमिकता की भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए सामान्यीकरण के विविध स्तरों पर प्रशासनिक प्रतिरूपों से सम्बन्धित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। अन्ततः इस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों को लोक प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों में स्वीकृत किया जा सकेगा।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताओं के सन्दर्भ में जो प्रारम्भिक अध्ययन किये गये थे, उनमें वुडरो विल्सन ने अमेरिकी प्रशासन को पढ़ने, समझने तथा सुधारने के लिए यूरोपीय अनुभव पर जोर दिया था। जो प्रारम्भिक अध्ययन किये गये थे, उनमें अध्ययन का मुख्य केन्द्र स्थानीय समस्याएँ ही थीं, जिनका सम्बन्ध यूरोपीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं तक ही सीमित था। मात्र प्रसंगवश ही अन्य व्यवस्थाओं के नामों का उल्लेख किया गया था। लेकिन रॉबर्ट जैक्सन ने जो मान्यताएँ प्रकट की हैं, वह लगभग समस्त देशों में लागू होती हैं।

1.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद के काल को पुराने और नये लोक प्रशासन के साहित्य के मध्य एक विभाजक रेखा माना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विकासशील देशों को ज्यों-ज्यों नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, त्यों-त्यों लगभग इसी रफ्तार में लोक प्रशासन का साहित्य समृद्ध और सबल होने लगा। इस काल में उठने वाली समस्याओं के समाधान में लोक प्रशासन अत्यधिक संघर्षशील बन गया। तत्पश्चात उसके स्वरूप और प्रकृति में अनेक बदलाव आये। इस दौरान अमेरिकी विद्वानों ने अनेक तुलनात्मक अध्ययन किये तथा धीरे-धीरे उनकी तुलना का केन्द्र सिर्फ यूरोपीय देश ही न होकर समस्त विश्व की प्रशासकीय व्यवस्थाएँ बनने लगीं। जिन प्रमुख कारणों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में अपना योगदान दिया, वे निम्नलिखित हैं-

1. **परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता-** समय की बदलती हुई परिस्थितियों में ऐसा महसूस किया जाने लगा था कि नवीन चुनौतियों के सन्दर्भ में परम्परागत दृष्टिकोण अपर्याप्त है। इसी सम्बन्ध में वाल्डो का एक कथन उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने ये कहा कि, यह (परम्परागत) दृष्टिकोण संस्कृति अवरोधी था तथा मुख्यतः पश्चिमी यूरोप के देशों तथा वैधानिक और औपचारिक लेखों तक ही सीमित था। उनका मानना था कि यह दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक था विश्लेषणात्मक या समस्या-समाधानकारी नहीं था। इसमें विद्यार्थी केवल एक देश के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर सकता था, लेकिन दूसरे देशों से उसकी समानता या अन्तर देखने में असमर्थ था।

   परम्परागत दृष्टिकोण की इन्हीं सब कमियों के कारण लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा तुलनातमक अध्ययन प्रणाली का प्रचलन और प्रसार किया गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रवृति लोक प्रशासन के अध्ययन को संकीर्णता के दायरे से निकालकर व्यापक आधार भूमि पर ला खड़ा करना है।

2. **अनुसंधान के नवीन उपकरणों तथा धारणाओं का उदय-** लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा ये प्रयास किया गया कि लोक प्रशासन को परम्परागत दृष्टिकोण के संकुचित आवरण से बाहर निकाला जाये और उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया जाये। उनका मानना था कि यदि लोक प्रशासन को प्रभावशाली बनाना है तो उसे तुलनात्मक रूप देना होगा। तुलनात्मक लोक प्रशासन ही यथार्थ की खोज करता है और इसका लक्ष्य कानून और औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन से आगे बढ़कर, उन सब संरचनाओं और यथार्थ प्रशासनिक प्रक्रियाओं का परीक्षण करना होता है, जो लोक प्रशासन और

नीतियों के निर्धारण में एक प्रभावशाली भूमिका अदा करती है। अतः ये कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने हेतु भी तुलनात्मक अध्ययन का प्रयोग किया जाने लगा।

3. **अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता-** तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा के विकास के कारणों में से एक प्रमुख कारण ये भी था कि अब बदलते परिवेश में विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक निर्भरता भी बढ़ने लगी थी। अब ये महसूस किया जाने लगा था कि यदि देशों में प्रशासनिक सुधार किया जाना है, तो उसके लिये विभिन्न राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को जान कर और उनके मध्य तुलना स्थापित कर के ही किया जा सकता है। दूसरे देशों में किये जाने वाले विभिन्न प्रशासनिक प्रयोगों का लाभ प्राप्त करने के लिये अन्य देश अपनी सुविधा, वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार उचित कदम उठा सकते हैं और वे सब तुलनात्मक अध्ययन से ही संभव है।
4. **सामाजिक सन्दर्भ का महत्व-** लोक प्रशासन तथा सामाजिक संरचना आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। यह घनिष्ठता भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में एक महत्व पूर्ण कारक मानी जाती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन ही वो माध्यम है, जिसके आधार पर ये ज्ञात होता है कि एक ही प्रकार की प्रशासनिक संस्थाऐं दो देशों में अलग-अलग व्यवहार करती हैं और उनके परिणाम भी अलग-अलग होते हैं। इन सब का कारण हर देश की सामाजिक रूप रचना का वहाँ के प्रशासनिक संगठन के रूप तथा प्रक्रिया को प्रभावित करना है।
5. **विकासशील राष्ट्रों का सम्पर्क में आना-** युद्ध के समय पश्चिमी और विशेषतया अमेरीकी विद्वानों का बहुत से विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ, जिनमें इन्होंने कुछ नई विशेषताऐं देखीं और जिसमें उसकी रुचि पैदा हुई।
6. **नई घटनाओं का प्रशासनिक ढ़ाँचों पर प्रभाव-** वैज्ञानिक, सैद्धान्तिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में होने वाली नई घटनाओं का प्रशासनों के ढ़ाँचों के स्वरूप पर प्रभाव पड़ा, जिसमें तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में रुचि को प्रोत्साहन मिला।
7. **विशेषताओं और मौलिकताओं को भली-भाँति जानने हेतु-** द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका, ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य विकसित देशों के प्रशासकों और विद्वानों का विकासशील देशों सहित अन्य देशों के लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा व्यवहार से परिचय हुआ। उन्हें विदेशी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अनेक नवीनताएँ और विशेषताएँ नजर आयीं। इन विशेषताओं और मौलिकताओं को भली प्रकार जानने के उद्देश्य से उनमें तुलनात्मक दृष्टिकोण(Comparative Approach) के प्रति रुचि जागृत होने लगी।

8. **लोक प्रशासन को वैज्ञानिकता की कसौटी पर परखना-** द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विभिन्न सामाजिक शास्त्रों ने अपने विषय का अधिकाधिक वैज्ञानिक होने का दावा प्रस्तुत किया। लोक प्रशासन उन शास्त्रों से अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में वैज्ञानिक होने का खोखला दावा नहीं पेश कर सका। 1947 में रॉबर्ट ए0 डॉल ने भी अपने एक निबन्ध में कहा है कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होगा तब तक वह विज्ञान नहीं माना जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन को वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतारने के लिए लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा।
9. **प्रशासन की विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु-** प्रारम्भिक काल में लोक प्रशासन में विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण का अभाव था। किसी भी विषय के लिए उसकी विषय-वस्तु का व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट न होना हानिकारक माना जाता है। एडवर्ड शिल्स की यह मान्यता है कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन की विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु भी तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास उपयोगी था।

इस प्रकार परम्परागत दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता, नये राष्ट्रों के सम्पर्क में आना आदि कई ऐसे कारण रहे जो तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास हेतु उत्तर दायी रहे।

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन

अब तक आप जान गये होंगे कि तुलनात्मक प्रशासन को यदि सामान्य शब्दों में परिभाषित किया जाये तो कहा जा सकता है कि इसका आशय दो या दो से अधिक प्रशासनिक इकाईयों की संरचना और कार्यात्मकता की तुलना से है। यदि इसके अर्थ को और व्यापक रूप से समझना चाहें तो कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को देखने पर ये अर्थ और भी स्पष्ट हो जायेगा।

रिग्स के अनुसार, ''तुलनात्मक अध्ययन वह है जो मिश्रित रूप से अनुभवमूलक(Nomothetic) तथा परिस्थितिकीय (Ecological) हो।''

निमरोद रफाली ने लिखा है कि, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।''

फैरेल हैडी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्य रूप से सिद्धान्त निर्माण प्रक्रिया से है।''

रूमकी वासु के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा हमें विभिन्न देशों में अपनाये जाने वाले उन प्रशासनिक व्यवहारों की जानकारी मिलती है, जिन्हें अपने राष्ट्र की प्रणाली में अपनाया जा सकता है।''

..... ''वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का एक ऐसा तुलनात्मक अध्ययन है, जिसके निष्कर्षों के आधार पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जाता है।''

1.3.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की विशेषताऐं

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर तुलनात्मक लोक प्रशासन की कुछ विशेषताऐं उभर के सामने आती हैं, जिनको निम्न बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है-

1. सर्वप्रथम तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन की एक अलग शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।
2. यह लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में एक नई अवधारणा है।
3. इसके द्वारा दो या दो से ज्यादा देशों की व्यवस्थाओं या प्रशासनिक संगठनों के बीच तुलनात्मक अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से विभिन्न देशों, राज्यों और संगठनों के बीच की दूरी को समाप्त करके उनके अनुभवों का लाभ उठाने का प्रयास किया जाता है।
5. इसमें परम्परागत सिद्धान्तों के स्थान पर वैज्ञानिक विधि पर ज्यादा बल दिया जाता है।
6. इसमें विशिष्टता के स्थान पर सामान्यीकरण की ओर जाने के प्रयास किये जाते हैं।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन पर्यावरणीय अध्ययन पर बल देता है और ऐसा मानता है कि लोक प्रशासन न केवल पर्यावरण से प्रभावित होता है बल्कि स्वयं भी पर्यावरण के घटकों को प्रभावित करता है।
8. पर्यावरणीय अध्ययन पर बल देने वाली अपनी प्रकृति के कारण ही तुलनात्मक लोक प्रशासन की एक और विशेषता उभर कर सामने आती है कि यह अन्य सामाजिक विज्ञानों से समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। अर्थात् साधारण शब्दों में तुलनात्मक लोक प्रशासन अन्तरविषयी दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देता है।

1.3.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति, लोक प्रशासन विषय से भी अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत मानी जाती है। इस सम्बन्ध में रॉबर्ट डहाल का मानना है- ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं बनाया जाता, तब तक लोक प्रशासन को विज्ञान मानने का दावा खोखला ही बना रहेगा।''

फैरेल हैडी ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति को चार रूपों में विभक्त किया है- सुधरी हुई पारम्परिक प्रकृति, विकासमान प्रकृति, सामान्य प्रकृति का प्रारूप और मध्यवर्ती सिद्धान्तों का प्रारूप।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं तथा संगठनों के बीच परस्पर तुलना करने तथा विश्लेषित कर निष्कर्ष प्राप्त करने की प्रकृति रखता है। इसमें उन तथ्यों तथा समंकों को सर्वाधिक महत्व या प्राथमिकता प्रदान की जाती है जो सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए उत्तर दायी हैं अथवा वे समस्याएँ हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रतिफल स्वरूप उत्पन्न हुई हैं। सामान्य प्रणाली के प्रारूप से तात्पर्य है कि सामाजिक परिवेश के अनुरूप ही प्रशासन तंत्र संचालित होता है, अतः एक ऐसा मॉडल या प्रारूप निर्मित किया जाता है जो सामान्य रूप से समाज एवं प्रशासन पर लागू किया जा सके। मध्यवर्ती सिद्धान्तों के प्रारूप से तात्पर्य उन सिद्धान्तों के पालन से है, जो सभी पक्षों पर व्यावहारिक रूप से लागू किए जा सकते हैं तथा जिनका तुलनात्मक एवं विश्लेषण परीक्षण किया जा सकता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के कारक जानने के बाद आइये अब इसके अर्थ को विस्तृत रूप में जानते हैं। सामान्य शब्दों में तुलनात्मक लोक प्रशासन से तात्पर्य ऐसे विषय से है, जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक प्रशासनिक इकाईयों की संरचना एवं कार्यात्मकता की तुलना की जाती है। ये तुलना विभिन्न प्रकार से की जा सकती है या यूँ कहें कि तुलना के प्रकार कुछ इस प्रकार से हो सकते हैं-

- संकर सांस्कृति अध्ययन- भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में कार्यरत प्रशासनिक संगठनों का अध्ययन।
- अन्तरा-सांस्कृतिक एवं संकर राष्ट्रीय- जब एक जैसी सांस्कृतिक व्यवस्था के दो देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है।
- अन्तर्देशीय अध्ययन- इसके अन्तर्गत एक ही देश के दो राज्यों के मध्य प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। जैसे- महाराष्ट्र और गुजरात के सचिवालयों का अध्ययन।
- संकर सामयिक- दो अलग-अलग कालों की प्रशासनिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करना संकर सामयिक अध्ययन कहलाता है। जैसे- मौर्यकालीन प्रशासन का मुगलकालीन प्रशासन से तुलनात्मक अध्ययन।
- संकर सांगठनिक- एक ही देश के मध्य नगरीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, जिला प्रशासन आदि का अध्ययन।

इस प्रकार तुलना के विभिन्न स्वरूप स्पष्ट करते हैं कि, आधुनिक तुलनात्मक लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। लोक प्रशासन में तुलनात्मक सम्बन्धी दृष्टिकोणों को दो वर्गों में रखा जा सकता है-

व्यापक दृष्टिकोण, इसमें विभिन्न संस्थाओं के परिवेशों में सरकारी अभिकरणों, व्यापारिक निगमों आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

संकुचित दृष्टिकोण, यह दृष्टिकोण रिग्स से सम्बन्धित है। रिग्स तुलनात्मक शब्द को थोड़ा प्रतिबन्धित करते हुए उसे केवल आनुभाविक तथा सिद्धान्तपरक अध्ययनों तक सीमित रखना चाहते हैं। रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में तीन प्रकार की प्रवृतियों का वर्णन किया है- आदर्शात्मक से अनुभव सम्बन्धी उन्मुखता (Normative to Empirical), विशिष्टता से सामान्यपरकता अभिगम की ओर उन्मुखता (Ideographic to Nomothetic) और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय (Non-Ecological to Ecological)।

1. **आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता (Normative to Empirical)-** आदर्शात्मक अध्ययनों से तात्पर्य उन अध्ययनों से होता है, जिसमें प्रशासन द्वारा कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। अर्थात् केवल सैद्धान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल सैद्वान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल आदर्शों की चर्चा करने के बजाय उन सब परिस्थितियों को महत्व दिया जाना चाहिये जो वास्तव में हमारे सामने हैं तथा प्रशासन को प्रभावित करती है। ये विश्लेषण ''क्या होना चाहिये'' के स्थान पर ''क्या है'' पर अधिक ध्यान देता है। अनुभवमूलक अध्ययनों में तथ्यों के संकलन पर अधिक बल दिया जाता है इसी कारण ''इसमें क्या है'' यह आधारित वाक्य होता है।

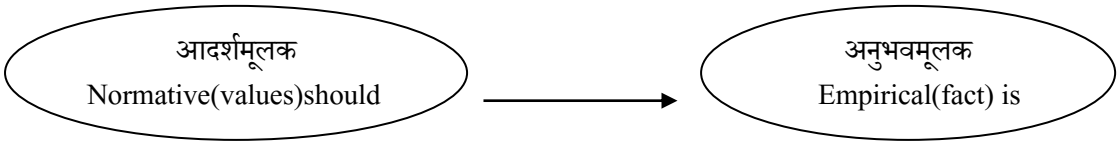

*लक्ष्य प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल *प्रशासन

*पारम्परिक एवं निर्देशात्मक

2. **विशिष्टता से सामान्यपरकता अभिगम की ओर उन्मुखकता (Ideographic to Nomothetic)-** ''इडियोग्राफिक'' तथा ''नोमोथेटिक'' शब्द विशेष रूप से रिग्स द्वारा रचित शब्द है। ''इडियोग्राफिक'' अध्ययन किसी एक विशेष ऐतिहासिक घटना, एक विशेष प्रशासनिक समस्या, एक विशेष संस्था, एक

विशेष राष्ट्र, एक विशेष सांस्कृतिक-क्षेत्र अथवा एक विशेष जीवनी से सम्बन्धित होते हैं या यूँ कहा जा सकता है कि इन अध्ययनों में प्रशासनिक विश्लेषण की विषय-वस्तु कोई एक विशेष इकाई होती है। जबकि दूसरी ओर ''नोमोथेटिक'' अभिगम की विषय वस्तु गहन तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित होती है, और इसमें सदैव विशिष्टता की बजाय सामान्यता पर बल दिया जाता है या दूसरे शब्दों में यदि इस बात को समझना चाहें तो हम ये कह सकते हैं कि नोमोथेटिक (सामान्यपरकता) अध्ययन में उन तथ्यों को अधिक महत्व दिया जाता है जो सामान्यपरकता या व्यापकता लिये होते हैं। विशिष्टता की जगह सामान्यपरकता तभी आ सकती है, जब तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाये। इसके अध्ययन में गहन तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। रिग्स का मानना था कि अब तुलनात्मक लोक प्रशासन अपने पारम्परिक ''इडियोग्राफिक'' रूप को छोड़कर ''नोमोथेटिक'' रूप धारण कर रहा है।

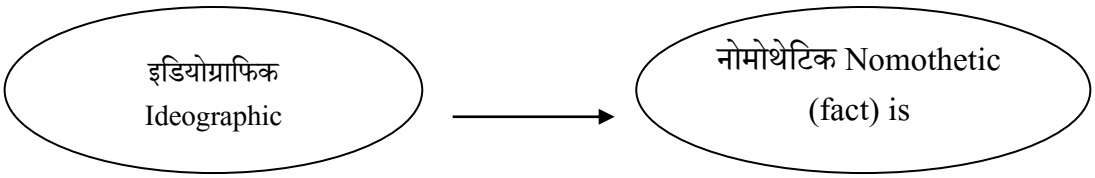

*इसमें अध्ययन मुख्यतः एक विशेष संस्था, एक विशेष राष्ट्र एवं विशेष सांस्कृतिक क्षेत्र, एक विशेष ऐतिहासिक घटना होता है।

*यह सामान्यीकरण तथा परिकल्पनाओं के निर्माण का प्रयास करता है।

गैर-परिस्थितिकीय अध्ययन से परिस्थितिकीय अध्ययन की ओर उन्मुखकता (Non-Ecological to Ecological)- रिग्स के अनुसार तीसरी प्रवृति परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित है। रिग्स का मानना था कि पारम्परिक अध्ययनों में प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण उनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि पर्यावरणों के सन्दर्भों में कम किया जाता था, अतः उनके अनुसार पर्यावरण के प्रशासन तथा प्रशासन के पर्यावरण पर पड़ने पर प्रभाव का विश्लेषण बहुत कम होता था। लेकिन अब धीरे-धीरे इस बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि गतिशील पर्यावरणों में काम करने वाली प्रशासनिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार उनकी परिस्थितिकी के सन्दर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता। इसी कारण आधुनिक तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों में प्रशासन और उसके पर्यावरण के बीच होने वाली आपसी क्रियाओं का गहन विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है, या यूँ कहा जाये कि तुलनात्मक अध्ययनों में प्रशासनिक संगठनों का अध्ययन उसके बाहरी वातावरण एवं परिस्थितिकीय स्थितियों को ध्यान में रख कर किया जाता है तो कुछ गलत नहीं होगा।

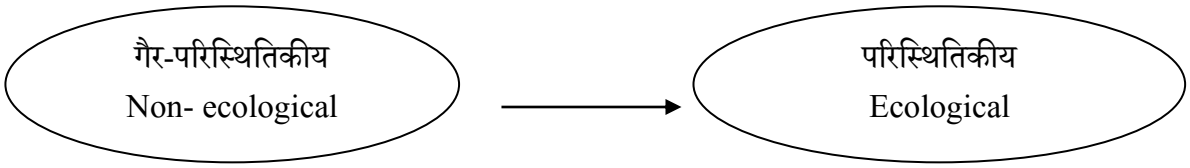

*प्रारम्भिक अध्ययन वाली स्थिति।

*प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण विभिन्न पर्यावरणों (आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि) के अन्तर्गत नहीं किया जाता था।

या

पर्यावरणीय कारकों का प्रशासनिक संस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन अनुपस्थित।

*प्रशासनिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार परिस्थिति के संदर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता है।

*आधुनिक तुलनात्मक प्रशासन में प्रशासन तथा उसके पर्यावरण के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है।

1.3.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

जैसा कि आपने अब तक तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ विभिन्न परिभाषाओं एवं विशेषताओं के आधार पर जाना, आप इस बात को भली भांति समझ गये होंगे कि तुलनात्मक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संगठनों, संस्थाओं, अभिकरणों एवं विभागों की संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं को समझता है ताकि विश्व स्तर पर या राष्ट्रीय स्तर पर कुछ ऐसे नियम बनाये जा सके जो पूरे प्रशासन को न केवल वैज्ञानिक आधार प्रदान करें बल्कि प्रशासन की समस्याओं के समाधान में भी सहायक हो सकें।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्य हैं-

1. सभी प्रकार की प्रशासनिक समस्याओं, संरचना कार्यप्रणाली आदि का अध्ययन करके कुछ सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की व्याख्या करना।
2. विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों की तुलनात्मक परिस्थिति को पहचानना एवं उनकी सफलताओं व असफलताओं के कारणों की जांच-पड़ताल करना।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन से क्षितिज को व्यापक व्यवहारिक और वैज्ञानिक बनाना।
4. प्रशासनिक व्यवहारों में विभिन्न राष्ट्रों, संस्कृतियों, व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण का विश्लेषण एवं व्याख्या करना।

5. प्रशासनिक सुधारों की कार्य नीति को समझना।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक और वैज्ञानिक बनाना ही तुलनात्मक लोक प्रशासन का उद्देश्य है।

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ समझने के बाद एक स्वभाविक सा प्रश्न ये उठता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन किन-किन क्षेत्रों में किया जा सकता है? सामान्यतः लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र विश्व के समस्त देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं मानी जाती हैं, या यूँ कह सकते हैं कि, तुलनात्मक लोक प्रशासन एक विश्वव्यापी लक्षण बन चुका है। विश्व के हर देश में तुलनात्मक-क्षेत्र पर बल दिया जाने लगा है। तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र उसकी तुलना करने की प्रकृति पर निर्भर करता है और तुलना का आधार उसके क्षेत्र को निश्चित करता है। इसके अध्ययन में निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जा सकता है-

3. **सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत प्रशासन का अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत प्रशासन की निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया जाता है- एक देश या संस्कृतिक की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तः संस्कृति की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन और विभिन्न राष्ट्र और संस्कृतियों की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन।
4. **प्रजातांत्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन-** विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इसमें इन संस्थाओं के कार्यों, गुण एवं महत्व आदि का अध्ययन किया जाता है जैसे उदाहरण के तौर पर भारत की प्रजातांत्रिक संस्थाओं की संयुक्त राज्य अमरीका या इंग्लैण्ड की ऐसी ही संस्थाओं के साथ तुलना किया जाना।
5. **प्रशासनिक नियंत्रण के विभिन्न साधनों का तुलनात्मक अध्ययन-** जिस प्रकार विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं के गठन, कार्यों आदि का तुलनात्मक अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत माना है, उसी प्रकार विभिन्न देशों की कार्यपालिका, व्यवस्थापिक एवं न्यायपालिका प्रशासन पर नियंत्रण के किन साधनों का प्रयोग किया जाता है उन साधनों का तुलनात्मक अध्ययन भी इस विषय के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

6. **कार्मिक-वर्ग की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन अपने क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न देशों के कार्मिक-वर्ग के प्रशासन और उनकी विभिन्न समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन को भी समाहित करके रखता है। उदाहरण के लिये भारत एवं अमरीका के कार्मिक वर्ग के प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।
7. **कार्यात्मक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में शिक्षा, समाज तथा आर्थिक प्रशासन आदि विभिन्न प्रकार के कार्यात्मक प्रशासनों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। उदाहरणर के तौर पर भारत व ब्रिटेन के शिक्षा प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।
8. **अन्य प्रशासनों की तुलना-** तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र ना केवल उपरोक्त वर्णित पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन समाहित करता है, बल्कि इसके अध्ययन में विदेशी प्रसाधन, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का प्रशासन, तुलनात्मक स्थानीय प्रशासन तथा मानव व्यवहार का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णित तथ्य, तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र को समझने के लिये पर्याप्त प्रतीत होते हैं, परन्तु फिर भी यदि हम कुछ अन्य विद्वानों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र को देखें, तो पाते हैं कि उन्होंने इसे तीन स्तरों में विभाजित किया- वृहत्स्तरीय अध्ययन, मध्यवर्ती अध्ययन और लघुस्तरीय अध्ययन।

1. **वृहत्स्तरीय अध्ययन-** सर्वप्रथम तुलनात्मक लोक प्रशासन का वृहत्स्तरीय अध्ययन आता है। इस अध्ययन में किसी एक देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का दूसरे देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के साथ तुलनात्मक अध्ययन का क्षेत्र शामिल किया जाता है। उदाहरण के तौर पर भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि देशों की प्रशासनिक व्यवस्था से किया जाता है। इस अध्ययन में जब ''सम्पूर्ण'' क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन करने की बात कही जाती है तो उसका अभिप्राय है कि तुलना किये जाने वाले राष्ट्रों के सभी प्रकार के पर्यावरण अर्थात् आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पर्यावरणों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।
2. **मध्यवर्ती अध्ययन-** मध्यवर्ती तुलनात्मक अध्ययन क्षेत्र में दो देशों की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में से किसी एक बड़े अंग का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जैसे भारत और ब्रिटेन में नौकरशाही की तुलना, या भारत और अमरीका की स्थानीय सरकार का अध्ययन किया जाना। इस प्रकार के अध्ययन को मध्यवर्ती तुलनात्मक अध्ययन इसीलिये कहा जाता है, क्योंकि इसमें तुलना किये जाने वाले देशों की पूरी प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन नहीं किया जाता है और ना ही उन देशों के किसी सूक्ष्म अंग की

तुलना की जाती है बल्कि प्रशासन के एक बहुत बड़े भाग की तुलना दूसरे देश की उसी सतर की प्रशासनिक व्यवस्था से की जाती है।

3. **लघुस्तरीय अध्ययन-** सभी सामाजिक विज्ञानों में आजकल उपरोक्त दोनों अध्ययनों की अपेक्षा लघुस्तरीय अध्ययन अधिक प्रचलित होने लगा है और लोक प्रशासन इससे अछूता नहीं है। लघुस्तरीय अध्ययनों में किसी एक संगठन की दूसरे संगठन से तुलना की जाती है। सूक्ष्म अध्ययन प्रशासनिक प्रणाली के किसी छोटे (लघु) भाग का विश्लेषण होता है, अर्थात् इसमें अध्ययन का क्षेत्र छोटा और गहन होता है। उदाहरण के तौर पर भारत का दूसरे देशों के प्रशासनिक संगठनों की भर्ती या प्रशिक्षण प्रणाली का अध्ययन किया जाये। आजकल ऐसे अध्ययन अधिक प्रचलित भी हैं और इनको और उपयोगी भी माना जाता है।

1.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

अब तक आपने पढ़ा कि किस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणाऐं समय की बदली परिस्थितियों में पारम्परिक दृष्टिकोण की अपर्याप्तता के कारण उभर कर सामने आयी और लोक प्रशासन के विद्वानों ने लोक प्रशासन को परम्परागत दृष्टिकोण के संकुचित आवरण से निकाल कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने का प्रयास किया।

आज तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व व्यापक तौर पर स्वीकार कर लिया गया है। पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक विज्ञानों में भी तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाने लगा है। विशेष तौर पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक तौर पर वैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन प्रभावशाली रूप से बहुत प्रयत्नशील रहा है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, भारत, जापान आदि देशों के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को शामिल कर लिया गया है। सबसे पहले 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को स्वतंत्र रूप से कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया गया था और इसका श्रेय प्रो0 वाल्डो को जाता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व इस बात से और भी ज्यादा बढ़ गया कि तुलना के बाद जो निष्कर्ष निकले उन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन को और ज्यादा वैज्ञानिक बना दिया। विज्ञान के समान इसके सिद्धान्त विकसित हो गये हैं। अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के कारण लोक प्रशासन में तुलना की जाती है, विश्लेषण किया जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। दूसरा कारण टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध रहा जिसकी अवधारणा ने इसे और अधिक वैज्ञानिक बना दिया है। इस प्रकार यदि हम ये कहते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व लोक प्रशासन के

वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित अध्ययन के अर्थ में, शैक्षिक उपयोगिता के लिये तथा ऐसी अन्य प्रशासकीय प्रणालियों की जानकारी के लिये जो अन्य राष्ट्रों में होने वाले प्रशासनिक सुधारों व अन्य परिवर्तनों को उजागर करती है, के लिये है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सन्दर्भ में एक और तथ्य है, जिस पर इस सन्दर्भ में गौर किया जाना चाहिये वो है- प्रशासकीय राज्य की अवधारणा। आज के आधुनिक राज्य जिनका स्वरूप लोक कल्याणकारी है, उसमें राज्य के एक ऐसे स्वरूप ने जन्म लिया है। जिसमें प्रशासन का मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश इस हद तक बढ़ गया है कि प्रशासन के असफल होते ही हमारी सभ्यता भी असफल हो सकती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत अब ये बात ज्यादा आसान हो गया है कि किसी भी विकासशील अथवा विकसित देश की प्रशासनिक प्रणाली का अध्ययन करके उसकी विशेषताओं को जाना जाये और ये देखा जाये कि क्या वे विशेषताऐं अपने देश के लिये उपयोगी हैं या नहीं, यदि हैं, तो उन्हें स्वीकार कर लिया जाये अन्यथा अस्वीकार।

विभिन्न देशों की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक स्थितियों में भी बहुत अन्तर होता है और इसी कारण उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में भी अन्तर पाया जाता है। प्रशासकीय सच्चाई का पता लगाने के लिये किसी भी देश के अन्दरूनी कारकों और उनके तुलनात्मक प्रभाव को समझना आवश्यक होता है। इन तुलनाओं के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों एवं विभिन्न पर्यावरणों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है और ये जानने का प्रयास किया जाता है कि किस कारक का किसी प्रशासनिक व्यवस्था के किस अंग पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन इस दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है कि इस आधार पर यदि प्रशासन की तुलना की जाती है तो इससे प्रशासनिक ज्ञान में वृद्धि होती है और साथ ही समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है।

विकासात्मक लोक प्रशासन के लिये भी तुलनात्मक लोक प्रशासन बहुत महत्वपूर्ण है। इसका कारण ये है कि दोनों का ही उदय लगभग द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। इसको इस प्रकार से समझा जा सकता है कि अब विकासात्मक प्रशासन को अनेक नये विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं के सन्दर्भ में नयी-नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके लिये प्रशासनिक सुधार और विकास दोनों आवश्यक हो जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वान विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विवेचन करके ये बताने का प्रयास करते हैं कि विकास प्रशासन के लिये किस प्रशासकीय तकनीक को लागू किया जाये तथा कुशलता बढ़ाने के लिये प्रशासकीय संरचना में किस प्रकार के परिवर्तन किये जाये। तुलना के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष विकास प्रशासन का मार्गदर्शन करते हैं।

लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करके प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करने जैसे विशेष उत्तर दायित्व को निभाने में भी तुलनात्मक लोक प्रशासन मदद करता है और महत्व पूर्ण बन जाता है। साधारण शब्दों में कहें तो लोक प्रशरासन के विद्वानों का ये विशेष उत्तर दायित्व होता है कि वे प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करें। परन्तु ये विद्वान अपना ये उत्तर दायित्व तभी निभा सकते हैं जबकि वे प्रशासनिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं व प्रक्रियाओं में जो विविधता या भिन्नता है इसका तुलनात्मक विश्लेषण करके न केवल स्वयं समझने का प्रयत्न करें बल्कि उस सम्बन्धित देश के प्रशासकों के लिये भी कुछ सुझाव प्रस्तुत करें। इसीलिये तुलना केन्द्र-बिन्दु बन गया है जो तुलनात्मक लोक प्रशासन को महत्वपूर्ण बनाता है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को उपरोक्त वर्णन से समझने के पश्चात हम कुछ विद्वानों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सम्बन्ध में दी गयी परिभाषाओं को भी देखते हैं, जिनसे तुलनात्मक लोक प्रशासन की महत्ता भली-भांति समझी जा सकती है।

विलियम ऐ0 सिफिन(W.A. Siffin)ने अपनी पुस्तक, "Towards the Comparative Study of Public Administration" में कहा गया है कि ''यदि विज्ञान मूलतः प्राविधि की बात है तो तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रमुख मूल्य यह है कि इसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।''

रॉबार्ट उसाल ने अपने निबन्ध, "The Science of Public Administration 1947" में तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को दर्शाते हुए कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन के अध्ययन को तुलनात्मक नहीं बनाया जायेगा, तब तक वह विज्ञान नहीं बन सकता है।''

एडबर्ड शिल्स कहते हैं कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।''

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन की इस अवधारणा में राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन की दूरियों को कम किया है जो प्रशासन एवं नीति विज्ञान के कार्यानवयन के लिए आवश्यक भी है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के गुण/लाभ/महत्व को निम्न बिन्दुओं में सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन ने लोक प्रशासन के अध्ययन को अन्तर्विषयक बनाया।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा ही लोक प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धान्तों की रचना करना संभव हो सकी है या दूसरे शब्दों में प्रशासन के क्षेत्र में सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है।

3. इसके कारण सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र जो पूर्व में बहुत सीमित, संकीर्ण तथा स्थूल प्रकृति का था वो बहुत व्यापक तथा गहन हुआ है।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है, जिसके कारण अध्ययन का एक व्यापक दृष्टिकोण उभर कर सामने आया है।
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन ने ही विश्व के विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलना आदि विश्लेषण को बढ़ावा दिया है, जिसमें एक-दूसरे के अनुभव से सीखा जा सकता है तथा कुछ सार्थक निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है।
6. इसके द्वारा विभिन्न देशों के मध्य प्रशासनिक विचार संस्थाऐं प्रशिक्षण की तकनीकी, नियम एवं प्रक्रियाओं का आदान-प्रदान होने लगा।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा विकास के लिये उत्तर दायी तत्वों की पहचान करना संभव हो सका, जो कि विकासशील देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।
8. तुलना के आधार पर प्रशासनिक संगठनों के आदर्श रूप और उपयोगी तरीकों की खोज सम्भव हो सकी है, जिन्होंने प्रशासन को अधिक कार्यकुशल, मितव्ययी और प्रभावशाली बनाने में योगदान दिया है।
9. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा लोक प्रशासन के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया गया है, क्योंकि इससे विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का उर्ध्वाधर एवं सामानान्तर अध्ययन किया जाने लगा है। इससे लोक प्रशासन के क्षेत्र को एक संगठन एक देश एवं एक संस्कृति से निकाल कर संकर(Hybrid) सांस्कृतिक, संकर राष्ट्रीय एवं संकर कालिक बनाया है।
10. विभिन्न देशों की संस्थाओं/संगठनों से प्राप्त ज्ञान का प्रयोग कर, प्रशासनिक व्यवस्थाओं की कार्यकुशलताओं में वृद्धि की जा सकती है।
11. उस पद्धति के कारण लोक प्रशासन के विद्यार्थियों, वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों को दूसरे देशों की व्यवस्था को समझने में मदद मिलती है तथा ज्ञान का क्षेत्र भी व्यापक हुआ है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक प्रवृति की विश्वव्यापी अवधारणा है जो कुछ सामान्यीकृत सिद्धान्त विकसित करने को उत्सुक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. किस विद्वान तुलनात्मक लोक प्रशासन से सम्बन्धित नहीं है?

3. तुलनात्मक लोक प्रशासन किस बात पर बल देता है?

4. ''द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' के लेखक कौन हैं?

1.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय से आप ये जान गये होंगे कि तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन के ज्ञान की एक नयी शाखा है तथा परम्परागत लोक प्रशासन से सर्वथा भिन्न है। तुलनात्मक लोक प्रशासन एक नवीन अवधारणा है जो दो या अधिक प्रशासनों के अध्ययन पर बल देती हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा विभिन्न देशों तथा स्तरों पर प्रवर्तित प्रशासनिक सुधारों की कार्यनीति को समझने तथा लोक प्रशासन के क्षितिज को अधिक व्यापक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया जाता है। एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में तीन प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन किया जो ''क्या होना चाहिये'' के स्थान पर ''क्या है'' पर बल देती है तथा विशिष्टता अर्थात् किसी एक संगठन व्यक्ति या समाज के अध्ययन के स्थान पर इन तथ्यों को अधिक महत्व देती हैं जो सामान्यपरकता या व्यापकता लिये होते हैं। साथ ही रिग्स ने तीसरी प्रवृत्ति के रूप में बल दिया कि, लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण का भी गहनता से अध्ययन किया जाना चाहिये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र विश्वव्यापी है। ये दो या अधिक देशों के सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाँचे का वृहद स्तर या किसी एक देश के प्रशासनिक-तन्त्र के किसी एक भाग का दूसरे देश के उसी भाग से मध्य स्तरीय या लघु अर्थात् किसी एक इकाई की एक समस्या, कार्यप्रणाली, प्रक्रिया आदि का सूक्ष्म अध्ययन करता है। इस दृष्टि से आज के युग में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण तथा सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है तथा इस पद्धति के कारण न केवल विभिन्न देशों के मध्य तुलना व विश्लेषण कर उनके अनुभव से सीखने में मदद मिली, बल्कि इस अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाये जाने के कारण विषय का क्षितिज विस्तृत हुआ है।

1.7 शब्दावली

मान्यताऐं- स्वीकृत बात; तथ्य, अवरोधी- रोकने वाला, संकुचित- संकीर्ण, तंग, सँकरा, यथार्थ- सत्य जैसा होना चाहिए, परिवेश- वातावरण, माहौल, सामयिक- समायानुसार, वर्तमान समय का, आनुभविक- अनुभव, प्रयोग आदि के आधार पर प्राप्त होने वाला, सिद्धान्तपरक- वह सिद्धान्त तथा कार्य जिसमें परम्पराबद्ध सिद्धान्त या मत

को सार्थक माना जाता है, गतिशील- उन्नतिशील, चलने वाला, क्रियाशील, घटक- किसी घटना, रचना या किसी परिणाम में अहम् भूमिका निभाने वाला आधार-तत्व, समाहित - एकत्र किया हुआ, संग्रहित।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति की तुलना से, **2.** वुडरो विल्सन, **3.** परिस्थिति कारकों, सामान्यीकरण व अनुभवमुलता पर, **4.** फ्रेड रिग्स

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर- 2013
2. डॉ0 आनन्द अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. टी0 एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन- 1995

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. रमेश के0 अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. एम0 पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद-2015
3. अनिल गुप्ता, महिपाल चारण हिलोडी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर- 2005

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक समय में इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र की व्याख्या कीजिये।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र एवं महत्व की विवेचना कीजिये।
3. उन तत्वों की विवेचना कीजिए जिनके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास हुआ।

इकाई- 2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 दृष्टिकोण का अभिप्राय एवं उपयोगिता

2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण

2.3.1 कानूनी दृष्टिकोण

2.3.2 ऐतिहासिक दृष्टिकोण

2.3.3 विषय-वस्तु दृष्टिकोण

2.3.4 राजनीतिक दृष्टिकोण

2.3.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण

2.3.6 संस्मरणात्मक दृष्टिकोण

2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का अर्वाचीन दृष्टिकोण

2.4.1 संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण

2.4.1.1 प्रकार्य एवं संरचनाऐं

2.4.1.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताऐं

2.4.1.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व

2.4.1.4 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचनाऐं एवं सीमाऐं

2.4.2 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण

2.4.2.1 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की विशेषताऐं

2.4.2.2 परिस्थितिकी उपागम की आलोचना या सीमाऐं

2.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण

2.5.1 व्यवहारवाद का विकास

2.5.2 व्यवहारवाद की विशेषताऐं

2.5.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के लोक प्रशासन पर प्रभाव

2.5.4 व्यवहारवादी दृष्टिकोण की आलोचना

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

ज्ञान के अध्ययन की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किस प्रकार से किया जाये ये उस विषय की प्रकृति पर निर्भर करता है। विज्ञान व सामाजिक विज्ञान दोनों में ही अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान का अभिप्राय ही तथ्यों पर आधारित क्रमबद्ध अध्ययन होता है अर्थात् विज्ञान सामान्य बातों को भी बिना तर्कों तथा सत्यों के आधार पर परीक्षण किये बिना स्वीकार्य नहीं करता है और सिद्धान्त का निर्माण भी नहीं कर सकता है। वहीं दूसरी ओर हम सामाजिक विज्ञान की बात करें तो हम पाते हैं कि सामाजिक विज्ञान मानव व्यवहार से जुड़े होते हैं अतः इनके अध्ययन के लिये कोई एक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हो सकता है, उन्हें सभी सम्भव दृष्टिकोणों का अध्ययन करके ये देखना होता है कि वे किस दिशा में और किस परिणाम की ओर ले जाते हैं। लोक प्रशासन भी सामाजिक विज्ञान का एक ऐसा ही विषय है जिसके सिद्धान्त पूरी तरह से प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं जिनका परीक्षण किया जा सकता है। लोक प्रशासन को विज्ञान की तरह विकसित करने, इनके सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का परीक्षण करने एवं इस विषय का विधिवत् अध्ययन करने के लिये कुछ दृष्टिकोण अपनाये गये हैं। इस अध्याय में हम तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये प्रचलित सभी दृष्टिकोणों या उपागमों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन में प्रचलित विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों को जान पायेंगे।

- विभिन्न दृष्टिकोणों की विशेषताऐं व विषय में उनके अध्ययन की प्रासंगिकता को भी भली-भाँति समझ पायेंगे।

2.2 दृष्टिकोण का अभिप्राय एवं उपयोगिता

जैसा कि इस इकाई की प्रस्तावना में आपने पढ़ा कि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और यह मानव व्यवहार तथा समाज से जुड़ा है। मानव व्यवहार एवं समाज से जुड़े व्यवहारों के सिद्धान्त पूर्णतया प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं और इनका परीक्षण, प्राकृतिक विज्ञानों की भांति प्रयोगशालाओं में नहीं किया जा सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सामाजिक विज्ञानों के लिये कोई नियम विकसित किये जा सकते हैं या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर है कि, चूँकि मानव की बौद्धिक समस्याऐं बहुत विकसित जटिल और अस्थिर प्रकृति की होती हैं तो ऐसे में सिद्धान्त व नियम निर्धारण में बाधाऐं तो आती हैं, लेकिन फिर भी कुछ नियम ऐसे होते हैं जो समाज विज्ञानों में भी विकसित किये जाते हैं। सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिये कुछ विशेष प्रकार की अध्ययन पद्धति या दृष्टिकोण (Approach) या उपागम अपनाये जाते हैं।

दृष्टिकोण का अर्थ होता है मानकों का एक ऐसा समूह जिसके आधार पर सैद्धान्तिक विचार-विमर्श के लिये प्रश्न और आधार सामग्री लेने या छोड़ने का निर्णय लिया जाता है। इसी बात को यदि सरल भाषा में समझना चाहें तो ये कहा जा सकता है कि दृष्टिकोण या उपागम या वैचारिक प्रतिमान से तात्पर्य उस मार्ग या विधि-प्रणाली से है जो किसी लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है। ये उपागम भी आसानी से तैयार नहीं होते बल्कि बहुत लम्बे अध्ययनों, शोधों तथा विश्लेषणों के बाद ही निर्मित हो पाते हैं।

एलवुड ने समाज विज्ञानों के लिये वैज्ञानिक पद्धति का महत्व बताते हुए कहा था कि ''जीव विज्ञान के लिये जो महत्व सूक्ष्मदर्शी का, खगोल विज्ञान के लिये जो उपयोग दूरबीन का है; वही उपयोग और महत्व समाज विज्ञानों के लिये 'वैज्ञानिक पद्धति' का है।''

यही वैज्ञानिक पद्धतियां, उपागम या अभिगम या दृष्टिकोण कहलाती है। इस सम्पूर्ण वर्णन के बाद उपागम या दृष्टिकोण शब्द की कुछ सामान्य सी विशेषताऐं इंगित की जा सकती हैं-

1. उपागम या दृष्टिकोण अध्ययन विधि को सरल और नियंत्रित बनाते हैं।
2. ये किसी भी अध्ययन को दिशा से भटकने व उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं से बचाते हैं।
3. उपागमों के आधार पर ही ना केवल पुराने सिद्धान्तों का परीक्षण सम्भव हो पाता है, बल्कि नये-नये सिद्धान्तों का निर्माण भी किया जा सकता है।

4. उपागम ही विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।

5. ये उपागम या दृष्टिकोण ही किसी भी विषय को प्रमाणिकता और विश्वसनीयता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार अब तक के सम्पूर्ण विवरण के बाद आप ये समझ ही गये होंगे कि समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों जिसमें लोक प्रशासन भी शामिल है, में किसी एक लक्ष्य तक पहुँचाने में जो प्रणाली या मार्ग या विधि सहायक सिद्ध होती है वो उपागम या दृष्टिकोण कहलाता है। इन दृष्टिकोणों के माध्यम से ही उस विषय का विद्यार्थी अनुसंधान की दृष्टि से विषय को समझ सकता है और उस विषय की व्याख्या भी उसी दृष्टिकोण से कर सकता है। दृष्टिकोण का अगला चरण सिद्धान्त कहलाता है। जब दृष्टिकोण का कार्य विचाराधीन विषय के बारे में समस्याओं और आधार सामग्री के चुनाव से आगे निकल जाता है, तब दृष्टिकोण सिद्धान्त का रूप धारण कर लेता है। सिद्धान्त वे प्रस्थापनाऐं हैं, जिनसे किसी वस्तु की व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् सिद्धान्त का मुख्य कार्य व्याख्या करना है।

दृष्टिकोण या उपागम शब्द का अभिप्राय समझने के पश्चात, आइये अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये दृष्टिकोणों की आवश्यकता, उपयोगिता और प्रकार आदि पर विस्तृत चर्चा करते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं कि, लोक प्रशासन का अध्ययन एक पृथक विषय के रूप में सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमरीका में प्रारम्भ हुआ था। सन् 1887 में वुडरो विल्सन द्वारा, ''प्रशासन का अध्ययन'' (A Study of Administration) पर लिखा गया एक निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसे इस अध्ययन क्षेत्र की प्रथम युग प्रवर्तक घटना माना जाता है। इस समय तक लोक प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाऐं व व्याख्याऐं राजनीति विज्ञान विषय के साथ पढ़ाई जाती थी। विल्सन के इस निबन्ध की विषय-वस्तु का उद्देश्य प्रशासन को राजनीति से अलग एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित करना था। प्रो0 वाल्डो ने भी वुडरो विल्सन को एक विधा के रूप में लोक प्रशासन का जनक माना और यह नितान्त सही है। लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक अध्ययन के रूप में प्रतिष्ठित करने में एल0 डी0 व्हाइट की रचना 'Introduction to the study of Public Administration' का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पुस्तक में एल0 डी0 व्हाईट ने लोक प्रशासन की कार्यविधियों, अवधारणाओं, नियमों तथा सिद्धान्तों को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया। अर्थात् प्रारम्भिक काल में शासन और प्रशासन के मध्य गहन सम्बन्ध को पृथक करके नहीं देखा गया था, लेकिन कालान्तर में प्रशासनिक सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा कार्यप्रणाली को राजनीति विज्ञान से पृथक करके देखा जाने लगा और इस विषय को एक सैद्धान्तिक मान्यता मिलने में सहायता प्राप्त हुई। चूँकि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और लोक सेवक सामाजिक व्यवहार

से प्रभावित होते हैं। अतः लोक प्रशासन के अध्ययन से सम्बन्धित उपागम भी अन्य सामाजिक विज्ञानों, जैसे राजनीति विज्ञान तथा समाजशास्त्र इत्यादि में प्रचलित उपागमों से प्रभावित है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन अपेक्षाकृत एक नवीन विषय है और प्रारम्भ में हर नये विषय और स्वतंत्र विषय के सामने महत्वपूर्ण समस्या यह उत्पन्न होती है कि, तुलना का क्षेत्र क्या होना चाहिये? तथा अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये? ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन के लिये दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है- आगमनात्मक (Inductive) निगमनात्मक (Deductive) पद्धति।

आगमनात्मक पद्धति के अन्तर्गत हम विशेष वस्तु का विश्लेषण, पर्यवेक्षण तथा परीक्षण करने के बाद सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर होते हैं तथा निगमनात्मक पद्धति में हम सामान्य से विशेष की ओर अग्रसर होते हैं।

सामान्यतया सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिये कोई भी एक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हो सकता। उन्हें सभी सम्भव दृष्टिकोणों का अध्ययन करके ये देखना होता है कि, वे उसे किस दिशा में और किस परिणाम की ओर ले जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा आगमनात्मक(Inductive) प्रकृति की है, जिसमें विशेष से सामान्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये अनेक उपागम प्रचलित है, लेकिन इसके साथ भी, यही समस्या उत्पन्न होती है कि, अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये? प्रारम्भ में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये उन परम्परागत दृष्टिकोणों को अपनाने का प्रयास किया गया जो लोक प्रशासन के अध्ययन में अपनाये जा रहे थे। किन्तु शीघ्र ही इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता स्पष्ट हो गयी। और अब विषय को अधिक प्रयोगात्मक अनुभवपूरक और व्यवहारिक बनाने के लिये ऐसे दृष्टिकोणों की खोज प्रारम्भ हुई जो व्यापक और गहन हो, जिनमें विशेषीकरण के साथ-साथ व्यवस्था की समग्रता का ज्ञान हो सके तथा अध्ययन विषय की विभिन्नताओं के सन्दर्भ में आँका जा सके। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोणों को मूल रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-

- परम्परागत दृष्टिकोण (Traditional Approach)
- अर्वाचीन दृष्टिकोण (Contemporary Approach)

इन दोनों दृष्टिकोणों के बारे में विस्तार से विवेचन करने से पहले आइये एक आरेख के द्वारा इन पर एक दृष्टि डाल ली जाये-

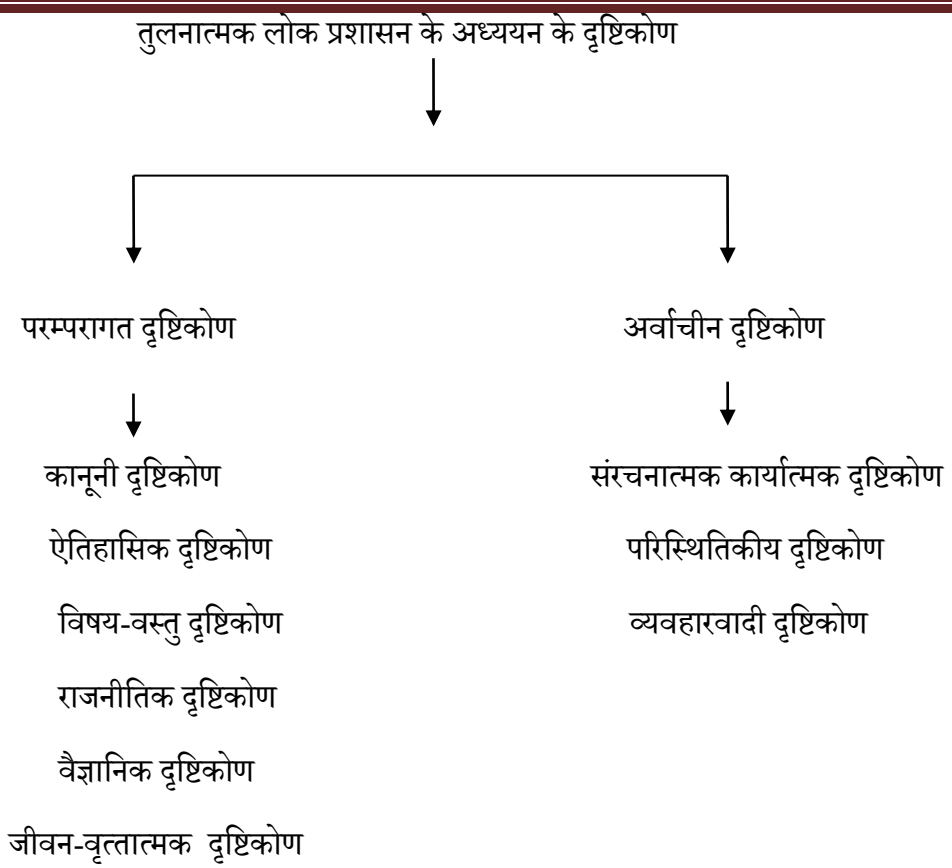

*इनका विस्तृत अध्ययन आगे के पृष्ठों में किया जा रहा है।

2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न उपागमों के बारे में दर्शाये गये आरेख के आधार पर हम सबसे पहले परम्परागत दृष्टिकोण को विस्तार से जानेंगे।

जैसा कि इस दृष्टिकोण के नाम से ही परिलक्षित होता है कि, ये प्रारम्भिक रूप में उपस्थित लोक प्रशासन के विचारकों का दृष्टिकोण है, इसीलिये ये परम्परागत (Traditional) दृष्टिकोण कहलाता है। इस दृष्टिकोण को परम्परागत दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य कई नामों से भी जाना जाता है जैसे- संगठनात्मक, वैधानिक, ऐतिहासिक, औपचारिक, विशुद्ध, विचारात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण (structural, legal, historical, formal, normative, descriptive and perspective approach)। इस दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले प्रमुख समर्थक हैं- व्हाइट, विलोबी एवं एण्डरसन आदि।

परम्परागत दृष्टिकोण की मान्यता है कि लोक प्रशासन की मूल समस्याऐं संगठन के कानूनी ढ़ाँचे से जन्म लेती हैं, जो संगठन के अन्तर्सम्बन्धों को, औपचारिकता से प्रस्तुत कर उसकी समस्याओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टिकोण के समर्थक संगठन के सिद्धान्त, संगठनों की विविधताऐं एवं ‘‘संगठन को क्या

चाहिये'' आदि प्रश्नों को आधार बनाकर चले हैं। परम्परावादी दृष्टिकोण की कुछ विशेषताऐं हैं, जिसमें कार्यकुशलता के मूल्य पर आधारित वर्णन प्रधान दृष्टिकोण, कानूनी दृष्टिकोण, राजनीतिक दृष्टिकोण, ऐतिहासिक दृष्टिकोण, प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण, संस्थागत दृष्टिकोण आदि के आधार पर अध्ययन किया जाता था। इस प्रकार परम्परावादी दृष्टिकोण की ये विशेषताऐं बताती हैं कि यह दृष्टिकोण कानूनी, संरचनात्मक, औपचारिक, विचारात्मक और वर्णनात्मक था। अर्थात् इसका पूरा अध्ययन संस्थाओं के ईद-गिर्द घूमता है और संस्थाओं के बाहर देखने का प्रयास नहीं किया जाता है। इस दृष्टिकोण के लेखकों ने प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षण, नियन्त्रण के क्षेत्र, नौकरशाही आदि का इस प्रकार विवेचन किया है, जैसे कि वे ही संरचना के ढ़ाँचे के सब कुछ हैं और उनमें परिवर्तन करके संगठन तथा प्रशासन को सर्वश्रेष्ठ बनाया जा सकता है। गुलिक, उर्विक, फेयोल आदि लेखकों ने अपने संगठनों के ग्राफ व मानचित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनकी आलोचना भी हुई है।

परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये जो दृष्टिकोण अपनाये जाते रहे है उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार है-

2.3.1 कानूनी दृष्टिकोण (Law Approach)

लोक प्रशासन के अध्ययन के सम्बन्ध में कानूनी दृष्टिकोण का प्रयोग जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस आदि देशों में हुआ। इस दृष्टि के अनुसार प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन कानूनी दृष्टि से किया जाता है। अर्थात् ये जानने का प्रयास किया जाता है कि इस संस्था के सम्बन्ध में कानून में क्या व्यवस्था है, कानून द्वारा इसे क्या शक्तियां प्राप्त हैं तथा इसकी क्या सीमाऐं हैं? और ऐसे ही कुछ और प्रश्नों का उत्तर ढूंढने का प्रयास किया जाता है। परम्परावादी दृष्टिकोण मुख्य रूप से कानूनी ही है जिसमें ये देखने पर बल दिया जाता है कि, कानून व्यक्ति के व्यवहार को किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। वुडरो विल्सन ने भी कहा कि लोक प्रशासन विधि का ही क्रमबद्ध अध्ययन है। कानून के दो भाग होते हैं- संवैधानिक कानून एवं प्रशासनिक कानून। संवैधानिक कानून का उद्देश्य मौलिक रूप से सरकार के तीनों अंगों का पृथक-पृथक रूप से अध्ययन करना तथा उनके सम्बन्धों की व्यापक व्याख्या करना होता है। सरल शब्दों में संवैधानिक कानून में राजनीति के अध्ययन के साथ-साथ सरकार और उस के अंगों का अध्ययन भी किया जाता है, वहीं दूसरी ओर प्रशासकीय कानून में राज्य, जिले, स्थानीय शासन की संस्थाओं, सार्वजनिक निगमों, सत्ता तथा दायित्वों आदि का वर्णन किया जाता है। अमरीका तथा इंग्लैण्ड में भी अब इस दृष्टिकोण या पद्धति का उपयोग बढ़ रहा है। लोक प्रशासन को देश-काल के कानूनी ढ़ाँचे में काम करना होता है अतः उस ढ़ाँचे पर प्रकाश डालने के लिये कानूनी दृष्टिकोण उपयोगी साबित होता है। फिर भी इस दृष्टिकोण

का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें सामाजिक, मनौवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपेक्षा कर दी गयी है। एफ0जे0 गुडनाऊ इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक थे।

2.3.2 ऐतिहासिक दृष्टिकोण (Historical Approach)

ये दृष्टिकोण समाजशास्त्रों के अध्ययन की एक बड़ी ही परम्परागत विधि है। इसमें अध्ययन के क्षेत्र विशेष की संस्थाओं के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया जाता है। पोलक के अनुसार ऐतिहासिक प्रणाली 'संस्थाऐं क्या हैं' और 'क्या रूप ले रही हैं' जैसे प्रश्नों की व्याख्या इस दृष्टि से करती हैं कि 'वे क्या थीं' और 'क्या बन गयी हैं' और वे ऐसी 'कैसे बनी'? अर्थात् इस प्रणाली में हमें ना केवल भूतकाल की व्याख्या प्राप्त होती है बल्कि हमें भविष्य के विवेचन के लिये भी कुछ बुनियादी सिद्धान्त प्राप्त हो जाते हैं। इसका सबसे बड़ा सकारात्मक पक्ष ये है कि, मनुष्य पिछले अनुभवों से लाभ भी उठा सकते हैं और चूँकि हर देश का प्रशासन प्राचीन मान्यताओं, व्यवस्थाओं और परम्पराओं से प्रभावित रहता है, अतः वे इसके व्यवस्थित तथा तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास भी कर सकते हैं। अतीत एवं वर्तमान की योजनाओं तथा प्रक्रियाओं में तुलनात्मक खोज के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष हमें अनेक दोषों से बचा सकते हैं। इस प्रकार इसका लाभ यह है कि मनुष्य पिछले अनुभव से लाभ उठा सकता है। इतिहास हमारी सभी उपलब्धियों और सफलताओं का लेखा-जोखा है, हमें प्रेरणा देता है, हमारा मार्गदर्शन करता है और हमें सजग और सावधान बनाता है। शैक्षिक स्तर पर राजनीतिक और प्रशासनिक अध्ययनों का ऐतिहासिक होना और भी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना वो शिक्षा अधूरी है।

2.3.3 विषय-वस्तु दृष्टिकोण (Subjective Approach)

यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन की किन्हीं सामान्य तकनीकों का अध्ययन करने की बजाय उसकी विशेष सेवाओं तथा उसके कार्यक्रमों के व्यक्तिशः अध्ययन पर बल देती है। उदाहरण के तौर पर शिक्षा, प्रतिरक्षा, पुलिस, राजस्व निर्धारण एवं संग्रह, आदि विशिष्ट विभाग पृथक-पृथक रूप से अध्ययन की विषय-वस्तु बनते हैं। भारत और इंग्लैण्ड में इस पद्धति का प्रयोग इन विशेष सेवाओं के अध्ययन के लिये काफी समय से किया जा रहा है। इस अध्ययन दृष्टिकोण में निहित दर्शन यह है कि, संगठन और प्रशासन ऐसे माध्यम हैं जिनसे किसी लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम ये पाते हैं कि लोक प्रशासन की समस्याओं पर आंशिक दृष्टि से विचार किया जाता है तथा विषय-वस्तु एवं 'पोस्डकॉर्ब' का सामंजस्यपूर्ण अध्ययन होता है। परम्परागत दृष्टिकोण में कार्यकुशलता तथा वर्णन प्रधान को प्राथमिकता दी जाती है।

2.3.4 राजनीतिक दृष्टिकोण (Political Approach)

प्रशासन एक प्रशासकीय प्रक्रिया है। प्रशासन राजनीतिक संरचना में ही काम करता है। प्रशासन स्वयं कोई साधन नहीं है बल्कि एक साध्य मात्र है। अतः अच्छे प्रशासन की आवश्यकताओं को राजनीतिक व्यवस्था में ही ढूंढना उचित होगा। प्रशासकीय समस्याऐं सदैव से ही राजनीतिक समस्याओं का अंग होती है। अतः ये आवश्यक है कि प्रशासनिक समस्याओं का राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन करा जाये। इस प्रकार राजनीति और प्रशासन का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज प्रत्येक वस्तु-विषय और घटना का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध राजनीति से है, अतः लोक प्रशासन को भी इस विषय के अनुसार ही देखने की आवश्यकता है। विधि-निर्माण के कार्य में लोक प्रशासन और राजनीति दोनों समीप दिखायी देते हैं और इस बात को भी स्वीकार करना होना कि सरकार या प्रशासन के कार्य राजनीतिक परिस्थितियों और मान्यताओं से अनुप्रेरित होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक विषय के विवेचन में राजनीतिक पृष्ठभूमि और सन्दर्भ के आधार पर अध्ययन किया जाता है।

2.3.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Approach)

यह एक बहुत ही आधुनिक एवं महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। अमरीका में वैज्ञानिक व्यवस्थापन आन्दोलन के फलस्वरूप प्रशासन के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग विगत कई वर्षों से किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण में ऐसा माना जाता है कि जिस प्रकार भौतिक-विज्ञान का प्रयोग द्वारा अध्ययन किया जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रशासन की समस्याओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक पद्धतियों और मान्यताओं के अनुसार किया जाना चाहिये। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धति के प्रयोग का अर्थ होता है कि हम किस सीमा तक पर्यवेक्षण, प्रयोग व विश्लेषण को अपनाकर कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण कर सकते हैं कि जिनका सामान्य रूप से उसी प्रकार की स्थिति में प्रयोग किया जा सके। लोक प्रशासन में इस पद्धति को लोकप्रिय बनाने का श्रेय फ्रेडरिक टेलर को हैं। टेलर ने प्रशासकीय समस्याओं के अध्ययन के लिये भी समयपरक कार्य तथा माप-सारणी का उपयोग करके इसे एक नवीन मोड़ दिया। तकनीकी दृष्टिकोण के फलस्वरूप प्रशासन को एक स्वतंत्र प्रक्रिया समझा जाने लगा, जिसका उद्देश्य कार्यकुशलता तथा मितव्ययता है। ये प्रक्रिया लोक तथा निजी प्रशासन में समान रूप से निहित है। टेलर ने यही कहा कि निजी उद्योग के क्षेत्र और लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यकुशलता सम्बन्धी समस्याऐं एक जैसी हैं। उनमें कोई मौलिक भिन्नताऐं नहीं पायी जाती है। अतः इन दोनों ही क्षेत्रों (निजी एवं लोक) में समान सर्वोतम तरीके खोजे जा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के कार्यक्रम के प्रबन्ध के लिये सर्वोत्तम मार्ग वैज्ञानिक आधार पर खोजे जा सकते हैं। अमरीका में यह विचार बड़ी तेजी के साथ समर्थन प्राप्त करता जा रहा है

कि लोक प्रशासन में कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिये, निजी प्रशासन की भांति, वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का प्रयोग किया जा सकता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धति का पर्याप्त महत्व होते हुए भी, इस आधार पर इसकी आलोचना की गयी है कि इसमें मानवीन तत्व के महत्व की उपेक्षा कर दी गयी है।

2.3.6 संस्मरणात्मक दृष्टिकोण (Memorable Approach)

प्रशासन के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मिलता-जुलता ही संस्मरणात्मक दृष्टिकोण है। इसका अर्थ है प्रसिद्ध अथवा वरिष्ठ प्रशासकों के अनुभवों तथा उनके कार्यों के अभिलेख के अध्ययन की प्रणाली। अर्थात् प्रसिद्ध अथवा वरिष्ठ प्रशासकों ने अपने अनुभव, संस्मरण या कार्यों के अभिलेख चाहे स्वयं लिखे हों अथवा दूसरों ने, उनके अध्ययन की प्रणाली ही जीवन-वत्तात्मक दृष्टिकोण कहलाता है। ये संस्मरण हर स्थिति में ऐसे होते हैं, जिन्हें पढ़कर प्रशासकीय समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे देश में जीवन-वृत्त या संस्मरण लिखने की परम्परा इतनी विकसित नहीं है, जितनी की ये इंग्लैण्ड या अमरीका में है। अभी कुछ वर्षों में बनर्जी की, ''Under the Two Masters'' धर्मवीर की ''The Memories of a Civil Servant'' कौल की ''The Untold Story'' गाडानिल की ''Government From Inside'' आदि इस श्रेणी की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनसे अनेक प्रशासकीय समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है।

परन्तु इसमें भी एक कठिनाई यह रही है कि, ये जो सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की जीवन-गाथाऐं होती हैं, इनमें प्रशासकीय कार्यों की अपेक्षा राजनीतिक महत्व की बातों पर ज्यादा बल दिया जा रहा है। यद्यपि इस दिशा में एक प्रयास ये किया जा रहा है कि वे अपने अनुभवों को या तो स्वयं लिखें या दूसरों को यह अवसर प्रदान करें, ताकि लोक प्रशासन के विज्ञान की प्रगति में सहायता मिल सके।

2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का अर्वाचीन दृष्टिकोण (Contemporary Approach)

वर्ष 1940 को वाल्डो ने लोक प्रशासन के अध्ययन के परम्परागत और अर्वाचीन दृष्टिकोणों के बीच विभाजन वर्ष के तौर पर माना। ये विभाजन या परिवर्तन अकस्मात नहीं हुआ। इसके लिये कुछ कारक या तत्व विशेष रूप से उत्तर दायी रहें हैं। इनमें से सबसे पहला कारक था कुछ नवीन प्रवृतियां। जैसे- 1. राजनीति और प्रशासन के बीच कठोर तथा सैद्धान्तिक पृथक्करण स्वीकार नहीं किया जाता है। 2. कार्यकुशलता और मितव्ययता को लोक प्रशासन का अपूर्ण एवं अपर्याप्त ध्येय माना जाने लगा और उसके स्थान पर सामाजिक क्षमता को ध्येय स्वीकारर किया जाने लगा। 3. पोस्डकॉर्ब दृष्टिकोणों में से कुछ का अर्थ बदल गया है और कुछ अब रूपान्तरित हो गये हैं।

दूसरा कारक था कि अब लोक प्रशासन के अध्ययन पर प्रचलित दार्शनिक विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा है। अर्वाचीन दृष्टिकोण के विकास में तीसरे और चौथे कारक के तौर पर परम्परागत दृष्टिकोण की दुर्बलताओं तथा लोक प्रशासन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भी उल्लेखनीय कार्य किया। इस प्रकार अर्वाचीन दृष्टिकोण के विकास में अनेक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। आइये अब, परम्परागत दृष्टिकोण की भाँति ही अर्वाचीन दृष्टिकोण में सम्मिलित दृष्टिकोणों का विस्तार से अध्ययन करते हैं। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम निम्न दृष्टिकोणों के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे-

- संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural-Functional Approach)
- परिस्थितिकीय दृष्टिकोण (Ecological Approach)
- व्यवहारवादी दृष्टिकोण (Behavioural Approach)

2.4.1 संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural-Functional Approach)

सामाजिक विषयों के विश्लेषण में इस दृष्टिकोण का प्रयोग काफी समय से होता आ रहा है। लोक-प्रशासन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का सिद्धान्त समाजशास्त्र से आया है। टॉलकट पारसन्स, राबर्ट मर्टन, मेरियन लेबी, गेबरियल आमण्ड आदि विचारक इस दृष्टिकोण के समर्थक थे। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण वह है, जो अध्ययन की विधियों में ढ़ाँचे या संरचना के गठन और उसके कार्यों की प्रक्रियाओं के बीच तालमेल के कारणों और परिणामों को पहचानने का प्रयत्न करता है। इसी बात को और स्पष्ट रूप से समझने के लिये राजनीतिक व्यवस्था को शारीरिक व्यवस्था के उदाहरण के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था भी ठीक शारीरिक व्यवस्था की भाँति ही कार्य करती है। हालांकि ये सत्य है कि राजनीतिक व्यवस्था को व्यक्तियों के अनुसार विभाजित नहीं किया जा सकता है परन्तु, फिर भी वातावरण से उठने वाली मांगे तथा वातावरण से प्राप्त होने वाला समर्थन ही निवेशों(Input) का कार्य सम्पन्न करते हैं। राजनीतिक क्रियाओं में लिप्त संरचनाऐं इन्हें विशेष प्रक्रिया के द्वारा परिवर्तित करके नीति तथा नियमों को निर्गत कार्यों (Output) के रूप में समाज को प्रदान करती हैं। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसके अलावा इस व्यवस्था में अनेक विशिष्टीकृत इकाइयां या व्यवस्थाऐं (sub-system) होती हैं। ये हमेशा कार्यरत रहती हैं। इनका सबका अपना-अपना अलग-अलग कार्य और अस्तित्व होता है, फिर भी सम्पूर्ण व्यवस्था को चलाने में इनका पूर्ण योगदान होता है। ये इकाइयाँ या उप व्यवस्थाऐं कुछ इस प्रकार काम करती है कि अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर होती हैं तथा इनमें से एक का आउटपुट (Output) दूसरे का इनपुट (Input) हो सकता है। ये इस प्रकार से

अन्तःनिर्भर होती हैं। आधुनिक विचारक एवं वैज्ञानिक इन्हीं ''इनपुट'' और ''आउटपुट'' के सम्बन्धों और प्रक्रियाओं को पहचानना चाहते हैं और इसी काम के लिये वे जिन विधियों को अपना रहे हैं उनमें से एक विधि ''संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण'' कहलाती है।

लोक प्रशासन में इस दृष्टिकोण का उल्लेख सर्वप्रथम 1955 में ड्वाइट वाल्डो ने किया और इसकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि लोक प्रशासन को सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के रूप में विश्लेषित करने के क्रम में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। प्रो0 रिग्स को वाल्डो का विचार अच्छा लगा और उन्होंने दो वर्ष बाद ही 1957 में इस दृष्टिकोण के आधार पर अपना एक अलग मॉडल ''कृषक औद्योगिकी मॉडल'' प्रस्तुत किया। उसके बाद प्रो0 रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रयोगकर्ता बन गये। इस दृष्टिकोण की ये मान्यता होती है कि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना होती है, जो गतिशील मशीन के समान होता है। इस संरचना और इसके विभिन्न अंगों के द्वारा अपनी क्षमतानुसार कार्य किये जाते हैं। निर्धारित कार्यों को सम्पादित करने वाली विभिन्न संरचनाओं का तुलनात्मक विवेचन और विश्लेषण ही दृष्टिकोण का केन्द्र-बिन्दु है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों ने माना कि लोक प्रशासन एक सुनियोजित एवं गतिशील मशीन के समान है। जिस प्रकार एक साईकिल का अध्ययन किया जाता है, ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। साईकिल पैडल, हैंडल, चेन, पहिये से मिल कर बनती है, इन का सब का अपना अलग-अलग काम होता है। ये सभी भाग अन्तर्निभरता एवं सामूहिकता से कार्य करते हैं, उसी प्रकार हर प्रशासनिक संरचना के विभिन्न अंग होते हैं जो मिलकर काम करते हैं और ये ही संगठनात्मक कार्य कहलाता है। इन सबका सम्पूर्ण विश्लेषण करना ही संगठनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण है। इसमें माना जाता है कि, प्रत्येक व्यवस्था की अपनी कुछ विशेषताऐं होती हैं तथा विशेष लक्ष्य होता है। इसी के अनुरूप वो व्यवस्था अपने संगठन का निर्माण करती है। इसके अतिरिक्त व्यवस्था का हर अंग अपना विशेष कार्य करते हैं और साथ ही वे व्यवस्था को गति भी देते हैं और उसे उसके उद्देश्य तक पहुँचने में भी सहायता करते हैं तथा हर अंग में कार्यात्मक विशेषीकरण रहते हुए भी उनमें अन्तर्निभरता रहती है।

2.4.1.1 प्रकार्य और संरचनाऐं (Functions and Structures)

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के अनुसार प्रमुख संरचनाओं को देखा जाता है और फिर उसके कार्यों को देखा जाता है। या यों भी हो सकता है कि पहले प्रकार्यों को देखा जाये और फिर संरचनाओं की खोज की जाये कि कौनसी संरचना ये काम कर रही है। आशय ये होता है कि कभी ये धारणा बना कर नहीं चलना चाहिये कि अमुक संरचना के अमुक कार्य हैं। इसे उदाहरण के तौर पर यूँ समझा जा सकता है कि, हमें ये मान कर नहीं चलना चाहिये

कि व्यवस्थापिका का कार्य नीति-निर्माण है या कार्यपालिका का कार्य केवल क्रियान्वयन है, बल्कि ये देखना चाहिये कि कौन सी संरचना किन प्रकार्यों को सम्पन्न कर रही है या उस संरचना का अस्तित्व क्यों है? उसकी कितनी उपयोगिता है? क्योंकि कोई भी संरचना तभी तक जीवित रह सकती है जब तक की उसकी उपयोगिता रहेगी।

इस प्रकार संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण या उपागम का मूल ईकाई व्यवस्था का अध्ययन है। आज ये बात सर्वसम्मत है कि किसी भी व्यवस्था में उस व्यवस्था की संरचना और प्रकार्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तथा ये एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं और सन्तुलित भी करते हैं। यही नहीं एक व्यवस्था के प्रकार्य एवं संरचना दूसरी व्यवस्था के प्रकार्यों व संरचना को भी प्रभावित करते हैं। उनमें क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है, इसलिये यह आवश्यक है कि व्यवस्था के अध्ययन में सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाये। इसमें आपस में अन्तर्निभरता होती है और एक व्यवस्था के घटकों की संरचना तथा प्रकार्यों से सम्पूर्ण व्यवस्था प्रभावित होती है।

2.4.1.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताऐं

जैसा कि आप अब तक जान गये होंगे कि इस उपागम द्वारा सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने के लिये संरचना एवं प्रक्रिया दोनों पर बल दिया जाता है। इस उपागम के अनुसार प्रकार्य (विशिष्ट प्रकृति के कार्य) संरचना के परिणाम होते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता है कि केवल एक प्रकार के कार्य एक संरचना द्वारा ही किये जाते हैं या एक संरचना केवल एक ही प्रकार के कार्य करती हो। अर्थात् एक प्रकार के कार्य बहुत सी संरचनाओं द्वारा या एक ही संरचना द्वारा बहुत से प्रकार्य एक साथ किये जा सकते हैं। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन में संरचना एवं उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। प्रो0 एम0 पी0 शर्मा के द्वारा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के सम्बन्ध में तीन मान्यताओं का वर्णन किया गया है। उनका मानना है कि इस उपागम का अध्ययन करते समय इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये- संस्था द्वारा किये जाने वाले प्रकार्यों (functions) की जानकारी। प्रकार्यों को पूरा करने वाली संरचनाओं की जानकारी और प्रकार्यों को किन परिस्थितियों में पूरा किया जाता है।

उपर्युक्त तीनों बातों की पूरी जानकारी प्राप्त करना ही इस उपागम का प्रमुख उद्देश्य होता है।

संक्षेप में, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताओं को यदि बिन्दुवार देखना चाहें तो निम्न बिन्दुओं में देख सकते हैं-

- यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन को सुनियोजित एवं गतिशील तंत्र मानता है।

- इस दृष्टिकोण की मान्यता होती है कि प्रत्येक संस्था की एक निश्चित व्यवस्था होती है।
- हर संरचना द्वारा किये जाने वाले कार्य दूसरी संरचना के कार्यों को प्रभावित भी करते हैं और परस्पर लक्ष्यों की पूर्ति को भी प्रभावित करती है।
- संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की मान्यतानुसार प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था कुछ 'इनपुट' ग्रहण करती है और 'आउटपुट' के रूप में कुछ परिणाम उत्पन्न करती है। इनपुट के अन्तर्गत हितों का समाजीकरण तथा राजनीतिक संचार आदि तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। एवं आउटपुट के रूप में प्रशासनिक व्यवस्था कुछ परिणाम उत्पन्न करती है, यथा- नियम निर्माण, नियम क्रियान्वयन, जन कल्याण आदि।
- कुछ विद्धानों द्वारा ऐसा माना जाता है कि हर समाज के अस्तित्व के लिए कुछ संरचनाऐं एवं कुछ कार्य मूलभूत होते हैं एवं एक ही संरचना के द्वारा भिन्न-भिन्न वातावरण में भिन्न-भिन्न कार्य किये जाते हैं। प्रो0 रिग्स ने प्रत्येक समाज के पांच कार्य मूलभूत माने हैं। ये हैं- आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के लिये ये ही कार्य मूलभूत माने जाते हैं।
- यह उपागम एक मूल्य-निरपेक्ष (स्वतंत्र) उपागम है।
- अन्य- कार्य संचालन से व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है, इन प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है, संस्था पर पड़ने वाले प्रभाव लाभदायक या हानिकारक हो सकते हैं और इन्हें संस्था में कार्य कहा जाता है। यदि ये कार्य अच्छी दशा में है तो सुकार्य कहलाते है और यदि विपरीत दिशा में है तो विकार्य (अपकार्य) कहलाते हैं।

2.4.1.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व

ये उपागम बहुत महत्वपूर्ण उपागम के तौर पर अनेक बार उपयोग में लाया गया। आमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के अध्ययन के लिये इस दृष्टिकोण का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त इस दृष्टिकोण के अनुसार लूसियन पाई ने दक्षिण-पूर्व एशिया का, माइनर वीनर ने दक्षिण एशिया का, कोलमैन ने सहारा क्षेत्र का, ब्लैक स्टोन ने लैटिन अमरीका का तथा डेकार्ट एवस्टोव ने दक्षिण-पूर्वी यूरोप का अध्ययन किया है। आमण्ड तथा कोलमैन का विचार है कि तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के लिये यह एक अच्छा दृष्टिकोण है। उन्होंने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को दो रूपों में ग्रहण किया है- अपने पहले किये गये अध्ययन में इन्होंने

प्रकार्यों पर अधिक बल दिया है और अपने बाद के अध्ययनों में आमण्ड तथा कोलमैन ने संरचनाओं को भी पर्याप्त महत्व दिया है।

पहले किये गये अध्ययनों में जब आमण्ड तथा कोलमैन ने प्रकार्यों (Functions) पर अधिक बल देते हुये माना कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाऐं सात प्रकार के कार्य करती है। इन सात कार्यों में चार 'इनपुट'(Input) कार्य व तीन 'आउटपुट'(Output) कार्य हैं। इन 'इनपुट' व 'आउटपुट' कार्यों को ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रमुख तत्व माना जाता है। आमण्ड तथा कोलमैन के अनुसार ये 'इनपुट' तथा 'आउटपुट' कार्य निम्नलिखित हैं-

इनपुट कार्य	**आउटपुट कार्य**
राजनीतिक समाजीकरण तथा नियुक्ति।	नियम बनाना।
हितों का समाजीकरण तथा रूचि उत्पन्न करना।	नियम लागू करना।
हितों का समूहीकरण या रूचि का संग्रहण।	नियम अधिनियम तथ जनकल्याण।
राजनीतिक संचार या राजनीतिक सम्प्रेषण।	

इस प्रकार कार्यों का 'इनपुट' और 'आउटपुट' कार्यों के रूप में विभेदीकरण करने के बाद आमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के सन्दर्भ में निवेश (इनपुट) कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण माना है। चूंकि ये विद्वान व्यवहारवादी हैं, इसलिये इन्होंने प्रक्रियाओं के अध्ययन पर अधिक बल दिया है, संरचनाओं पर कम। वे असल में कार्यों के आधार पर संरचनाओं को समझना चाहते हैं। आमण्ड का मानना था कि प्रत्येक राजनीतिक संरचना कुछ ना कुछ कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था में उन कार्यों को करने के लिये कितनी विशेषीकृत संरचनाऐं हैं तथा इन कार्यों को कितनी कुशलतापूर्वक किया जाता है, सम्पूर्ण राजनीतिक विकास इसी पर निर्भर करता है। अपने बाद के अध्ययनों में आमण्ड ने संरचनाओं को भी पर्याप्त महत्व दिया है।

राबर्ट मर्टन ने भी प्रकार्यों पर अधिक बल दिया है, जबकि मेरियन जे0 ब्लेबी संरचनाओं के अध्ययन को अधिक महत्व देते हैं। वहीं फ्रेड रिग्स का कहना है कि हमें संरचनाओं तथा प्रकार्यों दोनों के अध्ययन को बराबर महत्व देना चाहिये, तभी अध्ययन वास्तविक हो सकेगा।

2.4.1.4 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचनाऐं अथवा सीमाऐं

यद्यपि तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में संरचनात्मक दृष्टिकोण का अत्याधिक महत्व है, फिर भी इस दृष्टिकोण में अनेक कमियाँ है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाऐं की जाती हैं। इन्हें इस दृष्टिकोण की सीमाऐं भी कहा जा सकता है-

1. **वास्तविक अध्ययन सम्भव नहीं-** यद्यपि विकासिशील देशों के अध्ययन के लिये इस उपागम को उपयुक्त माना गया है। परन्तु इस आधार पर इसकी आलोचना की गई कि, वास्तव में इस उपागम के आधार पर वास्तविक अध्ययन सम्भव नहीं है। विकासशील देशों की अनेक समस्याऐं जैसे- धर्म, जाति, गरीबी, भाषावाद आदि राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अपने प्रभाव डालती हैं। ऐसा माना गया है कि प्रकार्यात्मक आधार पर इस प्रकार का अध्ययन सम्भव नहीं हो सकता है।
2. **परिवर्तन विरोधी-** यह दृष्टिकोण व्यवस्था की उपयोगिता तथा उनके रख-रखाव से सम्बन्धित समस्याओं से अधिक सम्बन्धित दिखायी देता है। अतः यह परिवर्तन विरोधी है।
3. **सुधारवादी नहीं-** संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अत्यन्त वास्तविक हैं, यह केवल वर्तमान का अध्ययन करता है, भविष्योन्मुखता की इस उपागम में अत्यन्त कमी है। यह राजनीतिक व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप तथा कार्यों का अध्ययन समाज की उप व्यवस्था के रूप में करता है तथा परिवर्तन की ओर दिशा-निर्देश नहीं करता।
4. **यथास्थितिवाद-** यह दृष्टिकोण यथास्थितिवाद का समर्थन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था को साम्यवाद से बचाना है। ये हमेशा धीमी गति से राजनीतिक व्यवस्थाओं को पश्चिमी ढर्रे पर ढालना चाहता है। यही कारण है कि मार्क्सवादियों के द्वारा कभी भी इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया गया। यह दृष्टिकोण 'परिवर्तन कैसे हो?' इसका विश्लेषण नहीं करता। यह विकासशील देशों के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में सहायक नहीं है, इसलिये कुछ विचारकों द्वारा इसे 'ढीला-ढाला' तथा 'अपूर्ण' दृष्टिकोण भी कहा जाता है।
5. **संरचना की उपयुक्तता बताने में असमर्थ-** यह उपागम इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि ये परिस्थितियों के अनुसार कौनसी संचना उपयुक्त होगी, इस बात को बताने में भी असमर्थ है।
6. रूढ़िवादिता- इस उपागम की आलोचना का एक आधार यह भी है कि ये रूढ़िवादी है। इसे रूढ़िवादी मानते हुए परिवर्तन का विरोधी कहा जाता है, इसके पीछे ये भी तर्क दिया जाता है कि इसमें पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उदासीनता मिलती है।
7. **प्राकृतिक संरचनाओं का पक्ष-** इस उपागम के द्वारा कृत्रिम संरचनाओं के स्थान पर प्राकृतिक संरचनाओं का पक्ष लिया जाता है, जो इसकी आलोचना का एक अन्य कारण माना जाता है।

8. **संरचना एवं प्रकार्यों के मध्य सम्बन्ध-** इस उपागम की मान्यता कि प्रत्येक संरचना एवं व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले प्रकार्यों के मध्य सदैव सम्बन्ध की व्याख्या की जा सकती है, भी आलोचना का शिकार हुई है, क्योंकि वास्तव में ऐसी व्याख्या सदैव कर पाना कठिन होता है।

अन्त में ये कहा जा सकता है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को अधिक मूल्य-निरपेक्ष बनाने में सहायता प्रदान की है एवं पश्चिमी देशों की प्रशासनिक प्रणालियों के वैज्ञानिक अध्ययन को सरल बनाया है। इस दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन पद्धति के आधार पर यथार्थवादी विश्लेषण भी संभव है। वस्तुतः संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अभिगम का तुलनात्मक लोक प्रशासन में अभी सीमित उपयोग ही किया गया है। रिग्स के प्रतिमानों के अतिरिक्त इस दृष्टिकोण का उपयोग नहीं के बराबर है।

2.4.2 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण (Ecological Approach)

प्रशासन और संगठन के अध्ययन हेतु इस दृष्टिकोण का प्रारम्भ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। आधुनिक युग में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस दृष्टिकोण का बहुत महत्व पूर्ण स्थान है। इसे तुलनात्मक अध्ययन के नाम से भी जाना जाता है। पारिस्थितिकीय(Ecology) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Oikos' से हुई है, जिसका अर्थ है, घर या रहने का स्थान। यह उपागम जीव विज्ञान के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसके अनुसार जिस प्रकार एक पौधे के विकास के लिये विशेष प्रकार की जलवायु, मिट्टी, तापमान तथा नमी आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रत्येक समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं, मूल्यों, परिस्थितियों, राजनीतिक व्यवस्था आदि से जुड़ा होता है। यद्यपि लोक प्रशासन की संस्थाऐं तथा संगठन सावयवी नहीं हैं, तथापि इन संस्थानों की कार्यप्रणाली अवश्य ही पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। अतः लोक प्रशासन अपने परिवेश से अलग रहकर कार्य नहीं करता। परिवेश और वातावरण प्रशासन को प्रभावित करता है।

जे0एम0 गॉस, राबार्ट ए0 डहल, मार्टिन, व प्रो0 रिग्स लोक प्रशासन के अध्यन के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के समर्थक विद्वान माने जाते हैं। इन सब विद्वानों में से भी रिग्स वो पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस दृष्टिकोण के प्रति महत्वपूर्ण योगदान दिया। रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अपने अध्ययन में प्रशासनिक, आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच सम्बन्धों का विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है। परिस्थितिकीय उपागम की मूल मान्यता यह है कि प्रशासनिक व्यवहार, ब्राह्य पर्यावरण जैसे- संस्कृति, समाज, मूल्य, परम्पराओं तथा समस्याओं आदि का परिणाम है। सरल अर्थ में प्रशासनिक प्रक्रिया एक ऐसी व्यवस्था है,

जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है और जो निस्सन्देह बाह्य सामाजिक संस्कृति का ही विस्तार है। लोक प्रशासन में परिस्थितिकी उपागम की शुरूआत 1947 में जॉन एम0 गॉस ने की। उन्होंने कहा ''सरकारी कार्यों पर जनता, स्थान, भौतिक सुविधाओं, मूल्यों, परम्पराओं तथा व्यक्तित्व इत्यादि का पर्याप्त पड़ता है। अर्थात पर्यावरण तथा प्रशासन आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।'' अतः लोक प्रशासन के अध्ययन में परिस्थितिकीय कारकों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। प्रशासनिक संगठन अपने आप में एक स्वतंत्र चर के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, बल्कि वे अपने आस-पास के सामाजिक संगठनों आदि से भी प्रभावित होते हैं। अतः लोक प्रशासन में केवल संगठनों की आन्तरिक संरचना, कार्य, प्रक्रिया तथा व्यवस्था को जानना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि संगठन किस माहौल में कार्यरत है, यह जानना अधिक उपयोगी है।

इसी प्रकार इस दृष्टिकोण के एक अन्य समर्थक रॉबर्ट डहाल के अनुसार ''एक स्थान पर लोक प्रशासन के अध्ययन में यदि कुछ निष्कर्ष प्राप्त हों तो उनका दूसरे स्थान पर स्थित प्रशासनिक संस्थाओं पर परीक्षण करके ही कुछ सिद्धान्त विकसित किये जा सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर परिस्थितिकी एक समान नहीं होती है। अतः इससे प्रशासनिक सिद्धान्तों का भली-भाँति परीक्षण हो जाता है। लोक प्रशासन में सामान्यीकृत नियम प्रतिपादित करने के लिये इसकी प्रविधियों तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में ज्ञान का दायरा विस्तृत करना होगा। अतः प्रशासन के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भों को विश्लेषित किया जाना चाहिए।''

2.4.2.1 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की विशेषताऐं

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा परिस्थितिकीय उपागम के सन्दर्भ में दिये गये विवरणों के आधार पर इसकी कुछ मान्याताओं या विशेषताओं को बिन्दुओं में देखते हैं-

1. लोक प्रशासन भी मानव समाज का एक अंग होता है।
2. जिस प्रकार जीव-जन्तु, वनस्पतियां तथा मानव अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रशासनिक संगठन भी सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक, सभी प्रकार के कारकों से प्रभावित होते हैं।
3. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवहार, प्रशासनिक संगठनों के बाहरी वातावरण एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के कारकों का एक मिश्रित परिणाम है।
4. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था अपने बाहरी वातावरण या परिस्थितिकी से निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया करती रहती है।

5. प्रशासन ना केवल बाहरी वातावरण से प्रभावित होता है, बल्कि वह पर्यावरण को भी प्रभावित करता रहता है।
6. किसी भी संगठन की आन्तरिक प्रशासनिक कार्य-संस्कृति उस देश या समाज के मूल्यों तथा परम्पराओं से बहुत प्रभावित रहती है।
7. तुलनात्मक लोक-प्रशासन के सार्वभौमिक नियम प्रतिपादित करने के लिये उनका तुलनात्मक परिस्थितिकीय अध्ययन किया जाना आवश्यक होता है।

समाज की कुछ आवश्यकताऐं ऐसी होती हैं जो कि परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणशील सभी प्रकार के समाजों में उपस्थित होती हैं। रिग्स ने भी कहा कि समाज की कुछ आवश्यकताऐं ऐसी होती है जो परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणशील सभी प्रकार के समाजों में समान रूप से पायी जाती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी प्रशासनिक आवश्यकताऐं भी हो सकती हैं। लुई ममफोर्ड ने कहा कि ''किसी भी प्रकार का जीवन दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकता, क्योंकि पर्यावरण के बिना किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है।''

2.4.2.2 परिस्थितिकी उपागम की आलोचना या सीमाऐं

परिस्थितिकी उपागम तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य उपागम बन चुका है। ये उपागम प्रयोग में लाने में तो सरल होता है, किन्तु इसको प्रयोग करते समय कुछ समस्याऐं आती है-

1. प्रत्येक शोधकर्ता सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक मूल्यों को अपनी दृष्टि से देखता है। अतः दूसरे देश की सांस्कृतिक विरासत को समझना एक जटिल कार्य होता है।
2. मानव व्यवहार तथा समाज दोनों ही जटिल संरचनाऐं हैं। अतः यह अनुमान लगाना कठिन है कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन, प्रशासन के द्वारा आ रहे हैं या इसके कारक कुछ और हैं?
3. विश्व के सभी देशों में सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासनिक संस्कृति में बहुत विविधता पायी जाती है। ऐसे में इसका विश्लेषण बहुत जटिल हो जाता है और सामान्यीकरण की ओर जाना या सामान्यीकृत आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करना मुश्किल हो जाता है। इसे भारत के उदाहरण से समझा जा सकता है, जहाँ थोड़े मील पर ही बोली, खान-पान, पहनावा सब बदल जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त सभी सीमाओं या कमियों को देखने के बाद से स्पष्ट हो जाता है कि ये कमियाँ उपागम से ज्यादा उसको उपयोग में लाने वालों से सम्बन्धित है। अतः इन कमियों के उपरान्त भी ये उपागम उपयोगी परिणाम देने वाला हो सकता है।

2.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी उपागम (Behavioural Approach)

व्यवहारवादी दृष्टिकोण या उपागम का अध्ययन निम्नलिखित विन्दुओं के माध्यम से करते हैं-

2.5.1 व्यवहारवाद का विकास

व्यवहारवादी उपागम को जानने से पूर्व आइये हम व्यवहारवाद को भली-भाँति जानें और देखें कि ये किस प्रकार से विकसित हुआ। व्यवहारवाद ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया है। यह अक्सर 'व्यवहारिक क्रांति' का नाम दिया जाता है। यह बीसवीं शताब्दी के चौथे और पांचवें दशक में मानवीय सम्बन्धों के आन्दोलन के साथ-साथ प्रारम्भ हुआ। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात प्रभुत्वशाली दृष्टि बन गया। इसका विकास चेस्टर बर्नार्ड व हरबर्ट साइमन ने किया। इसके उपरान्त इसके समर्थकों में पीटर एम0 बलाऊ, मर्टन, वीडनर, सायर्स, फ्रेड0 डब्ल्यू0 रिग्स, इलाऊ आदि थे। अनिवार्य रूप से व्यवहारवाद का सम्बन्ध विभिन्न वातावरण में मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करना है। इस प्रकार लोक प्रशासन में व्यवहारवाद की प्रारम्भिक जड़ें सन् 1930 के मानव सम्बन्ध आन्दोलन से जुड़ी हैं। लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति व्यवहारवादी दृष्टिकोण में 'सिद्धान्तों' के आधार पर गुलिक, उरविक तथा अन्य लेखकों के विचारों को चुनौती दी। इन विचारों को प्रायः शास्त्रीय, पारम्परिक अथवा रूढ़िवादी (Orthodox) दृष्टिकोण कहा जाता था। इस वाद को जन्म देने वालों में हरबर्ट साइमन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। साइमन ने 1946 में 'लोक प्रशासन में लोकोक्तियां' (Proverbs in Public Administration) नामक लेख में यह बताया कि, अब तक लोक प्रशासन में अनेक बातें केवल लोकोक्तियों की तरह स्वयंसिद्ध मान कर ही दोहरायी जा रही हैं। इनको सिद्ध करने के लिये किसी प्रमाण, तथ्य, विवेचन या तर्क की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती है। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से ये कथन असत्य सिद्ध होते हैं। यदि लोक प्रशासन को विज्ञान की श्रेणी में लाना है तो इसके लिये इसके सिद्धान्तों और मान्यताओं को व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरना चाहिये। इसी प्रकार सन् 1947 में हरबर्ट साइमन ने अपनी पुस्तक, "Administrative Behaviour: A Study of Decision-Making Process in Administrative Organization" में लोक प्रशासन के अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण का खण्डन किया। साइमन ने कहा कि यदि हम संगठन का सही और वैज्ञानिक विवेचना करना चाहते हैं तो वह अध्ययन व्यवहार पर आधारित होना चाहिये।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का नवीनतम दृष्टिकोण माना जाता है। ये दृष्टिकोण मनोविज्ञान व समाजशास्त्र के सिद्धान्तों व व्यवहारों से प्रभावित माना जाता है। राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिये

जिन विचारकों ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण का समर्थन किया उन्होंने ही तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस उपागम के उपयोग की प्रेरणा दी। इस दृष्टिकोण को विकसित करने का श्रेय अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिकों को जाता है। आज यह दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्व पूर्ण दृष्टिकोण माना जाता है।

ये दृष्टिकोण परम्परागत अध्ययन, प्रणालियों तथा सिद्धान्तों के विद्रोह स्वरूप प्रारम्भ हुआ। यह एक अन्तरविषयी उपागम है, जो वैज्ञानिक पद्धति तथा मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करता है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण प्रशासनिक व्यवहार पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और इसकी विवेचना करके समग्र प्रशासन उनकी संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं आदि के बारे में अध्ययन करना चाहता है। व्यवहारवाद का अभिप्राय प्रशासनिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण का एक विशिष्ट तरीका होता है। व्यवहारवाद अनुभवात्मक तथा प्रविधियों के निरन्तर सुधार में विश्वास करता है तथा इसमें कल्पना और व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों तथा मानवीय विवरणों आदि का कोई स्थान नहीं है। इसका उद्देश्य लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाना ही होता है। यदि व्यवहारवाद के अर्थ के बारे में विचार किया जाता है तो कह सकते है कि इसके अर्थ के विषय में कोई समान दृष्टिकोण नहीं पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर कुछ व्यवहारवादी इसे केवल एक मनोदशा अथवा मनोवृति मानते हैं और कुछ ऐसा मानते हें कि इस दृष्टिकोण के अपने कुछ निश्चित विचार एवं सिद्धान्त एवं इसकी अपनी कुछ कार्यविधियां है। जैसा कि आपने अभी जाना कि, व्यवहारवादी दृष्टिकोण को विकसित करने में डेविड ईस्टन, वाइडनर ब्याऊमर्टन, हैडी, रिग्स, माइकल क्रोजियर, सायर्स आदि ने महत्व पूर्ण योगदान दिया। इन सभी विद्वानों ने अपने अध्ययन का मूल आधार व्यवहारवाद की मूल मान्याताओं को माना है। डेविड ईस्टन ने जिन्हें व्यवहारवादी क्रान्ति का उद्-घोषक कहा जाता है, इस दृष्टिकोण को 'वैज्ञानिक मनोदशा का प्रतिबिम्ब' कहा है। उनके अनुसार यह एक 'बौद्धिक प्रवृति' और 'तथ्यात्मक शैक्षणिक आन्दोलन' है। व्यवहारवादी एक दृष्टि ही नहीं बल्कि इसे एक समग्र क्रान्ति के तौर पर देखा जाता है। इसकी चार मूल मान्यताऐं हैं-

1. व्यवहारवादियों की ये मान्यता है कि अध्ययन की इकाई जब तक बहुत बड़ी(Macro) है, तब तक अध्ययन गहन नहीं बन सकेंगे। अतः उनका मानना है कि इस विशालता को विशेषीकरण की दृष्टि से तोड़कर लघुता (Micro) की इकाइयों में परिवर्तित कर दिया जाये। अर्थात् ये दृष्टिकोण छोटे-छोटे विषयों पर गहन और गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता देता है।
2. व्यवहारवादी दृष्टिकोण अध्ययन की वैज्ञानिकता का बड़ा पक्षधर है। अर्थात् यह निरीक्षणवादी, अनुभववाद, तुलनात्मक एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता है।

3. तीसरी मान्यता ये है कि ज्ञान की समग्रता एवं सच्चाई इस बात पर निर्भर करती है कि वह ज्ञान के अन्य पहलुओं से कितना सम्बन्धित है।
4. यह दृष्टिकोण एक अनुभवमूलक सिद्धान्त का प्रणयन करना चाहता है। व्यवहारवादी अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, सन्दर्भ ज्ञान, परिस्थिति विवेचन आदि के आधार पर सम्पूर्णता का गहनता से विश्लेषण करते हैं और ये मानकर चलते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन अध्ययन विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं का आविष्कार कर सकता है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण के ध्यान का केन्द्र मानवीय व्यवहार है जिसमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा मानव विज्ञान भी सम्मिलित है। यह प्रशासनिक प्रक्रियाओं का, जो कई प्रकार के संगठनों में सामान्य है, विवरण देने का दावा करता है। संक्षेप में व्यवहारवाद का सम्बन्ध व्यक्ति के केवल बाहरी कार्यों से नहीं है, बल्कि उसकी भावनात्मक, ज्ञानात्मक और मूल्यांकनात्मक प्रक्रियाओं से भी है।

2.5.2 व्यवहारवाद की विशेषताऐं

डेविड ईस्टन, कैटालिन, राबर्ट डहाल आदि व्यवहारवादी विचारकों के द्वारा व्यवहारवादी उपागम की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है-

1. **वैज्ञानिकता के प्रति झुकाव-** व्यवहारवादी विचारक सदैव अपने अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने का प्रयास करते हैं। हरबर्ट साइमन जो इस दृष्टिकोण के एक प्रमुख विचारक माने जाते हैं, ने लोक प्रशासन का अध्ययन करते समय क्या होना चाहिये के स्थान पर, जो है उसका विवेचन किया। व्यवहारवादियों का ये मत है कि, लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक अध्ययन विषय है, इसको केवल मूल्यों सम्बन्धी विवेचन करने की अपेक्षा तथ्यसंगत, वास्तविक और व्यवहारिक बनाया जाना चाहिए। इसके निष्कर्ष स्थायी और सर्वव्यापी होने चाहिये। इसके लिये वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली को अपनाया जाना चाहिये। ऐसा होने पर ही लोक प्रशासन का अध्ययन सत्य, निष्पक्ष, गहन एवं विश्वसनीय बन पायेगा। यही कारण रहा कि सभी व्यवहारवादी विचारक निरीक्षणवादी, अनुभववादी एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता बन गये।
2. **व्यष्टि(Micro) अध्ययन का समर्थन-** व्यवहारवादी विचारक ऐसा मानते हैं कि, अध्ययन की इकाई जब समष्टि (Macro) अर्थात् बड़ी होती है तो अध्ययन गहन नहीं हो पाता है। अतः उन्होंने माना कि अध्ययन को गहन और विशिष्टकृत बनाने के लिये अध्ययन को व्यष्टि (Micro) अर्थात् छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटना चाहिये। अर्थात् व्यापकता की अपेक्षा गहनता की ओर बढ़ना चाहिये या यूँ कहें कि समष्टि से व्यष्टि (Macro to Micro) की ओर बढ़ना चाहिये। व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने छोटे-छोटे

विषयों के गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता दी है। व्यवहारविदो के मतानुसार किसी बड़े संगठन का अध्ययन करने के लिये हमें उस संगठन में पर्यवेक्षण की प्रक्रिया, आदेश की एकता, नियंत्रण प्रक्रिया, प्रत्यायोजन व्यवस्था आदि पहलुओं में से किसी एक पहलू का गहन अध्ययन करना चाहिये। इसका कारण यह है कि मानव मस्तिष्क की शक्तियों, ध्यान, अनुभव और रूचि आदि सीमित होते हैं।

3. **अनुभवमूलक सिद्धान्त-** व्यवहारवादी विचार अनुभववाद से अत्यधिक प्रभावित है। इसका कारण है कि व्यवहारवादी विचारक, अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, सन्दर्भ ज्ञान और परिस्थिति के विवेचन के आधार पर समस्याओं का विवेचन करते हैं। इन विचारकों ने ये भी माना कि लोक प्रशासन भी एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं का निर्माण कर सकने में समर्थ है।
4. **सन्दर्भ विशेष का महत्व-** लोक प्रशासन की समस्याओं की विवेचना वैज्ञानिक विधि के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये, ऐसी व्यवहारवादी विचारकों की मान्यता है। अर्थात् यह ज्ञान की पूर्णता या निरपेक्षता में विश्वास नहीं करता। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि ज्ञान की सत्यता और उपयोगिता उसके सन्दर्भ विशेष पर ही निर्भर करती है। ज्ञान के दूसरे अन्य विषयों के साथ उनके अन्तर्सम्बन्ध महत्व रखते हैं।
5. **अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन-** ये उपागम मनुष्यों के बीच के अनौपचारिक सम्बन्धों के अध्ययन पर बल देता है, क्योंकि यदि प्रशासनिक संगठनों में केवल औपरचारिकतापूर्ण व्यवहार रखा जाये तो ये कभी-कभी बहुत अव्यवहारिक एवं अमानवीय भी हो सकता है। ऐसा माना गया है कि प्रशासन में भी इस प्रकार की अनेक समस्याऐं आती हैं, जिनमें मानवीय दृष्टिकोण को महत्व दिया जाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त एक और तर्क ये भी दिया जाता है कि, लोक प्रशासन में मानव ही कार्यरत होते हैं। अतः उसमें उनके अनौपचारिक सम्बन्धों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।
6. **नेतृत्व का गुण-** ये दृष्टिकोण इस बात पर भी बल देता है कि लोक प्रशासन में व्यक्तियों में नेतृत्व के ऐसे गुण होने चाहिये, जिसके द्वारा अपने अधीनस्थों से अपने कार्य में सहयोग प्राप्त कर सके और साथ ही उनका कुशलतापूर्वक नेतृत्व भी कर सके।
7. **व्यक्ति और प्रशासन का सिद्धान्त-** व्यवहारवादी उपागम व्यक्ति के प्रशासनिक संगठन के साथ सम्बन्ध पर विशेष बल देता है। इसमें प्रशासन व व्यक्ति के कार्य करने के उद्देश्य, निर्णय लेने की प्रक्रिया व अधिकार के स्वरूप पर विशेष विचार किया जाता है।

8. **अन्तर्निभरता और अर्न्तअध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की समन्वित पुष्टि-** व्यवहारवादी उपागम अन्तर्निभरता और अर्न्तअध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की एक समन्वित दृष्टि माना जाता है। एक ओर तो यह उपागम लोक प्रशासन के अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन पर बल देता है, वहीं दूसरी ओर ये लोक प्रशसन को एक स्वतंत्र विज्ञान मानता है।

2.5.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के लोक प्रशासन पर प्रभाव

आप अब तक यह जान गये होंगे कि, लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में व्यवहारवादी उपागम का विशेष योगदान रहा। 1960 के दशक के करीब ये दृष्टिकोण शिखर पर था। इस दृष्टिकोण में लोक प्रशासन पर बहुत प्रभाव डाला। इसे निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है-

1. **वैज्ञानिक अनुभववाद-** व्यवहारवाद ने वैज्ञानिक अनुभववाद के माध्यम से लोक प्रशासन को नवीन दृष्टि व नवीन क्षेत्र प्रदान किया। व्यवहारवादियों ने औपचारिक दृष्टिकोण के साथ व्यवहारवादी मान्याताओं को जोड़कर उसे पूर्ण बनाने का प्रयास किया।
2. **विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के समारम्भ का सूचक-** ये दृष्टिकोण अभी समाज विज्ञानों में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के आरम्भ का सूचक है। इस दृष्टिकोण से लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नवीन दृष्टि, नवीन सोच दिशा-बोध एवं नया स्वरूप प्राप्त हुआ है।
3. **सन्दर्भ के महत्व का प्रतिपादन-** इस दृष्टिकोण के द्वारा लोक प्रशासन के विद्वानों को सन्दर्भ का महत्व पता चला। इस दृष्टिकोण के कारण ही लोक प्रशासन का अध्ययन समाजशास्त्र, दर्शनशासत्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्तों, पद्धतियों, उपलब्धियों तथा दृष्टिकोणों के समीप आया है।
4. **प्रविधियों एवं तकनीकों का प्रयोग-** व्यवहारवाद ने लोक प्रशासन में भी नवीन तकनीकों और प्रविधियों के प्रयोग को समभव बनाया।
5. **शोध का विषय बनाना-** इस दृष्टिकोण के द्वारा सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं को यथार्थ के सन्दर्भ में शोध का विषय बनाया जा सकता है।
6. **लोक प्रशासन का सम्बन्ध 'क्या लेना याहिये' के स्थान पर 'क्या है' से स्थापित करना-** इस दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन के मूल्यों को स्वतंत्र बनाने का प्रयास किया है। लोक प्रशासन के मूल्यों को आधुनिकता और एकता प्रदान करने के लिए इसका सम्बन्ध 'क्या होना चाहिये' के स्थान पर 'क्या है' से स्थापित किया है।

7. **नवीन दृष्टि प्रदान करना-** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने अपने निष्कर्षों के माध्यम से लोक प्रशासन को एक नवीन दृष्टि, नवीन पद्धति, नये मापन और नवीन विषय-क्षेत्र प्रस्तुत किये है।
8. **लोक प्रशासन को व्यवहारिक विषय बनाना-** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन को एक वैचारिक अध्ययन के विषय के स्थान पर व्यवहारिक अध्ययन का विषय बनाया है तथा इसे केवल वर्णनात्मक विषय की बजाय एक विश्लेषणात्मक विषय की ओर उन्मुख किया।
9. इस प्रकार व्यवहारवादी उपागम क्षेत्रीय दृष्टिकोण के विपरीत सर्वव्यापी होने पर बल देता है। इसने लोक प्रशासन में वैज्ञानिक अनुसंधान तथा व्यवस्थित सिद्धान्त-निर्माण को प्रेरणा दी। अब परिकल्पनाओं का अन्तः सांस्कृति सन्दर्भ में परीक्षण करने से तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन एक आवश्यकता बन गया है। विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं के भिन्न-भिन्न पर्यावरणों का अध्ययन करने के लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन ने कई सामाजिक विज्ञानों से धारणाऐं, उपकरण तथा जांच-परिणाम उधार लिये हैं और इस प्रकार अन्तर्विषयक(Interdisciplinary) दिशा विकसित की है, स्वयं व्यवहारवाद में एक छाते(umbrella) का काम किया है। जिसके अधीन तुलनात्मक लोक प्रशासन जो न केवल लोक प्रशासन के साथ अपितु अन्य कई विषयों के साथ विभिन्न रीतियों की अन्तर्क्रिया प्राप्त हुई है।

2.5.4 व्यवहारवादी दृष्टिकोण की आलोचना

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप भली-भाँति जान गये होंगे कि व्यवहारवादी उपागम ने लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नया दृष्टिकोण, नई दिशा दी और अपनी उपयोगिता भी साबित की। हींज यूलाउ के अनुसार, अवसर पूर्ण धारणाऐं, भय, समय, संकीर्ण दृष्टि, कार्य प्रविधियों तथा पद्धतियों की अपूर्णता, आदि कुछ ऐसी सीमाऐं हैं जो व्यवहार की सफलता पर अंकुश भी रखती हैं और उसे सीमित भी रखती हैं। 1960 के दशक के करीब व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपने चरमोत्कर्ष पर था। अमरीकी राजनीति संस्कृति जीवन प्रणाली तथा विज्ञान बनाने के सम्मान ने इसे विकसित होने में सहायता प्रदान की। परन्तु जैसे-जैसे इस दृष्टिकोण की मान्यता बढ़ने लगी, इसकी कमियां भी सामने आने लगी। हींज यूलाउ के अनुसार, अवसर के पूर्ण धारणाऐं, भय, समय, संकीर्ण दृष्टि, कार्य प्रविधियों तथा पद्धतियों की अपूर्णता, आदि कुछ ऐसी सीमाऐं हैं जो व्यवहार की सफलता पर अंकुश भी रखती हैं और उसे सीमित भी रखती हैं। मलफोर्ड सिबले ने व्यवहारवाद की कुछ और सीमाओं को विस्तार से वर्णन किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. **लोक प्रशासन को विज्ञान मानते की बात अनिश्चयपूर्ण-** व्यवहारवादी विचारकों के द्वारा मानव व्यवहार का विज्ञान प्रस्तुत नहीं किया जा सका। इतने समय बाद भी लोक प्रशासन को विज्ञान मानने की बात अभी अनिश्चयपूर्ण ही बनी हुई है।
2. **लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का दुराग्रह-** व्यवहारवादी विचारक इस बात को भूल जाते हैं कि, प्राकृतिक विज्ञानों तथा लोक प्रशासन के तथ्यों में बहुत अन्तर है। वास्तव में लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास करना अत्यधिक कठिन है।
3. **अध्ययन की पद्धति पर अत्यधिक बल-** व्यवहारवादी विचारक अध्ययन की पद्धति पर अधिक बल देते हैं। अनेक बार ये भी देखा गया है कि व्यवहारवादी विचारकों ने महत्वपूर्ण विषयों को छोड़कर महत्वहीन विषयों के सम्बन्ध में तथ्यों और आंकड़ों को एकत्रित करने में ही अपने आपको बहुत व्यस्त रखा है।
4. **अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में कट्टरपंथी-** व्यवहारवादी विचारक एक ओर जहाँ अपने निष्कर्षों तथा मान्यताओं को सापेक्ष मानते हैं, वहीं दूसरी ओर वे उस समय तक किसी के अस्तित्व को महत्व नहीं देते जब तक कि उसे गिना, तोला या मापा नहीं जाता। इस दृष्टि से ये भी धार्मिक कट्टरपंथियों के समकक्ष बन जाते हैं।
5. **अन्तिम मूल्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं-** कुछ आलोचक विद्वानों का मानना है कि व्यवहारवादी विचारकों ने अन्तिम मूल्यों के विवेचन के बारे में कुछ नहीं कहा, जो कि एक असन्तोषजनक स्थिति है। अतः ये कहा गया है कि कोई भी उद्देश्यहीन कार्य प्रशासनिक कार्य की कोटि में कैसे हो सकता है?
6. **रूढ़िवादी-** व्यवहारवादी विचारक अपने आपको मूल्य निरपेक्ष मानते हैं परन्तु वास्तव में स्थायित्व के पक्षधर हैं इस प्रकार वे रूढ़िवादी बन गये हैं।
7. **इतिहासोत्तर प्रकृति-** व्यवहारवादी विचारकों की प्रकृति इतिहासोत्तर मानी जाती है, क्योंकि उनकी पद्धति में अब तक जो हो चुका है उसकी अवहेलना की गयी है।
8. **लघु-स्तरीय एवं अति महत्वपूर्ण घटनाओं पर अधिक ध्यान-** एक आलोचना ये भी की जाती है कि व्यवहारवादियों ने अपनी समस्त शक्ति लघु-स्तरीय एवं महत्व पूर्ण घटनाओं के अध्ययन में लगायी है और ऐसा माना गया कि इन्होंने व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को उपेक्षित किया है।

9. **उपयोगितावाद पर प्रश्न चिन्ह-** व्यवहारवादी विचारकों ने वैज्ञानिकता की आड़ में जिस तरह से कल्पना शक्ति का सहारा लिया है, उसके कारण इस वाद की उपयोगिता पर ही प्रश्न-चिन्ह लग गया है।
10. **मात्र एक मनोवृत्ति-** कुछ वैज्ञानिक इस दृष्टिकोण या उपागम को एक सिद्धान्त या अध्ययन का उपागम मानने की अपेक्षा मात्र एक मनोवृत्ति ही करार देते हैं, जो एक विशेष सोच से प्रेरित थी।
11. **नीति-निर्माण में सीमित उपयोग-** नीति-निर्माण के क्षेत्र में भी व्यवहारवाद का उपयोग सीमित है। इस क्षेत्र में व्यवहारवाद से प्राप्त निष्कर्ष के अतिरिक्त कई अन्य कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं।
12. **मानव-व्यवहार का सटीक विश्लेषण करने में समर्थ-** व्यवहारवादी उपागम से अभी तक मानव व्यवहार का सटीक विश्लेषण नहीं हो सका है क्योंकि, विश्व की सबसे जटिल अवधारणा, आश्चर्य तथा समस्या 'मानव व्यवहार' ही है। व्यवहारवादी भी मानव व्यवहार की व्याख्या करने में असमर्थ हैं।

व्यवहारवादी उपागम की उपरोक्त कमियों या आलोचनाओं के कारण ही सन् 1920 के आस-पास उत्तर -व्यवहारवादी आन्दोलन का आरम्भ हुआ। राजनीतिशास्त्री डेविड ईस्टन में व्यवहारवाद को पर्याप्त मात्रा में विकसित किया तथा उन्होंने ही उत्तर -व्यवहारवाद की शुरूआत की। उत्तर -व्यवहारवाद में वास्तविकताओं को समझने, मानव कल्याण को गति देने, पूर्ण मूल्य-निरपेक्षता से बचने तथा विचारों की संगतता को महत्व दिया गया है। अतः कहा जाता है कि परम्परावादी अध्ययन प्रणालीवाद(Thesis) थी, व्यवहारवादी आन्दोलन प्रतिवाद(Antithesis) बना, उत्तर -व्यवहारवादी संश्लेषषण या संवाद(Synthesis) का पर्याय है।

अभ्यास के प्रश्न-

1. 'इडियोग्राफिक' तथा 'नोमोथेटिक' शब्द किसके द्वारा रचित है?
2. व्यवहारवादी उपागम के बारे में कौन सा वाक्यांश सही है?
3. कौन विद्वान लोक प्रशासन की परिस्थितिकी अथवा पर्यावरणात्मक अध्ययन से नहीं जुड़ा है?
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की उत्पत्ति किस विद्वान ने की?

2.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में आपने जाना कि सामान्यतया लोक प्रशासन के अध्ययन की सुविधा हेतु मुख्यतया दो प्रकार के दृष्टिकोण प्रचलित हैं- परम्परागत एवं अर्वाचीन। परम्परागत दृष्टिकोण को मानने वाले विचारक संगठन के सिद्धान्त, विशेषताओं, आवश्यकताओं आदि पक्षों को केन्द्रीय विषय मानते हैं। इन विचारकों ने लोक प्रशासन की सम्पूर्ण समस्याओं को कानूनी दृष्टिकोण से देखा और लोक प्रशासन की व्याख्या में औपचारिकता, ऐतिहासिकता,

वर्णनात्मकता एवं वैचारिकता को प्राथमिकता दी। इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक व्हाइट, विलोबी और एण्डरसन हैं। परम्परागत दृष्टिकोण के अन्तर्गत कानूनी, ऐतिहासिक, विषय-वस्तु, राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं जीवन-वृत्तात्मक(संस्मरणात्मक) पद्धतियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इन पद्धतियों में क्रमशः ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर ही प्रशासकीय विकास का अध्ययन, संवैधानिक और प्रशासकीय कानून के माध्यम से सरकार के तीनों अंगों (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका) आदि का तथा विभिन्न विभागों के संगठन, स्थानीय इकाइयों का गठन कैसे किया जाता है तथा ये कार्य कैसी करती हैं आदि का अध्ययन किया जाता है। साथ ही प्रशासकीय योजनाओं तथा सेवाओं का अध्ययन, निरीक्षण और पर्यवेक्षण के आधार पर विशिष्ट घटनाओं से सामान्य नियम बनाने की आवश्यक सामग्री का संग्रह करके उसे विभिन्न वर्गों में विभाजित करने की तथा इनके सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनाऐं करके उनकी सत्यता परखने की पद्धति का अनुसरण किया जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण के आधार पर प्रशासकीय समस्याओं को राजनीतिक समस्याओं का अंग ही माना गया तथा आवश्यकता जाहिर की गयी कि प्रशासनिक समस्याओं को समझने के लिये राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। वरिष्ठ प्रशासकों के कार्यों तथा अनुभवों के अभिलेखों तथा संस्मरणों का अध्ययन करके प्रशासन की समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक एवं व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने की बात जीवन-वृत्तात्मक पद्धति में मानी गयी।

आधुनिक अथवा अर्वाचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत-संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण, परिस्थितिकी दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी दृष्टिकोण को सम्मिलित किया जाता है। संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक आमण्ड, ईस्टन एवं एप्टर माने जाते हैं। इस दृष्टिकोण का उपयोग किसी व्यवस्था का वर्णन करने के लिए एक पद्धति के रूप में किया जाता है। वाल्डो ने माना था कि यह पद्धति उपागम समाजशास्त्रीय उद्देश्यों और पद्धतियों की प्रतिबद्धता से प्रेरित है, लेकिन यह मानविकी की परम्परागत संवेदनशीलता तथा शोध की अपेक्षा शिक्षा की व्यवहारिक रूचि से प्रभावित है। परिस्थितिकी दृष्टिकोण का सर्वप्रथम प्रयोग आई0 एम0 गॉस ने किया। रिग्स तथा डहल ने भी इस दृष्टिकोण के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। परिस्थितिकी दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रशासनिक समस्याओं का अध्ययन लोगों और उनके वातावरण के समर्थन में उनकी नागरिक मनोवृत्तियों और कुछ विशेष समस्याओं को दृष्टि में रख कर किया जाता है। रिग्स ने भी इस मामले में व्यापक चर्चा करते हुए कहा कि वातावरण का भले ही संगठन और प्रशासन पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु संगठन और प्रशासन का वातावरण पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रचलन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। साइमन, वीडनर, रिग्स आदि विचारकों ने लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये व्यवहारवादी दृष्टिकोण को अपनाया अर्थात्

इन्होंने प्रशासनिक संगठन में मानवीय व्यवहार का स्वरूप कैसा होता है? और विभिन्न प्रकार के संगठन किस तरह अन्य गतिविधियों को संचालित करते हैं? के अध्ययन पर बल दिया है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक तथा परिमाणात्मक पद्धतियों को प्रयोग में लिया जाता है। मनोवैज्ञानिक पद्धति ने अपनी मान्यताओं से ये सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनुष्य या समूहों की इच्छाऐं तथा उनके व्यवहार प्रशासन को प्रभावित करते हैं इसलिये कानून बनने से पहले मानवीय तत्व का अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

प्रमाणिकता- किसी वस्तु आदि के संदर्भ में अनुभव के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत न करने अपितु उसे परीक्षण के उपरान्त स्वीकार करने की अवस्था, प्रस्थापनाऐं- विशिष्ट रूप से संस्थापित करना, आगमनात्मक- तर्क की जिस प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों के ज्ञात तथ्यों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन निर्मित किया जाता है, परिलक्षित- अच्छी तरह से देखा भाला हुआ, अनुप्रेरित- जो किसी प्रेरणा से प्रेरित हो, अभिलेख- महत्वपूर्ण लेख, दस्तावेज, मितव्ययता- कम खर्चा, चर- परिचायक या गतियान, विश्लेषित- अलग किया हुआ, गतिशील- उन्नतिशील, क्रियाशील जिसमें गति हो, समाजीकरण- वह प्रक्रिया जिसमें मनुष्य दूसरों से अन्तःक्रिया करता हुआ समाज के रीति रिवाजों, विश्वासों को सीखता है, मूल्य-निरपेक्ष- जो किसी के पक्ष में न हो, संक्रमणशील- जिसमें निरन्तर बदलाव हो रहा हो, यथार्थवादी- जो वस्तु, विचार या सिद्धान्त जिस रूप में हो उसे उसी रूप में स्वीकार करना, मनोवृत्ति- मन की स्वभाविक स्थिति जिसके कारण व्यक्ति किसी ओर प्रवृत होता या हटता है, संगतता- संगत होने की अवस्था या भाव, प्रतिवाद (Antithesis)- विरोध, खण्डन, किसी कथन को मानने से इन्कार करना, दुराग्रह- अनुचित, सापेक्ष- जो दूसरों पर आधारित तथा आश्रित हो, संवाद/संश्लेषण- सहमति या स्वीकृति।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिग्स, **2.** अपनी प्रकृति में अनुभविक, **3.** डवाईट वाल्डो, **4.** चेस्टर बर्नाड और हरबर्ट साइमन

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा-2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर-2013
3. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन-1978

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य समग्री

1. अनिल गुप्ता, महिपाल चारण हिलोडी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी बुब हाउस, जयपुर-2005
2. एम0पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद-2015

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अध्ययन की प्रमुख पद्धतियों का वर्णन कीजिए। इसमें से आप किस पद्धति को क्षेयस्कर समझते हैं और क्यों?
2. लोक प्रशासन के अध्ययन की विभिन्न प्रणालियों का वर्णन कीजिए।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन में विभिन्न उपागमों की विवेचना कीजिए।
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 3 प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन

3.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश

3.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश

3.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश

3.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन में पर्यावरण, परिवेश अथवा परिस्थितिकी के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। ऐसा माना गया है कि जिस प्रकार से एक पौधे के लिये उपयुक्त जलवायु, प्रकाश और बाहरी वातावरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार से एक सामाजिक संस्था के विकास और प्रशासन के लिये भी एक विशेष वातावरण आवश्यक है। मार्क्स के समय से ही यह माना जाता है कि व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का स्वरूप उसकी बाहरी परिस्थितियों के द्वारा निर्धारित होता है। आज जब सम्पूर्ण राज्य का स्वरूप ही प्रशासनिक हो गया है तो किसी भी संस्था या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे. पर्यावरण, संस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक. परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान का एक विषय है। इसे समझने के लिये देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पर्यावरण और लोक प्रशासन की अन्तर्सम्बद्धता को समझ पायेंगे।
- भली-भाँति समझ पायेंगे कि विभिन्न प्रकार का पर्यावरण लोक प्रशासन को किस प्रकार प्रभावित करता है?

3.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन

मनुष्य तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य संस्थान पर्यावरण की देन है। पर्यावरण (Ecology) का शब्द जीवशास्त्र से लिया गया है। जहाँ इसका अभिप्राय होता है, पशु जाति तथा इसके प्राकृतिक वातावरण में परस्पर निर्भरता। किसी सामाजिक व्यवस्था में, वातावरण या पर्यावरण का अर्थ है- संस्थान, इतिहास, विधि, आचारशास्त्र, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल प्रतीक, पौराणिक गाथाऐं आदि, जिनको भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। एक ही प्रकार की संस्थाऐं अलग-अलग वातावरणों में विभिन्न प्रकार से कार्य करती है। अतः यदि हम किसी संस्था के संगठन और उसके कार्यों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो तत्सम्बन्धी वातावरण का विवेचन करना आवश्यक होगा। चूंकि लोक प्रशासन एक उप-व्यवस्था है, इसकी सामाजिक व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया होती है, सामाजिक व्यवस्था इसके आकार को ढालती है और यह सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में ये बात पूर्ण रूप से सत्य है, क्योंकि जो प्रशासनिक संस्थाऐं एक देश में सफलतापूर्वक कार्य करती है, उनको दूसरे देश भी अपनाने का प्रयास करते हैं। इनकी सफलता के लिये आवश्यक होता है कि उसके लिये उपर्युक्त पर्यावरण की व्यवस्था की जाये। अतः उस देश विशेष की समस्या परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थाओं के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक व्यवस्था और सरकार के रूप में भी अध्ययन किया जाये। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व है। प्रशासन के कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है, ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरूआत करते समय उपयुक्त परिवेश की

व्यवस्था की जा सके। अर्थात् लोक प्रशासन तथा पर्यावरण का सम्बन्ध द्विपक्षीय है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में वी0पी0 सिंह कहते हैं ''किसी भी समय प्रशासन पर सांस्कृतिक वातावरण का अचूक प्रभाव होता है।'' 1947 में जॉन एम0 गॉस ने, लोक नौकरशाही और इसके पर्यावरण की अनिवार्य परस्पर निर्भरता का अध्ययन करने के लिये पर्यावरण की धारणा को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया। उसी वर्ष राबर्ट डहल ने अंतः सांस्कृतिक अध्ययनों की बात कही और प्रशासनिक ढाँचों और व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव पर बल दिया। उन्होंने कहा कि लोक प्रशासन, 'राष्ट्रीय. मनोविज्ञान' तथा राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के प्रभाव से बच नहीं सकता। 1950 के उपरान्त ही पर्यावरण की लोक प्रशासन के साथ संगति (Relevance) के अध्ययन में वास्तविक और विस्तृत रूचि देखी गयी। लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक अध्ययन के अर्थ और महत्व को रमेश के0 अरोड़ा तथा अगस्टो फेरेरोस ने बताया कि लोक नौकरशाही को समाज के कई बुनियादी संस्थानों में से एक समझा जाना चाहिये। अतः इसके ढाँचे और कार्य को समझने के लिये इसका अध्ययन दूसरे संस्थानों के साथ पारस्परिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये। अतः उस देश विशेष की समस्या. परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थानों के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक. व्यवस्था और सरकार के रूप के सन्दर्भ में भी अध्ययन किया जाये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व होता है। प्रशासन की कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है? ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरुआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। डॉ0 आर0 के0 दुबे ने पर्यावरण या परिवेश के अध्ययन की इसी महत्ता को बताते हुए कहा कि ''लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की ये मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक समस्या की जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य. परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।''

सन् 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक, "The Ecology of Public Administration" प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया गया था। रिग्स का कहना है कि ''किसी भी प्रशासनिक संरचना का महत्व उसकी परिस्थितिकी के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है।'' रिग्स के अतिरिक्त जॉन एम0 गौस, रॉबर्ट डल, रास्को मार्टिन

आदि विद्वानों ने भी लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्यन को व्यापक, विस्तृत एवं समृद्ध बनाया है। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी का अध्ययन करने एवं तद्अनुसार प्रशासनिक कार्यकलापों का विश्लेषण करने से प्रशासनिक सुधारों को एक सार्थक दिशा मिल सकती है एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासनिक प्रक्रियाऐं तथा व्यवहार परिवर्धित किया जा सकता है।

अतः यह स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न स्थितियों में लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक आयामों का ज्ञान लोक प्रशासन के अध्ययन के वैज्ञानिक विकास में सहायता दे सकता है। इसका व्यवहारिक महत्व इस बात में है कि, यह तकनीकी सहायता तथा प्रशासनिक विकास के क्षेत्रों में नीति-निर्माण प्रक्रिया का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करता है।

3.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश

जैसा कि आपने अभी जाना कि लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः सभ्यता तथा संस्कृति में वही अन्तर माना जाता है जो शरीर तथा आत्मा में होता है। सभ्यता बाह्य, भौतिकवादी तथा शीघ्र परिवर्तित होने वाले सामाजिक सन्दर्भो की व्याख्या करती है, जबकि संस्कृति आन्तरिक, आध्यात्मिक तथा मानव व्यवहार के पक्षों से जुड़ी है। 'संस्कृति' शब्द की उचित व्याख्या करना बहुत कठिन है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का अर्थ किसी समुदाय की जीवनशैली है, जिसका समुदाय के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा एवं जीवनशैली पर विशेष प्रभाव पड़ा है एवं समाज की संस्कृति अपने नागरिकों को अनेक आदर्शात्मक मूल्य प्रदान करती है। इन मूल्यों से लोक प्रशासन का संगठन एवं व्यवहार भी अछूता नहीं रहता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के निम्न अधिकारियों के प्रति दृष्टिकोण आदि पर इस बात का विशेष प्रभाव पड़ता है कि उस समाज विशेष की संस्कृति और मूल्य क्या हैं? एक-दूसरे को सम्मान देना, शिष्ट भाषा में विरोध करना तथा किसी भी कार्य के प्रति सहयोग, सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण अपनाना, अन्तः संस्कार और संस्कृति की ही अमूल्य देन होते हैं। संस्कार, संस्कृति और मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक व संवैधानिक कानूनों का निर्माण किया जाता है और यही कारण है कि एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून दूसरे देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून से एकदम भिन्न और विपरीत होते हैं। जी0ई0 ग्लेडन ने भी अपनी पुस्तक, "Dynamics of Public Administration" में लोक प्रशासन और सांस्कृतिक परिवेश के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि ''यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामजंस्य स्थापित नहीं करती, तो सामाजिक

असन्तोष और हिंसा से ढांचा अन्ततः ध्वस्त ही हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामांजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।''

यदि भारतीय संस्कृति पर नजर डालें तो, भारतीय संस्कृति की धारा अनेकों बार अवरूद्ध भी हुई, परन्तु समय-समय पर भारतीय महापुरूषों ने उसे पुनः एकीकृत किया। साथ ही आधुनिक स्वरूप प्रदान करके उसे शाश्वत भी बना दिया। सामाजिक मूल्य, सम्प्रदाय, रूढ़ियां, भाषा, संचार, रहन-सहन, खान-पान, बोली तथा धर्म आदि संस्कृति के अंग माने जाते हैं। लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले प्रमुख सांस्कृतिक पर्यावरणीय कारकों में धर्म एवं साम्प्रदायिक आस्थाऐं, भाषा एवं बोली, शिक्षा तथा मूल्य, पहनावा, परम्पराऐं, रीति-रिवाज, लिपि, संचार के साधन आदि आते हैं।

सभ्यता व संस्कृति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है और इसे कई कारकों ने परिवर्तित किया है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कभी बहुत तीव्र और कभी धीमी भी रही है। व्यक्ति के व्यवहार तथा प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करने में सम्बन्धित समाज की सांस्कृतिक विशेषताऐं बहुत प्रभाव डालती है। यदि धर्म के सन्दर्भ में देखा जाये तो भारत जैसे देश में अनेक धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं। धर्म का अभिप्राय सामान्य शब्दों में होता है। वे तत्व जिनके रहने से ये समाज रहता है और जिनके ना रहने से यह समाज बिखर कर नष्ट हो जाता है। जैसे- धैर्य, क्षमा, उदारता, सन्तोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, सत्य, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, सहयोग, अपनी ही भांति दूसरों की चिंता करना आदि और धर्म के इन तत्वों को नैतिक मूल्य या श्रेष्ठ जीवन-पद्धति के तत्व भी कहा जा सकता है। साथ ही ये कर्तव्य भी कहला सकते हैं और मानवीय सद्-गुण भी। ये तत्व दुनिया में सर्वत्र और सभी के लिये कल्याणकारी होते हैं और मानव-मात्र के लिये हितकर भी होते हैं। इनकी हितकारिता को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई भी नहीं नकार सकता। धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णतः उतार लेने के लिये और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिये भारत में विभिन्न दर्शनों एवं सम्प्रदायों का विकास हुआ है जैसे- अद्वैत, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध तथा सिक्ख आदि। धर्म साध्य होता है और सम्प्रदाय उसकी प्राप्ति का साधन। भाषा, विचार-अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य साधन है। जिन देशों की राष्ट्रीय भाषा होती है, वहाँ प्रशासन का कार्य सुविधाजनक बन जाता है।

उपरोक्त सभी सांस्कृतिक तत्वों के बारे में जानने के बाद ये स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रशासन संस्कृति में बांधा है, क्योंकि इसकी स्थिति या पर्यावरण इसको ढालता है तथा यह विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों या पर्यावरणों में निजी विशेषताओं का विकास करता है। विभिन्न देशों में लोक प्रशासन के ढ़ाँचों और कार्यों को देखने से पता चलता है कि औपचारिक संगठनों में बाहरी एकरूपता है, फिर भी उनके अनौपचारिक तथा व्यवहारिक नमूनों में बहुत अधिक विभिन्नताऐं हैं। इसका कारण भी यही है कि, प्रत्येक का रूप उसके समाज की संस्कृति ही प्रदान करती है।

इन विभिन्नताओं के कारण ही एफ0 डब्ल्यू रिग्स सामाजिक ढ़ाँचों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में करते हैं- संयोजित (Fused), प्रिजमीय (Prismatic) तथा निवर्तित (Diffracted) और उन्होंने इन तीनों श्रेणियों में प्रशासन की निजी विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रिजमीय समाज के विश्लेषण में प्रशासनिक ढ़ाँचों पर पड़ने वाला पर्यावरण का प्रभाव ही ध्यान का मुख्य केन्द्र है।

यह अवश्य कहना होगा कि किसी भी समाज के सांस्कृतिक मूल्य अपरिवर्तनीय नहीं होते। संस्कृति परिवर्तनशीन है और संस्कृति तथा प्रशासन में निरन्तर परस्पर क्रिया होती रहती है। यही परस्पर क्रिया लोक प्रशासन तथा सरकार की भूमिका की पुनर्व्याख्या करती है। ये पारस्परिक क्रिया एकपक्षीय अथवा एक दिशोन्मुखी नहीं है अर्थात् केवल संस्कृति तथा पर्यावरण ही प्रशासन को प्रभावित नहीं करता अपितु यह द्विपक्षीय या द्वि-दिशोन्मुखी है। लोक प्रशासन भी समाज की संस्कृति और पर्यावरण पर समान रूप से प्रभाव डालता है। भारत में संस्कृति तथा प्रशासन के बीच परस्पर क्रिया के एक अध्ययन में बी0 पी0 सिंह लिखते है कि ‘‘भारत में एक नया प्रशासनिक लोकाचार अधिकाधिक देखने में आ रहा है जो सामान्य इच्छा को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है और नई चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये वह अपनी संगठनात्मक योग्यता तथा आदान (Inputs) को विकसित कर रहा है। इस सन्दर्भ में प्रशासन निरन्तर हमारे समाज की राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया में लगा है। यह इन व्यवस्थाओं को परिवर्तित करने वाले प्रभाव का कार्य करता है और साथ ही स्वयं भी इन सम्बन्धित व्यवस्थाओं की क्रियाओं से प्रभावित होता है। चूँकि लोक प्रशासन संस्कृति से बंधा है अत: इसका परिणाम यह है कि एक पर्यावरणात्मक स्थिति का लोक प्रशासन किसी भिन्न सांस्कृतिक. पर्यावरण से प्रतिरोपित (transplanted) नहीं किया जा सकता। रॉल्फ ब्रायबंटी (Ralph Braibanti) भी इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। उनका कथन है ‘‘जब संस्थानों को एक पर्यावरण से दूसरे वातावरण में प्रतिरोपित या स्थानान्तरित किया जाता है तो उनका विकास पूर्वकल्पित मार्गों पर नहीं होता और हो सकता है कि वे ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करें जो उनकी उत्पत्ति के स्थान की आवश्यकताओं से भिन्न हो।’’ एक समाज से लाये गये विचारों और ढ़ाँचों को प्राप्तकर्ता समाज में पूर्व स्थित विचार और ढांचा परिवर्तिन ही एक बहुत ही गतिशील प्रक्रिया के द्वारा ढाल देते हैं। जिस प्रक्रिया को विभिन्न नाम दिये जाते हैं जैसे- संस्कृति प्रसारण तथा अभिग्रहण (culture radiation and reciption) और स्वदेशीकरण का सर्पिल गति से बढ़ना (spiralling indegenization)।

निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक व्यवहार को भली-भाँति समझने एवं उसका आर्थिक विश्लेषण करने के लिये प्रशासन के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना

आवश्यक होता है। गाई पीटर्स तथा माइकल क्रोजियर, लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति या प्रशासनिक संस्कृति (Administrative culture) के अध्ययन की भी आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। प्रशासनिक संस्कृति वे पारम्परिक तरीके या ढंग हैं, जिसमें धार्मिक सोच और कार्य करते हैं। प्रत्येक देश में लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति बाह्य कारकों से अत्यधिक प्रभावित रहती है। भारत में बाबूराज, फाईलराज, नेता-संस्कृति, स्पीड मनी (कार्य शीघ्र करने के लिये पैसा देना) तथा नियमों के चक्रव्यूह प्रशासनिक संस्कृति के पर्याय हैं।

यह स्वयं-सिद्ध है कि अन्य संस्थानों की भाँति नौकरशाही भी समाज, जिसका की वह भाग है, को प्रतिबिम्बित करती है। औपचारिक नियमों एवं विवेकपूर्ण आचार का अध्ययन विशाल सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण जिसका कि नौकरशाही एक भाग है, के सन्दर्भ में किया जाना चाहिये। उदाहरण के तौर पर, भारत में अंग्रेजों ने असैनिक सेवाओं का विकास सामान्य योग्यता, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा राजनीतिक तटस्थता के सिद्धान्तों के आधार पर किया था। भारत की नौकरशाही की भूमिका इन आदर्श नियमों की भाषा में नहीं समझी जा सकती, अपितु इसका अध्ययन तो इनकी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं तथा दिशाओं के सन्दर्भ में होना चाहिए। अतः अनुभवमूलक अध्ययनों के आधार पर इस दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है कि संस्कृति और प्रशासनिक उप-व्यवस्था के बीच निकट का सम्बन्ध है। गाई पीटर्स ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि ''कई बार नौकरशाही का चित्रण ऐसे किया जाता है, जैसे कि वे अपने समाजों को कुचलती चली जाती है। किन्तु वे अपने समाज तथा उनके मूल्यों के साथ कई पतले, परन्तु सशक्त बन्धनों से बंधी होती है।''

3.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश

किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, संस्थात्मक नमूनों, वर्ग अथवा जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक वसीयत सम्पदा (legacy), परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास तथा आदर्श, लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उस के प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, इसका कारण ये है कि लोक प्रशासन के भीतर का मानवीय तल अपने समाज की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं और संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। लोक सेवा में सम्मिलित होने से पूर्व ही वे समाज के मूल्यों, लोकाचार तथा परम्पराओं को अपना लेता है। सामाजिक वातावरण में वह जिस दृष्टिकोण और रवैये का विकास कर लेता है, वे लोक सेवा में उसके निर्णयों को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं व संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। किसी भी प्रशासन की अनुक्रियाशीलता (Responsiveness) उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि, मूल्यों और व्यवहारों से अलग करके नहीं देखी जा सकती, यही उसकी निर्णय क्रिया तथा

समाज में जिस प्रकार के लोगों से वह अपने आप को जोड़ता है उन पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। रिग्स के द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, समूहों, वर्ग (या जाति) सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्य, आस्था, विश्वास, आदर्श तथा लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उसके प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है।

भारतीय समाज की विशेषता यह कि वह बहुलवादी समाज है, सभी सामाजिक प्राणी लोक सेवकों की भूमिका निभाते हैं। संक्षेप में, सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाते हैं- वर्ग तथा जाति, सामाजिक परम्पराऐं एवं मूल्य, सामाजिक न्याय एवं समानता, सामाजिक सम्बन्ध, पारिवारिक संस्कार, शिक्षा संस्थानों की भूमिका, सामाजिक परिवर्तनशीलता की दर, संचार के साधन, स्वैच्छिक संगठन और जनसंख्या तथा स्वास्थ्य।

भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग या जाति पिछड़ी और कमजोर है, उसे विशेष सुविधाऐं देकर ऊपर उठाना, प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। इसी प्रकार भारतीय समाज की संरचना के आधार जाति (वर्ग) और उप-जाति है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज जाति प्रधान रहा है और स्वतंत्रता के बाद समस्त राजनीतिक गतिविधियां, चुनाव, नियुक्तियां, दलों आदि में जाति का प्रभाव बढ़ा है और यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। प्रो0 जैन ने लिखा है कि, ''जनजातीय, भाषार्थी, धार्मिक, क्षेत्रीय और जातिगत निष्ठा भारतीय समाज की आधार रचना की मूल विशेषता है। इसने यहाँ की राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली पर गहरी छाप डाली है और विकास की प्रक्रियाओं को भी प्रभावित किया है।'' इन सबके अतिरिक्त एक और तथ्य जो प्रशासनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है कि, प्रशासन को अब केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं चलाया जा सकता, बल्कि प्रशासन के संचालन के लिये आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकरशाही से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव बना रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तर दायी बना रहता है। दूसरी ओर, सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे ये बात और स्पष्ट हो जाती है कि प्रशासन को सामाजिक परिवेश के अनुसार संचालित करना पड़ता है। समाज, प्रशासन के अनुसार नहीं बल्कि प्रशासन, समाज के अनुसार संचालित होता है।

सामाजिक पर्यावरण के अन्य तत्व जैसे- रूढ़ियां (mores), परिवर्तन अथवा सुधार की ओर समाज का रवैया, धर्म, भाषा, परिवार या कबीले जैसे रक्त सम्बन्धी समूह, संघटन के तत्व जैसे संचार और यातायात के साधन आदि

भी लोक प्रशासन को प्रभावित करते हैं। रिग्स ने परिवारों सम्प्रदायों, सामाजिक वर्गों तथा सभाओं जैसे समूहों आदि सामाजिक ढ़ाँचों का लोक प्रशासन पर सम्भावित प्रभाव देखा था। इनका लोक सेवाओं की भर्ती, समाजीकरण, पदोन्नति तथा गतिशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। इसके अतिरिक्त, सामान्य सहमति तथा समानता जैसे प्रशासनिक मूल्यों को ढालने के लिये प्रशासन में संस्कृति और प्रतीकों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज में जो तनाव और संघर्ष प्रचिलत होते हैं, नौकरशाही उसका प्रतिनिधित्व करती है। यदि हमारा समाज गुटों में बँटा है और प्रान्त या क्षेत्रों की ओर झुकता है तो निश्चित रूप से यह संकीर्ण दृष्टिकोण सरकारी कर्मचारियों का भी प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के तौर पर, नाइजीरिया में विस्तृत परिवार का प्रभाव बहुत महत्व रखता है, राजनीतिक संरक्षण की अपेक्षा भाई-भतीजावाद की समस्या बहुत बड़ी है, अतः राजनीतिज्ञ तथा असैनिक कर्मचारी दोनों ही पर रिश्तेदारों के एक दायरे को सहायता या समर्थन करने के लिए उग्र तथा निरन्तर दबाव रहता है। भाई-भतीजावाद, पक्षपात तथा भ्रष्टाचार केवल नाइजीरिया की ही विशेषता नहीं है। वास्तव में यह अधिकतर विकासशील देशों के लोक प्रशासन के बहुत सामान्य लक्षण हैं। इसका कारण यह है कि इन देशों में पारिवारिक या रक्त-सम्बन्ध अभी भी बहुत सशक्त हैं, जबकि पश्चिमी देशों में बहुत हद तक कम हो गये हैं। इसके अतिरिक्त विकासशील समाजों में यद्यपि भाई-भतीजावाद तथा भ्रष्टाचार की औपचारिक रूप से आलोचना की जाती है, फिर भी ये काफी प्रचलित हैं और इनको समाज की अदृश्य मान्यता प्राप्त है। प्रिजमीय (Prismatic) समाजों की व्याख्या करते हुए रिग्स कहते हैं कि ये रिवाज लोक प्रशासन में औपचारिकतावाद का कारण है। माइकल क्रोजियर ने फ्रांस की नौकरशाही के व्यवहार में वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। रूस के प्रशासन का आधुनिकीकरण करने के प्रयासों में पीटर महान (Peter the Great) को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था, क्योंकि परम्परागत सामाजिक मान्यताऐं शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती है। परिवार, वंश, मूल निवास स्थान, सामुदायिक मान्यताऐं तथा सामाजिक मूल्य व्यक्ति के संस्कारों के भीतर तक समाहित होते हैं। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में भाई-भतीजावाद का प्रचलन कम है, क्योंकि वहाँ व्यक्ति तथा परिवार (रक्त सम्बन्धी) की घनिष्ठता एवं आत्मीयता उस प्रकार की नहीं है, जैसे कि भारत या अन्य विकासशील देशों में पायी जाती है। शहरी बनाम ग्रामीण समाज की जीवनशैली तथा उनकी महत्वपूर्ण प्रकृति के पदों पर शहरी एवं अंग्रेजी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों का विशेषाधिकार एवं सेना में जवानों के पदों पर ग्रामीण युवाओं का चयन सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ाँचे की स्वतः व्याख्या करते हैं।

3.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश

लोक प्रशासन की जड़ें राजनीति में होती हैं। राजनीति का सम्बन्ध किसी देश के शासन से होता है और शासन का क्रियात्मक रूप प्रशासन में दिखता है। प्रशासन और राजनीति का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होता है। दोनों ही एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण से पूर्णतया अलग नहीं होता है। यह दोनों मिल कर वह स्थिति या वातावरण बनाते हैं, जिनमें लोक प्रशासन को यदि अधिक नहीं तो उतना अवश्य प्रभावित करता है जितना कि सामाजिक पर्यावरण। राजनीति परिवेश में जब बदलाव आता है, तब प्रशासनिक संस्थाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन तथा उसकी संरचनाओं पर वहाँ के राजनीतिक परिवेश का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। शासन तथा राजनीतिक पर्यावरण एक-दूसरे के पर्याय बनते जा रहे हैं। राजनीतिक पर्यावरण के कुछ कारक जैसे- संवैधानिक पर्यावरण, शासन प्रणाली, शक्तियों का बंटवारा, राजनीतिक दलों की मान्यताऐं, राजनीतिज्ञ व लोक सेवक सम्बन्ध आदि लोक प्रशासन की परिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं।

भारतीय सन्दर्भ में प्रशासन एवं राजनीतिक पर्यावरण की विवेचना करने के लिये हमें इसको विकासशील और विकसित देशों के सन्दर्भ में समझना होगा। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक पर्यावरण सर्वथा भिन्न प्रकृति का पाया जाता है एवं दोनों स्थानों में लोक प्रशासन में अन्तर दिखाई पड़ता है। विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भिन्न होती है, क्योंकि वहाँ की सेवाऐं थोड़ी परिपक्वता प्राप्त होती है तथा वहाँ आधुनिकता भी देखने को मिलती है। आधुनिकीकृत राजनीति में कई प्रकार के लक्षण देखने को मिलते हैं, जैसे- नौकरशाही का विशेषीकरण, उच्चस्तरीय व्यवसायिक पुट, कार्यक्षेत्र विस्तार, आपसी सामंजस्य, जनसहयोग, सच्चरित्रता आदि। नियंत्रण एवं आपसी समन्वय सहित अधिकार क्षेत्र की भी स्पष्टता रहती है, अतः विकसित राष्ट्रों की राजनीति एवं लोक प्रशासन दोनों मिलकर राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं। वहीं दूसरी ओर यदि विकासशील राष्ट्रों की ओर देखें तो वहाँ राजनीतिक व्यवहार बहुत ही अस्पष्ट एवं अपरिपक्व दिखाई देता है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक प्रक्रियाऐं तथा संस्थाऐं एक संक्रमणकाल से गुजरती हैं, जहाँ विकासवादी विचारधाराऐं, सरकारों की अस्थिरता, शासक तथा शासकों के मध्य खाई, राजनीतिक संस्थाओं में असन्तुलन तथा विदेशी शक्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादित विषयों पर सर्वसम्मति का अभाव पाया जाता है परिणामस्वरूप सत्तारूढ़ शासक दल द्वारा पूर्ववर्ती राजनीतिक दल द्वारा बनायी गयी नीतियों तथा कार्यक्रमों को परिवर्तित कर दिया जाता है। राजनीतिक दलों की संविधान, कानून तथा राष्ट्रीय विकास के प्रति

कटिबद्धता नहीं होती है, बल्कि वो वोटों की राजनीति में ज्यादा विश्वास करते हैं। फैरेल हैडी, आमण्ड, राबर्ट टूकर तथा शोल्स आदि ने विकसित एवं विकासशील देशों में शासन, राजनीति एवं नौकरशाही को वर्गीकृत करने का प्रयास किया, उनके अनुसार प्रशासन की कुछ विशेषताऐं इस प्रकार से हैं-

1. **आधुनिकीकृत प्रशासन (Mordernizing Administration)-** जापान आधुनिकीकृत प्रशासन का उदाहरण माना जाता है। जापान के संविधान के अनुसार लोक सेवक किसी विशेष समूह के नहीं बल्कि समाज के प्रतिनिधि माने जाते हैं। यहाँ लोक सेवक राजनीतिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
2. **परम्परागत स्वेच्छाचारी व्यवस्था (Traditional-AutocraticSystem)-** ऐसी व्यवस्था में यमन, पेरू, मोरक्को आदि शामिल किये गये हैं, जहाँ जनाधिक्य की समस्या भी है। यहाँ परम्परागत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था पायी जाती है। अर्थात् दलों या दबाव समूहों का अस्तित्व न के बराबर है, प्रशासनिक तंत्र एवं सेना स्वेच्छाचार्य शासकों की इच्छाओं को पूरा करने में व्यक्त होती है। समाज के विकास को शासकों द्वारा प्राथमिकता नहीं दी जाती है, केवल प्रयास भर किये जाते हैं।
3. **नागरिक संस्कृति (Civic Culture)-** नागरिक संस्कृति का प्रचलन संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन में पाया जाता है। यहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक संस्कृति में समानता है तथा लोकसेवक राजनीति के साथ मिलकर काम करते हैं। सामाजिक शक्तियाँ अर्थात् नागरिक भी इन देशों में लोक प्रशासन में विशेष भूमिका निभाती हैं।
4. **शास्त्रीय प्रशासन (Classic Administration)-** फ्रान्स तथा जर्मनी जैसे देशों में शास्त्रीय प्रशासन प्रवर्तित है, जहाँ कितनी भी राजनीतिक उथल-पुथल क्यों न मचे, लोक प्रशासन यथावत कार्य करता रहता है। अधिकार सम्पन्न लोक सेवक बहुत शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में भी रूचि लेते हैं।
5. **नौकरशाही अभिजन व्यवस्था (Bureaucratic Elite System)-** इस प्रकार की व्यवस्था के उदाहरण में म्यांमार (बर्मा), इण्डोनेशिया, इराक, सूडान एवं कई अफ्रीकी देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में शासक वर्ग तथा लोक सेवक वर्ग में समाज के उच्च वर्ग, धनी किसान, उद्योगपति और प्रभुत्व सम्पन्न शामिल होते हैं। इन लोगों की वास्तव में सामाजिक न्याय एवं विकास में कोई आस्था नहीं होती, वहीं दूसरी तरफ जनता का भी इन पर ज्यादा विश्वास नहीं होता। लोक सेवकों की अपेक्षा सैनिक अधिकारी शासन सत्ता और राजनीति के ज्यादा समीप होते हैं।

6. **प्रभावशाली दल: गतिशील व्यवस्था (Dominant Party : Mobilization System)-** मिस्त्र, घाना, अल्जीरिया, बोलिविया एवं अन्य पश्चिमी अफ्रीकी देशों में प्रवर्तित है। इन देशों की राजनीति में दमन एवं निरंक्रुशता अधिक मात्रा में पायी जाती है। इन देशों में केवल एक ही राजनीतिक दल अग्रणी रहता है, बाकी दलों को आगे नहीं आने दिया जाता है। विशिष्ट समूह, शिक्षित युवा, नौकरशाही तथा अभिजन आदि सत्ता के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करते हैं।

7. **प्रभावशाली दल: अर्द्ध प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था (Dominant Party: Semi Competitive System)-** इस के अन्तर्गत ऐसे देश आते हैं, जहाँ एक ही राजनीतिज्ञ वर्षों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखता है। हालांकि यहाँ अन्य दल भी मौजूद होते हैं, परन्तु वे कड़ी प्रतिस्पर्द्धा में नहीं होते हैं। भारत की कांग्रेस पार्टी और मैक्सिको की पी0आर0आई0 इसके उदाहरणों में शामिल हैं। डेविड एप्टर इसे गतिशील व्यवस्था मानते हैं, जिसका उद्देश्य समाज परिवर्तन, पंथ निरपेक्षता तथा समानता स्थापित करना है। यहाँ नौकरशाही की स्थिति मध्यम होते हुए पूर्णतया प्रभावी नहीं कहीं जा सकती है।

8. **बहुलवादी प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था (PolyarchialCompetitveSystem)-** इस व्यवस्था में फिलीपीन्स, मलेशिया, लेबनान, ब्राजील, तुर्की, श्रीलंका जैसे विकासशील देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में अनेक राजनीतिक दल, समूह या संगठन कार्य करते हैं। ये सभी संगठन भी प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में चलते हैं और नीति निर्माण एवं अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर इनकी सहमति रहती है। राबर्ट डाल ने बहुलवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत बताया है कि प्रत्येक संगठन किसी ना किसी स्तर पर अपनी भूमिका अवश्य निभाता है। जनसाधारण के बीच सक्रिय रहकर राजनीतिक दल न केवल जनमत का निर्माण करते हैं, बल्कि शासन सत्ता की प्राप्ति के लिये सदैव संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में वे नौकरशाही से भी उलझते रहते हैं।

9. **साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था (Communist Totalitarian System)-** इस व्यवस्था के अन्तर्गत वे विकासशील देश आ जाते हैं, जहाँ साम्यवाद का प्रचलन है। जैसे- रोमानिया, पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया आदि। लेकिन बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में साम्यवाद का मोह हटने लगा था। साम्यवाद का तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है, जिसमें जनता के कल्याण एवं विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सरकार स्वयं उठाती है और उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण रहता है। दूसरी ओर सर्वाधिकारवाद वह व्यवस्था है, जब व्यक्ति के जीवन की समस्त गतिविधियां सरकार के नियंत्रण में

आ जाती हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रहता है। साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था अब उपरोक्त वर्णित सभी देशों में दम तोड़ चुकी है।

उपरोक्त वर्णित राजनीतिक, संवैधानिक वर्गीकरण, समय के साथ परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि स्वयं राजनीति भी समसामायिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है।

इस प्रकार इन सभी विशेषताओं को देखने के बाद भारतीय सन्दर्भ में राजनीतिक पर्यावरण को समझना अधिक आसान हो जाता है। राजनीतिक अस्थिरता के सन्दर्भ में यदि भारत की स्थिति की विवेचना की जाये तो भारत में वर्ष 1989 से 1998 के मध्य हुए चार आम चुनावों के समय केन्द्र में त्रिशंकु विधायिका (Hung Parliament) की स्थिति उत्पन्न होने पर अस्थिर सरकारों द्वारा शासन संचालित किया गया। इस प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका सुदृढ़ नहीं कहीं जा सकती है, क्योंकि गठबन्धन या साँझा सरकारें बिना किसी सहारे के नहीं चल सकती हैं। इस राजनीतिक अस्थिरता का दुष्परिणाम यह हुआ है कि परम्परागत नौकरशाही अर्थात् स्थायी कार्यपालिका की निंरकुशता नियन्त्रित होने के स्थान पर और अधिक बढ़ी तथा विकास की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। इसी प्रकार यदि राजनीतिक परिदृश्य में व्याप्त निराशा, संघर्ष, अस्थिरता और अवसरवादिता के समग्र सामाजिक ढ़ाँचे और लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली को प्रभावित करने का प्रश्न है, तो भारत में भी ये स्थिति पायी जाती है। सैद्धान्तिक रूप से कोई भी लोक सेवक राजनीतिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकता है, फिर भी प्रशासनिक अधिकारियों में पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक भेदभाव पाया जाता है। सरकारी कर्मचारियों के स्थानान्तरण तथा पदस्थापन में दिखाई देने वाली राजनीतिक संकीर्णताऐं लोक प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक मंत्री द्वारा किया जाता है एवं निष्पादन का कार्य लोक सेवकों का होता है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक मान्यताओं का प्रशासन पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक है। 'नवीन लोक प्रशासन' की विचारधारा भी यह मानती है कि राजनीति तथा लोक प्रशासन का पृथक्करण ना तो सम्भव है और ना ही व्यवहारिक।

3.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश

आधुनिक युग में आर्थिक विकास का अत्यधिक महत्व हो गया है। कुछ समय पूर्व तक राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के अनुसार ही नवीन इकाईयों का गठन किया जाता है। आर्थिक पर्यावरण ऐसा तत्व है जो लोक प्रशासन के साथ परस्पर क्रिया में लगा होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहाँ के लोक प्रशासन के स्वरूप, संगठनों और कार्यों पर

प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश का लोक प्रशासन वैसा ही होता है, जैसा कि वहाँ का आर्थिक पर्यावरण होता है। उच्च स्तरीय संसाधनों से सम्पन्न देश का प्रशासनिक-तंत्र विकसित होता है तो दूसरी ओर आर्थिक विपन्नताओं से जूझते विकासशील राष्ट्रों का प्रशासनिक तंत्र व्याधिग्रस्त होता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण के लिये प्रशासनिक सुधारों को आवश्यक समझा जाता है। सामान्यतः अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा नीतियां राजनीति एवं प्रशासन द्वारा निर्धारित की जाती हैं। प्रशासन को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इनके लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व भी प्रशासन का ही होता है, अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहाँ के आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप मात्र कानून व्यवस्था तक ही सीमित न होकर, व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को सवारने के लिये लोक कल्याणकारी बन गया है। डॉ0 आर0 के0 दुबे लिखते हैं ''लोक कल्याणकारी राज्य में आर्थिक विकास और सामाजिक विकास की अनेकों नवीन योजनाऐं संचालित की जाती है। प्रत्येक आर्थिक योजना पर्यावरण की परिस्थितियों से ही प्रभावित होती है, लेकिन इन योजनाओं को लागू करना लोक प्रशासन का दायित्व बन जाता है। आर्थिक विकास कार्यक्रमों को पूरा करने की लोक प्रशासन की क्षमता उत्पादन का महत्वपूर्ण निर्णायक तत्व होती है। आर्थिक विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा अपनी योग्यता को बढ़ाने हेतु लोक प्रशासन को आमतौर पर नये मूल्यों को भी अपनाना पड़ता है। अतः आर्थिक वातावरण तथा लोक प्रशासन दोनों एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रया करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।'' लोक प्रशासन और पर्यावरण के आर्थिक पहलू को कुछ तथ्यों का अध्ययन करके और स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. आधुनिक काल में यह माना जाता है कि सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया मूलतः लोक प्रशासन की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है।
2. आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लोक प्रशासन की भूमिका महतवपूर्ण है। प्रशासन को सदा आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं।
3. किसी भी देश की आर्थिक दशाओं में प्रगति या अवनति प्रशासन की नीतियों पर निर्भर करती है।
4. आर्थिक व्यवहार का प्रशासन पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई भी देश जब अपना आर्थिक विकास करना चाहता है, तब उसे तदनुसार संस्थागत परिवर्तन करने होते हैं। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि अधिक काम करने का प्रोत्साहन प्राप्त हो।

5. अर्थव्यवस्था की समस्त गतिविधियों पर राज्य एवं समाज के हित में नियंत्रण करने का दायित्व भी प्रशासन का होता है।
6. अर्थ या वित्त, प्रशासन का जीवन-रक्त कहा जाता है। जिस प्रकार रक्त का नियमित प्रवाह शरीर के संचालन के लिये आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये भी पर्याप्त साधन, कर्मचारियों का सन्तोष, कार्य की उचित दशाऐं आदि की व्यवस्था वित्त के द्वारा ही की जाती है।
7. विकासशील देशों का प्रशासन जो विकास प्रशासन का पर्याय बन चुका है, का प्रमुख उद्देश्य भी सामाजिक, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना होता है।
8. इसके अतिरिक्त तीव्र आर्थिक विकास किसी भी देश में नियोजित तरीके से ही प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन का उद्देश्य सीमित साधनों के द्वारा कम समय में अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति होता है। इनकी प्रगति के लिये प्रशासन का स्वरूप लोक कल्याणकारी हो जाता है और विकासशील प्रशासन का जन्म होता है। इस प्रकार लोक प्रशासन नियोजन तन्त्र का चालक और प्रेरक होता है।
9. लोक प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण कमी या समस्या भ्रष्टाचार के अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख आर्थिक ही है। अतः प्रशासन को भ्रष्टाचार रहित रखने के लिए आर्थिक उपाय ही खोजने होंगे।

अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि ना केवल प्रशासन आन्तरिक जीवन को नियंत्रित करता है, बल्कि देश की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी प्रशासन पर पड़ता है। लोक प्रशासन की समस्याऐं वास्तविक होती हैं तथा पूर्ण अर्थव्यवस्था का ही एक अंग होती है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध, कार्य एवं प्रकृति देश के आर्थिक जीवन का एक निर्णायक तत्व मानी जाती है।

विकासशील देशों में लोक अधिकारियों का कम वेतन तथा सरकारी भ्रष्टाचार भी उनके आर्थिक विकास के निम्न स्तर, तथा तकनीकी और मानवीय साधनों की कमी से जुड़े हुए हैं। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था भी पिछड़ी हुई मानी जाती है, क्योंकि उसमें जनाधिक्य, परम्परागत देशों की भरमार, कम औद्योगिकीकरण, तकनीकी पिछड़ापन, गरीबी, बेरोजगारी, संसाधनों की कमी या निम्न गुणवता, कृषि पर बहुत अधिक निर्भरता आदि की समस्याऐं भी जुड़ी रहती हैं। अर्थव्यवस्था की इस शोचनीय स्थिति के कारण ही लोक प्रशासन के सम्मुख नित नई चुनौतियां उत्पन्न होती रहती हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि, किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को समझे बिना प्रशासन का विश्लेषण करना जटिल एवं अव्यवहारिक है। भारत सहित विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में एक ओर पर्याप्त भूमि अनुपयोगी पड़ी है, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी बढ़ रही है। वास्तव में

विकासशील देशों में आर्थिक संसाधनों तथा नीतियों में समन्वय एवं व्यवहारिकता का पर्याप्त अन्तर रहने के कारण अर्थव्यवस्था का संचालन बिखरा हुआ है और कमजोर दिखाई पड़ता है। अमेरीकी प्रशासन का अध्ययन करने के पश्चात एफ0डब्ल्यू0 रिग्स का निष्कर्ष था कि अमेरीकी प्रशासन की बहुत सी विशेषताऐं उसकी अर्थव्यवस्था के नमूने पर ढली हुई है, यही बात विकासशील देशों के प्रशासन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका में आर्थिक उत्पादकता बहुत ऊँची है और इसका प्रशासन से सम्बन्ध है। अमरीका के आर्थिक संख्यात्मक प्रबन्धों में कमी वाले साधनों का उपयोगी तथा विवेकपूर्ण प्रयोग होता है। इससे सेवाओं और उत्पादन में बहुत वृद्धि होती है, इससे कई सामाजिक मूल्यों को ऐसा समझा जाता है, जैसे कि वे कोई वस्तु हो और बाजार में खरीदी या बेची जाती हो। भूमि, मनुष्य की मजदूरी, धन, समय, सभी बिकाऊ समझे जाते हैं और समाज बाजार को केन्द्रीय संस्थान मानकर कार्य करता है। रिग्स का कहना है कि अमरीकन समाज का बाजार के प्रति उन्मुख होने में हमारी प्रशासन व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव है। अमरीका के लोक कार्मिक प्रशासन के कई नियम, जैसे- 'समान कार्य के लिये समान वेतन' (नौकरशाही मजदूरी के लिये कीमतों को बराबर करना), किसी सरकारी कर्मचारी को उसका कार्य सन्तोषजनक ना होने पर पद से हटा देना (''पद के लिये योग्यतम व्यक्ति'' का सिद्धान्त), नौकरशाह तथा नियुक्त करने वाले अभिकरण के बीच सम्बन्धों का निश्चित होना तथा समझौते की शर्तों पर आधारित होना (समझौता करने का अधिकार) आदि अमरीका की आर्थिक व्यवस्था से प्रभावित है। इसी प्रकार अमरीका के लोक वित्तीय प्रशासन ने भी मार्केट सिद्धान्त से संकेत प्राप्त किया है। वहाँ कर (Tax) की दर राज्य द्वारा दी जाने वाली सेवाओं से सम्बन्धित है तथा निष्पादन बजटिंग प्रणाली (Performance Budget System) इसी के उदाहरण माने जाते हैं। रिग्स का मानना है कि ''अमरीका का मार्केट समाज प्रशासनिक क्षेत्र में भी वहीं भौतिक मूल्य लागू करना चाहता है, जो वह मार्केट में लागू करता है।'' रिग्स आगे चलकर फिर कहते है, ''अधिकतर अमरीका के लोक प्रशासन के सार का निर्धारण उसके मार्केट समाज की आर्थिक आवश्यकताऐं करती हैं। जो बात सामान्य तौर पर किसी भी औद्योगिक दृष्टि से विकसित समाज के लिए सत्य हो सकती है, वह यह है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के समर्थन के लिये उपयोगी तथा विवेकपूर्ण संस्थानों पर आधारित होता है। मार्केट तथा ब्यूरो (सरकारी विभाग) दोनों ही औद्योगिक समाज के अनिवार्य ढ़ाँचे हैं। अतः मेरा निष्कर्ष यह है कि यह इतना अधिक स्वयं मार्केट नहीं है, अपितु औद्योगीकरण है, जिसके परिणामस्वरूप एक विवेकपूर्ण (achievement oriented) लोक प्रशासन व्यवस्था की स्थापना सम्भव तथा अनिवार्य दोनों है।''

बाजारीकरण (marketization) लोक प्रशासन के अन्य पक्षों, जैसे- नियोजन, संचार लोक सम्बन्ध, प्रबन्ध, व्यवसायिक तथा स्टॉफ संगठन आदि को भी प्रभावित करता है। विद्वान प्रशासनिक ब्यूरो अर्थात् सरकारी विभाग

को एक प्रकार का बाजार ही मानते हैं, जिसमें भाग लेने वाले निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने का अधिक से अधिक प्रयास करते हैं। इसके बदले में लोक प्रशासन अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। विकसित हो या विकासशील सभी प्रकार के देशों में लोक प्रशासन लाइसेंसों आदि कुछ परिस्थितियों में वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित करके एकाधिकारों को रोकने, आयात-निर्यात को नियन्त्रित करने आदि तरीकों से अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है। आजकल अर्थव्यवस्था, प्रशासन तथा समाज के अन्तर्सम्बन्धों के क्रम में सकल राष्ट्रीय मुख की नई अवधारणा भी जन्म ले रही है। यह अवधारणा यह मान कर चलती है कि विकासशील राष्ट्र विश्व की प्रतिस्पर्द्धा के कारण अपनी सांस्कृतिक पहचान तथा आर्थिक सुख खोते जा रहे हैं। अतः राष्ट्रीय आर्थिक विकास, की प्रक्रिया में उन आध्यात्मिक मूल्यों का लोप न हो, जो मानव सभ्यता के अभिन्न तत्व है। पिछले दशकों से यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण रूप से उठ रहा है कि पश्चिमी मॉडल पर आधिारित विकास कार्यक्रम विकासशील राष्ट्रों की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। अतः इन देशों की अर्थव्यवस्था को स्थानीय कारकों एवं विशेषताओं के आधार पर पुर्नसंचित किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. लोक प्रशासन किस प्रकार का विज्ञान है?
3. ''लोक प्रशासन पर बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है'' यह मान्यता किस उपागम से सम्बन्धित है?

3.7 सारांश

इस अध्याय के द्वारा आप ये अवश्य समझ गये होंगे कि लोक प्रशासन एक मानवीय क्रिया है, इसलिये इस पर पर्यावरण का व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का निर्धारण बाह्य परिस्थितियों द्वारा होता है। लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की यह मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक अवस्था की सम्पूर्ण जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। जो प्रशासनिक संस्थाऐं किसी एक देश में सफलतापूर्वक काम करती हैं, उन्हें दूसरे देशों में अपनाने के प्रयास किये जाते हैं, लेकिन उस प्रशासनिक व्यवस्था को दूसरे देशों में अपनाये जाने के पूर्व दोनों के पर्यावरण का सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो जाता है। परिवेश सम्बन्धी तत्व न सिर्फ समाज में प्रभावशाली परिवर्तन लाते हैं, बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी तत्व प्रशासन और उसके कार्यक्रमों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक "The Ecology of Public Administration" में लोक प्रशासन और

पर्यावरण के मध्य परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयत्न किया था। प्रशासन और पर्यावरण एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता की समझ प्रशासन को समझने के लिये आवश्यक हैं। इस समझ को परिस्थितिकी दृष्टिकोण का नाम दिया गया। रिग्स ने ही अपने 'साला मॉडल' में बताया था कि लोक प्रशासन पर सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के प्रति निम्न अधिकारियों के दृष्टिकोण आदि पर समाज की संस्कृति और मूल्यों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। रिग्स ने ही ये भी कहा कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, वर्ग, जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास, आदर्श आदि पर आधारित होता है। वर्तमान प्रशासन का संचालन केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं, सामाजिक न्याय के आधार पर होता है।

प्रशासन और राजनीतिक परिवेश का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता है। चूँकि लोक प्रशासन की जड़े राजनीति में निहित होती है। अतः राजनीतिक परिवेश में किसी तरह के परिवर्तन का प्रभाव प्रशासनिक संरचनाओं पर पड़ता है।

लोक प्रशासन पर आर्थिक परिवेश के प्रभाव के सम्बन्ध में भी ये सत्य है कि, किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति वहाँ के प्रशासनिक स्वरूप, संगठन और कार्यों को प्रभावित करती है। किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये प्रशासन में सुधार आवश्यक होता है। इसलिये प्रशासनिक प्रक्रिया को आर्थिक विकास की आवश्यकता होती है।

3.8 शब्दावली

परिवेश- परिधि, घेरा, परिवर्धित- जो अच्छी तरह बढ़ा हुआ हो या बढ़ाया गया हो, सामन्जस्य- तालमेल, अनुकूलता, मेल, प्रतिरोपित- जो (फिर से) रोपा गया हो, जो पुनः लगाया गया हो, संकीर्णताऐं- अनुदारता, व्याधिग्रस्त- बुराईयों से ग्रस्त।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति से है, **2.** सामाजिक विज्ञान, **3.** परिस्थितिकी उपागम

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर- 2013

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0पी0शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद- 2015
2. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002, 2003
4. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च प्रकाशन, सामाजिक विज्ञान, दिल्ली- 1978

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अन्तर्गत पर्यावरण का क्या महत्व है? लोक प्रशासन और पर्यावरण के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।
2. सामाजिक, आर्थिक पर्यावरण, प्रशासनिक प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करता है? व्याख्या कीजिये।
3. लोक प्रशासन को सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण कैसे प्रभावित करता है? विवेचना कीजिये।

इकाई- 4 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 विकास की अवधारणा

4.2.1 विकास का अर्थ एवं परिभाषा

4.2.2 विकास का लक्ष्य और उद्देश्य

4.2.3 विकास में शासन (सरकार) की भूमिका

4.2.4 विकास की समस्याऐं

4.2.5 विकास हेतु आवश्यक पूर्व शर्तें

4.3 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

आधुनिक युग में राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो श्रेणियों में बांटा जाता है- 'विकसित' तथा 'विकासशील।' जैसा कि आपने पिछले अध्यायों में पढ़ा कि किसी देश के प्रशासन की प्रकृति उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है। पर्यावरण का एक तत्व विकास भी है। अतः विकास के स्तर का सम्बन्ध उस देश के प्रशासन की प्रकृति के साथ होता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि 'विकसित' और 'विकासशील' देशों की प्रशासनिक उप-व्यवस्थाऐं उनकी अपनी विचित्रता के अनुकूल होगी। प्रस्तुत अध्याय में हम ये जानने का प्रयास करेंगे कि विकसित देशों का प्रशासन कैसा होता है या उनकी विशेषताऐं क्या होती हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकास के अर्थ एवं अवधारणा आदि को विस्तृत रूप में जान पायेंगे।
- विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

4.2 विकास की अवधारणा

विकास आधुनिकीकरण या आधुनिकता शब्द सापेक्षिक है। जिनका प्रयोग जटिल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के लिये किया जाता है। अर्थात् विकास एवं सार्वभौमिक प्रक्रिया एवं एक व्यापक अवधारणा है, जिसको विभिन्न संदर्भों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। ब्रांट आयोग ने टिप्पणी करते हुए ठीक ही कहा है कि ''विकास की सार्वभौमिक परिभाषा ना तो दी जायेगी और ना ही कोई दे सकता है।'' कुछ विद्वानों के अनुसार, विकास का अर्थ है- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संवृद्धि, दूसरे विचारकों के लिये इसका आशय है, सामाजिक विकास और अन्य के लिये आधुनिकीकरण ही विकास है। जे0जे0 स्पेंगलर के शब्दों में, ''विकास तब माना जाता है जबकि वांछनीय एवं प्राथमिक मानी जाने वाली चीजों का सूचकांक बढ़ जाये।'' किसी प्रकार के आर्थिक-राजनीतिक, संचार एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन को एवं व्यवस्थित प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है। गैवरियल ऑमण्ड (Gabriel Almond) ने परिवर्तन शब्द का प्रयोग विकास के समानार्थक के रूप में किया है। उनका मत है कि जब राजनीतिक व्यवस्थाऐं, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के आधार पर नई क्षमताऐं प्राप्त कर लेती हैं तो उनमें परिवर्तन आ जाता है। विकास आधुनिकता और आधुनिक शब्दों का जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है, उस दृष्टि से पश्चिमी यूरोप के देशों जैसे अमेरिका आदि को विकसित राज्य माना जाता है। इन देशों का वर्तमान प्रशासन एक लम्बे विकास का परिणाम है।

वर्तमान समय में, विकास की अवधारणा ने सभी विकासशील देशों में प्रशासन की व्यवस्था को प्रभावित कर लिया है। विकास को सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन लाने वाला अर्भिकर्ता माना जाता है। इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। सभी विकासशील देशों के द्वारा स्वयं के विकास एवं उन्नति हेतु विकास की अवधारणा को अपनाया गया है। सन् 1960 से यह अवधारणा ज्यादा महत्वपूर्ण बन गई है।

4.2.1 विकास का अर्थ एवं परिभाषाऐं

विकास एक ऐसी अवधारणा है जिसे वास्तविक रूप में परिभाषित करना कठिन है। इसका अर्थ एवं प्रयोग अधिक स्पष्ट नहीं है। यह अनिश्चितता का रूप लिये होता है। जेराल्ड, इ0 काइडन के अनुसार, विकास शब्द का कोई

विशिष्ट अर्थ नहीं है, अर्थशास्त्री इसे आर्थिक-उत्पादकता से परिभाषित करते हैं; समाजशास्त्री इस शब्द का प्रयोग सामाजिक परिवर्तन के रूप में करते हैं; राजनीतिक विचारक इसे जनतंत्रकरण, राजनीतिक क्षमता अथवा विस्तारशील सरकार के रूप में करते हैं; प्रशासक इसे अधिकारी तंत्र, प्रशासनिक कुशलता एवं क्षमता के रूप में मानते हैं। विकास की अवधारणा के साथ जुड़ी हुई एक सीमा है इसलिये इसकी परिभाषा करनरा कठिन है। शब्द कोषों ने विकास शब्द को उद्देश्यमूलक माना है, क्योंकि वे इसका उल्लेख प्रायः उच्चतर, पूर्णतः और अधिकतर परिपक्वतापूर्ण स्थिति के रूप में करते हैं।

विकास की संकल्पना की बहुत-सी परिभाषाऐं हैं। भिन्न-भिन्न होते हुए भी ये परिभाषाऐं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ईस्मन का मत है ''विकास सोच समझ कर बनाये कार्यक्रमों व परियोजनाओं को संगठित एवं लागू करने की तर्कपूर्ण प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार से जैसे हमारे सैनिक या इंजीनियरिंग कार्यक्रम संगठित व लागू किये जाते हैं।''

कोलम और गीगर (Colm and Geiger) वृद्धि वाले परिवर्तन को विकास समझते हैं। कोलम और गेजर के अनुसार, विकास का अर्थ परिवर्तन के साथ-साथ प्रगति होना भी है। यह मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार का होता है।

वीडनर यह मानते हैं कि जब किसी प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्र निर्माण और सामाजिक-आर्थिक उन्नति होती है, तो उस वृद्धि की प्रक्रिया को 'विकास' कहा जाता है। हॉन बीन ली के लिए विकास का अर्थ प्रक्रिया और उद्देश्य दोनों हैं। इसलिए वे व्यवस्था की क्षमता के अनुकूल लगातार वृद्धि को विकास कहते हैं, जो राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए होने वाले लगातार परिवर्तनों को अंगीकार कर सकी हैं। चतुर्वेदी के अनुसार, विकास 'सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।' विकास का मुख्य उद्देश्य है- एक प्राचीन एवं पिछड़ी हुई व्यवस्था को आधुनिक व्यवस्था में बदलना। रिग्स विकास की विस्तृत परिभाषा देते हुए कहते हैं, विकास का संबंध उत्पाद को बढ़ाने, प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने या न बढ़ाने के निर्णय की क्षमता से है। अथवा अपनी शक्ति से तय लक्ष्यों को प्राप्त करने या उपलब्ध सामग्री के आर्थिक न्यायपूर्ण वितरण में, सौन्दर्य संबंधी या फिर आध्यात्मिक मूल्यों में या भिन्न-भिन्न उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाने में अपनी शक्ति को लगाना विकास है। इस प्रकार विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है, जिसमें ढाँचों में, दृष्टिकोणों और संस्थाओं में परिवर्तन, आर्थिक सम्पदा में बढ़ोतरी, असमानताओं में कमी और निर्धनता का उन्मूलन शामिल है। परम्परागत समाज में आधुनिक विकसित समाज में परिवर्तन करने की प्रक्रिया को 'विकास' कहते हैं। विकास के कई पक्ष हैं- राजनीतिक विकास में विवेकशीलता धर्मनिरपेक्षीकरण, व्यापक जन-सहभागिता आदि शामिल किए जा सकते हैं, सामाजिक विकास में

सामाजिक बुराइयों का अंत, मानवीय भेदभाव को खत्म करना, स्तर की समानता, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि आदि शामिल हैं। इसके आर्थिक पक्ष का अर्थ है सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यवस्था करना, शोषण का अभाव, निरंतर आर्थिक वृद्धि, प्रचुरता और खुशहाली की प्राप्ति। अतः विकास के अनेक पहलू होते हैं और एक-दूसरे से इतने जुड़े होते हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता, एक पहलू में परिवर्तन, दूसरे पहलू को प्रभावित करता है और स्वयं प्रभावित होता है।

विकास की अवधारणा से संबंधित उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसमें निहित कुछ लक्षणों को निम्नलिखित बताया जा सकता है-

1. विकास एक गतिशील अवधारणा है। यह गतिशील और हमेशा परिवर्तनशील और विकसित होने वाली संकल्पना है। 'हम किसी विकसित रूप' को नहीं मान सकते, क्योंकि हर विकसित रूप में सुधार किया जा सकता है। इसलिए विकास एक निरंतर गतिशील अवधारणा है।
2. विकास एकपक्षीय नहीं है, बल्कि बहुपक्षीय प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय यह है कि विकास में न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक विकास, राजनीतिक या अन्य प्रकार का विकास भी शामिल होता है। इसके उद्देश्य केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं होते। वे मानवीय और सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को छूते हैं जैसे आर्थिक वृद्धि, सामजिक प्रगति, राजनैतिक विकास, राष्ट्रीय निर्माण आदि।
3. विकास का अर्थ वृद्धि होता है। हर समाज में वृद्धि, बढ़ोतरी और उन्नति होती है और इसलिए उसमें हमेशा परिवर्तन होते हैं। एक देश का वर्तमान समाज, दूसरे देश के समाज से पृथक होता है। आज का समाज बीते हुए कल के समाज के समान नहीं है। इसी प्रकार, भविष्य के समाज, वर्तमान समाज से बिल्कुल अलग होंगे।
4. विकास का प्रौद्योगिकी से निकट का संबंध होता है। तकनीकी रूप से एक उन्नत समाज विकसित समाज कहलाता है। प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के हर पहलू को बदल दिया है और वास्तव में यह सारे जीवन में आज भी परिवर्तन कर रही है। इसने संसार को बहुत छोटा बना दिया है।
5. विवेकशीलता विकास का एक अंग है। इसका आशय है कि विकसित समाज परम्पराओं या धर्म पर आधारित नहीं होता अर्थात् अंधविश्वासी नहीं होता, बल्कि यह तर्क और विवेक बुद्धिवाद पर खड़ा हुआ बताया जाता है।
6. विकास के अन्य लक्षण व्यवस्था, स्थिरता, सुरक्षा आदि निरंतर विकास के आवश्यक कारक है। राष्ट्रों ने केवल शांति काल में ही उन्नति की है न कि युद्ध काल में। विकास का अर्थ वृद्धि सहित परिवर्तन है,

इसका अभिप्राय यह है कि सड़कों, रेलवे, बैंक, टेलिफोन आदि आधारभूत ढाँचें में भी विकास बिना विकसित बैकिंग व्यवस्था के हम आयात-निर्यात का व्यापार नहीं कर सकते।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम परम्परागत पूर्ण स्थिति से आधुनिक स्थिति पर आते हैं। यह समाज में रहने वालों से प्रभावित होती है। गतिविधि जो विकास से सम्बन्धित होती है, वह हमेशा राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति की ओर निर्देशित होती है।

4.2.2 विकास का लक्ष्य और उद्देश्य

विकासशील देशों में विकास का लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित गतिविधियों से सम्बन्धित हैं- राष्ट्रीय निर्माण, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, जनता का उच्चतर जीवन स्तर बनाना, आत्मनिर्भरता प्रदान करना, रोजगार उपलब्ध कराना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, न्याय एवं सुरक्षा प्रदान करना, सामाजिक-आर्थिक प्रगति, सहभागिता, विशिष्टीकरण, नीतियों, योजनाओं आदि का व्यापन और एकीकरण आदि।

4.2.3 विकास में शासन(सरकार) की भूमिका

विकास के लक्ष्य और उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विकासशील देशों की सरकार की प्रमुख भूमिका होती है। ईस्सेन के अनुसार सरकार के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं- 1. आन्तरिक सुरक्षा को बनाये रखना तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा। 2. राज्यतंत्र की औचित्यपूर्णता की स्थापना। 3. विभिन्न तत्वों को एक राष्ट्रीय व राजनैतिक समुदाय बनाना। 4. मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक सुरक्षा का वर्धन। 5. वित्तीय तथा बचत संसाधनों का संघठन। 6. विभिन्न स्तरों पर शासनिक शक्तियों का वितरण व संगठन, तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में एकता लाना और उनका सीमा-निर्धारण करना। 7. परम्परागत सामाजिक तथा आर्थिक निहित स्वार्थों को हटाना। 8. आधुनिक कुशलताओं तथा संस्थाओं का विकास। 9. सेवाओं और सुविधाओं का कुशल प्रबन्ध। 10. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में एक सुरक्षित स्थान पाना। 11. निर्णयन जैसे क्षेत्रों में सहभाग को प्रोत्साहन, तथा 12. निवेशन का विवेकपूर्ण कार्यक्रमीकरण।

सभी विकासशील देशों की सरकार विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विकास के लक्ष्यों को पूरा कर रही हैं। जैसे- भारत सरकार द्वारा लागू किये गये 'बीस-सूत्री कार्यक्रम' आदि।

4.2.4 विकास की समस्याएँ

विकासशील देशों हेतु विकास आवश्यक है किन्तु इसकी कुछ विशेषताऐं भी हैं। विकास की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं- 1. जनसहभागिता का अभाव। 2. राजनीतिक अस्थिरता। 3. प्रशासनिक व्यवस्था की अनिश्चयात्मकता। 4. असन्तुलित विकास। 5. वित्त का अभाव। 6. शिक्षा का अभाव। 7. परम्परागत समाज। 8. तकनीकी का अभाव आदि।

सामान्यतः सभी विकासशील देशों में विकास के सामने आने वाली प्रमुख समस्याऐं एक ही तरह की हैं।

4.2.5 विकास हेतु आवश्यक पूर्व शर्तें

विकास एक अनवरत प्रक्रिया है जिसके लिये कुछ आवश्यक पूर्व शर्तें भी हैं- 1. स्थिर राजनैतिक व्यवस्था। 2. स्थिर प्रशासनिक व्यवस्था। 3. नियोजन व्यवस्था। 4. उपयुक्त सांस्कृतिक व्यवस्था तथा 5. जन सहभागिता आदि। विकासशील देशों की प्रमुख समस्याऐं चार हैं, जो चार अंग्रेजी शब्दों में अभिव्यक्त होती हैं। वे सभी रोमन वर्णमाला के अक्षर 'पी' से आरम्भ होती हैं, इसलिए आजकल इनका उल्लेख अकसर 'चार पी' के नाम से होता है। ये समस्याऐं हैं- प्रालिफरेशन (Proliferation) अर्थात् शस्त्रास्त्रों की होड़ और विस्तार तथा तज्जनित दबाब और तनाव। पॉवर्टी (Poverty) अर्थात् गरीबी तथा उससे संबद्ध शोषण, व्यापारिक असंतुलन, भुखमरी, बेकारी ओर कर्जदारी की समस्याऐं। पोल्यूशन (Pollution) अर्थात् पर्यावरण अथवा प्रदूषण एवं प्राकृतिक संतुलन के निरंतर ह्रास की समस्या। पाप्यूलेशन (Population) अर्थात् जनसंख्या वृद्धि तथा उससे जुड़ी उद्योगीकरण, मशीनीकरण और शहरीकरण जैसी समस्याऐं आदि।

4.3 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

जैसा कि अब तक जाना विकास एक बड़ी जटिल धारणा है। इसका अभिप्राय आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के तत्वों का समूह है जिनमें से प्रत्येक तत्व कम विकसित से अधिक विकसित अविच्छिन्नक (continuum) पर फैला होता है। एक देश में एक ही समय में ऐसे चिह्न भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो विकसित हैं, और कुछ ऐसी विशेषताऐं भी दिखायी देती हैं जो कम विकसित है। इसी प्रकार लोक प्रशासन के कुछ चिह्न विकसित प्रतीत होते हैं, जबकि उसी देश में ही कुछ अन्य चिह्न ऐसे होते हैं, जो किसी कम विकसित देश में मिलते जुलते होते हैं। ''विकास अविच्छिन्नक (continuum) के प्रत्येक सिरे पर लोक प्रशासन में भिन्नताऐं होती है, जो विकास अवस्था को उतना प्रतिबिम्बित नहीं करतीं, जितना कि वे, विशेष ऐतिहासिक अनुभवों अथवा सांस्कृतिक लक्षणों को प्रतिबिम्बित करती हैं। उदाहरण के तौर पर ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका विकास की लगभग एक जैसी विकसित अवस्था में है, लेकिन इनमें से प्रत्येक राष्ट्र अपने लोक प्रशासन में ऐसे विशिष्ट लक्षणों का प्रदर्शन करता है, जो उसके अपने विकास (evolution) को प्रतिबिम्बित करते हैं। वहीं दूसरी ओर तृतीय विश्व के अन्तर्गत आने वाले अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका जैसे दैश हैं जिनको विकासशील देशों के नाम से जाना जाता हैं, क्योंकि ये देश अभी भी विकास में लगे हुए हैं, जिनका प्रमुख विकासात्मक कार्य 'राष्ट्र-निर्माण' एवं सामाजिक-आर्थिक प्रगति है। विकास प्रशासन एक नया उपागम है जो विकासशील देशों की सरकार

के प्रशासन से सम्बन्धित है। यद्यपि इन देशों में विभिन्न परम्परायें, रीति-रिवाज, सभ्यताऐं, राजनीतिक व्यवस्थाऐं, भाषाऐं, सामाजिक मूल्य, धर्म आदि आर्थिक विकास के विभिन्न स्तर हैं, यद्यपि इनमें काफी समानतायें हैं। इनकी तीन प्रमुख समानतायें हैं जिनमें से प्रथम है कि इनको एक ही तरह की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विकास समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, द्वितीय इन सभी देशों को आधुनिकीरकरण की ओर बढ़ना है, अपनी राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय और लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना है और तृतीय इन सभी देशों ने विकास प्रशासन के महत्व को जान लिया है, जिसके माध्यम से इनको सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिवर्तन लाते हुए राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति के लक्ष्यों को प्राप्त करना है। अतः विकासशील देश विकास प्रशासन के द्वारा स्वयं का विकास, प्रगति और उन्नति कर रहे हैं। विकसित देश इनको सहयोग और सहायता प्रदान करते हैं।

विकास के युग में विकसित और विकासशील देशों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से चर्चा की जाती रहती है। पूर्व विवरण से ये बात तो स्पष्ट रूप से आप समझ गये होंगे कि विकास एक बहुमुखी अवधारणा है। इसमें केवल आर्थिक पक्ष पर बल देना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन एवं प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त करना भी है।

यदि हम विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं को देखना चाहते हैं तो सबसे पहले हम विश्व में देशों की प्रकृति और उनके विकास की स्थिति के आधार पर उनका अध्ययन करेंगे। इस आधार पर सम्पूर्ण विश्व के देशों को तीन समूहों में विभाजित किया गया है। पहला, विकासशील देश- एशिया के देश (जापान के अलावा, अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर), लेटिन अमरीका, कैरेबियन क्षेत्र, साइप्रस आदि। ये देश तृतीय देश के नाम से जाने जाते हैं। सामान्यतः विकासशील देशों को अर्द्ध-विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश के नाम से भी जाना जाता है। दूसरा, विकसित आर्थिक बाजार देश- दक्षिण और पश्चिम यूरोप के देश (साइप्रस, माल्टा और यूगोस्लाविया को छोड़कर) उत्तरी अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रलिया, जापान और न्यूजीलैण्ड। तीसरा, पहले वाले साम्यवादी आर्थिक स्थिति वाले देश- पहले के सोवियत यूनियन में सम्मिलित यूरोप के देश और पहले के पूर्वी एवं मध्य यूरोप के साम्यवादी देश चीन और रूस संघ।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के देशों को मोटे तौर पर इन तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। विकासशील देशों में जहाँ प्रशासन को विकासशील समझा जाता है, सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। वहीं दूसरी ओर, विकसित पश्चिमी समाजों में, जो उथल-पुथल के दौर से गुजर रहे हैं, प्रशासन को निरन्तर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः विकासशील और

विकसित प्रशासन में भेद उन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में है जिनमें प्रशासन कार्य करता है। विकसित देश सम्पन्न, उन्नत और समृद्ध है। विकास, परिवर्तन और आधुनिकीकरण इनकी विशेषताऐं हैं। विकसित राष्ट्रों में आधुनिकता का आशय भौतिकतावाद से नहीं बल्कि विचारों की उत्कृष्टता से लिया गया है। विकसित देशों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों की एक सुनिश्चित दिशा है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाऐं अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की हैं। अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका है। ये देश लोकतंत्र के प्रतीक बन गये हैं, तथा राजनीतिक स्थिरता के उदाहरण भी इस प्रकार विकास की समस्त पृष्ठभूमि तैयार है और परिवर्तन और विकास का क्रम सुव्यवस्थित है। विधि के शासन की अवधारणा ने सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र को जवाबदेय तथा विकासोन्मुख बना दिया। सामाजिक तथा आर्थिक समृद्धता ने यूरोपीय राष्ट्रों में लोक प्रशासन को अधिक विकसित बनाने में भरपूर योगदान दिया है।

विकसित एवं विकासशील देशों में प्रशासन की विशेषताऐं कुछ भिन्न होती है। अगले अध्याय में हम विकासशील प्रशासन एवं उसकी विशेषताओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में हम विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालेंगे। विकसित देशों की विशेषताओं की चर्चा हम अग्रलिखित बिन्दुओं से वर्णित करेंगे-

1. **लोक उत्तर दायित्व स्वरूप-** विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एवं सबसे प्रमुख विशेषता, उसका लोक उत्तर दायित्व स्वरूप माना जाता है। लोक प्रशासन पर जनता का नियंत्रण रहता है, और प्रशासन अपने समस्त कार्यों के लिये, जनता के प्रति उत्तर दायी होता है। इस उत्तर दायित्व की अभिव्यक्ति मंत्रिमण्डल का संसद के प्रति सामूहिक उत्तर दायित्व है।
2. **प्रशासनिक संगठन-** विकसित देशों की प्रशासनिक संरचना विकासशील देशों की तुलना में अधिक व्यवसायिक होती है। ब्रिटेन में विभागीय संरचना विद्यमान है, जबकि अमरीका में प्रशासनिक संरचना दो भागों में विभाजित है- विभागीय संगठन तथा स्वतंत्र आयोग, मण्डल तथा निगम। फ्रांसीसी प्रशासन के प्रमुख अंग मंत्रालय-प्रोजेक्ट और सरकारी उद्यम माने जाते हैं।
3. **उत्तर दायी एवं कुशल लोक सेवाऐं-** विकसित देशों में प्रशासनिक उत्तर दायित्वों का निर्वहन कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। प्रशासन जनता का कार्य बिना असुविधा के सम्पन्न करता है। ऐसे राष्ट्रों में जनता की हानि या असुविधा की क्षतिपूर्ति करना भी एक सामान्य परम्परा मानी जाती है। इन देशों में प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ाने, उन्हें ज्यादा संवेदनशील बनाने, लोकप्रियता बढ़ाने तथा उपादेयता के क्रम में निरन्तर शोध किये जाते हैं। विकेन्द्रीकरण को इन देशों में पर्याप्त महत्व दिया जाता है।

4. **राजनीतिक तटस्थता-** तटस्थता लोक सेवा का एक ऐसा गुण है जो सदा से उपस्थित रहा है। मूल रूप से तटस्थता ब्रिटिश प्रशासन का गुण रहा है। इस तटस्थता की अवधारणा में जनता, व्यक्तियों तथा कर्मचारी वर्ग का विश्वास शामिल होता है। जनता को विश्वास इस बात का, कि चाहे कोई भी दल सत्तारूढ़ हो, लोक सेवा सभी प्रकार के राजनीतिक पक्षपात से मुक्त होगी, मंत्रियों का विश्वास इस बात का कि हर सत्तारूढ़ दल को लोक सेवा की निष्ठा प्राप्त होगी। कर्मचारी वर्ग को विश्वास इस बात का, कि पदोन्नति तथा अन्य पुरस्कार राजनीतिक दृष्टिकोण या पक्षपातपूर्ण कार्यों पर निर्भर नहीं करते बल्कि उनके गुणमात्र पर निर्भर करते हैं।

   इग्लैण्ड में लोक सेवक राजनीतिक दलों की गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। सरकार की किसी भी नीति को लागू करने में राजनीतिक विचारधारा आड़े नहीं आती है। इसके विपरीत अमरीका के लोकसेवकों के राजनीतिक कार्यों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। वे चुनाव अभियान की सभाओं में केवल दर्शकों की भाँति ही भाग ले सकते हैं, उनके राजनीतिक प्रबन्ध या अभियानों में सक्रिय रूप से भाग लेने पर भी पाबन्दी है। फ्रांस में काफी उदारता के साथ कर्मचारियों को राजनीतिक अधिकार दिये गये हैं। यहाँ पर लोक सेवक सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेकर मंत्री पद भी प्राप्त कर सकते हैं जो पुनः लोक सेवा में लौट सकते हैं।

5. **लोक सेवाओं का लोकतांत्रिक स्वरूप-** विकसित समाजों में प्रजातंत्र की आधुनिक अवधारणा यथार्थ एवं व्यापक रूप से लागू होती है। प्रशासन का स्वरूप न केवल सैद्धान्तिक बल्कि व्यवहारिक रूप से भी प्रजातांत्रिक होता है। लोक सेवकों का व्यवहार 'जनता के सेवक' जैसा होता है ना कि 'जनता के स्वामी' जैसा। क्योंकि लोकतंत्र में पूरी सत्ता जनता में ही निहित होती है। लोक सेवाओं में समानता, न्याय तथा स्वतंत्रता का अधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। कार्मिकों को संघ बनाने तथा हितों के लिए संघर्ष करने की छूट दी गई है।

6. **योग्यता को महत्व-** विकसित देशों में लोक सेवाओं में भर्ती के लिये योग्यता को व्यापक रूप से महत्व दिया जाता हैं। ज्यादातर सामान्य प्रशासकीय एवं विशेषज्ञ पदों पर नियुक्ति या चयन प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर होता है। योग्यता निर्धारण की ये प्रतियोगिता परीक्षाऐं बहुत विश्वसनीय प्रकृति की मानी जाती है। अमेरिका सहित विश्व के कुछ और विकसित देशों में अन्य पद राष्ट्रपति की इच्छा से भरे जाते हैं, किन्तु इन पदों पर नियुक्ति विधायिका द्वारा अनुमोदित होती है।

7. **स्थायित्व का गुण-** विकसित देशों की लोक सेवाओं में स्थायित्व का भाव पाया जाता है। शासक परिवर्तित होते रहते हैं लेकिन नौकरशाही सदैव विधमान रहती हैं। भर्ती तथा सेवानिवृत्ति की आयु की व्यवस्था के कारण लोक सेवा का कार्यकाल निश्चित रहता है। ये ही एक ऐसा तत्व होता है जिसके कारण लोक सेवक पूर्णरूप से निर्भीक और निष्पक्ष होकर कार्य सम्पादित करते हैं।
8. **कार्य विशेषीकरण-** कुछ अधिक विकसित देशों, जैसे- पश्चिम यूरोप के देश- उत्तरी अमरीका, न्यूजीलैण्ड, जापान, रूस की प्रशासनिक विशेषताओं में उच्च दर्जे का कार्य-विशेषीकरण होता है। यहाँ बड़ी संख्या में विशिष्ट प्रशासनिक ढाँचे होते हैं, जिनमें से प्रत्येक किसी एक का निश्चित उद्देश्य के लिए विशेषीकरण होता है, जैसे- कृषि, यातायात-संचालन, प्रतिरक्षा, जन-सम्पर्क आदि। इसके अतिरिक्त कुछ अलग प्रकार के राजनीतिक ढाँचे, राजनीतिक दल, चुनाव, संसद, कार्यकारी अध्यक्ष, मंत्रीमण्डल नियमों का निर्माण और लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए स्थापित किये जाते हैं। जिसके पश्चात प्रशासनिक ढाँचे उनको लागू करते हैं। विकास की दृष्टि में यह एक बहुत ही विभेदीकरण पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था है।
9. **औपचारिक राजनीतिक ढाँचे-** विकसित राजनीतिक व्यवस्था में औपचारिक राजनीतिक ढाँचे होते हैं जिनमें पहले से निर्धारित किये गये नियम अथवा नमूने के अनुकूल नियन्त्रण रखा जाता है। राजनीतिक निर्णय करना राजनीतिज्ञों का कर्तव्य बन जाता है, और प्रशासनिक निर्णय करना प्रशासकों का कर्तव्य होता है। सभी राजनीतिक निर्णय और कानून फैसले, चिरकालिक, तर्कसंगत मानकों के आधार पर किये जाते हैं। परम्परागत विशिष्ट वर्ग चाहे वे किसी धर्म अथवा कबीले से सम्बन्ध रखने वाले क्यों न हो, सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने की वास्तविक सत्ता खो बैठते हैं।
10. **सार्वजनिक कार्यों में जनता की रूचि-** सार्वजनिक कार्यों में जनता की रूचि तथा उलझाव बहुत अधिक होता है। राजनीतिक चेतना बहुत उच्च मात्रा तक पहुँच चुकी होती है। अतः निर्णय करने और उनको लागू करने की प्रक्रियाओं में सक्रिय भाग लेने के लिये जनता का संघटन किया जाता है।
11. **गतिशीलता की प्रवृत्ति-** विकसित देशों का सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक ढाँचा गतिशील प्रवृत्ति का परिचायक होता है। इन देशों में परिवर्तन को सहजता से स्वीकार किया जाता है। प्रशासनिक व्यवस्था का ये गुण होता है कि वो देश के राजनीतिक परिदृश्य, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना तथा तकनीकी विकास के सन्दर्भ में आये सभी परिवर्तनों के अनुरूप शीघ्रता से परिवर्तित हो जाती है। उदहारण के तौर पर पिछले दशकों में ब्रिटेन की लोक सेवाओं का घटता आकार तथा निजीकरण समय

की माँग के अनुरूप एक गतिशील परिवर्तन के तौर पर ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'प्रशासनिक सुधारों' के प्रयास भी पूर्ण मनोयोग एवं इच्छा से ही क्रियान्वित होते हैं।

12. **व्यापक कार्यक्षेत्र-** विकसित देशों का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि यहाँ सरकार की क्रिया अथवा कार्यों का क्षेत्र सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत मामलों के बहुत बड़े दायरों तक फैला होता है। राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप ने प्रशासन के कार्यक्षेत्र को न केवल व्यापक बनाया है, बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण दायित्वों से युक्त कर दिया है। अनेक जनोपयोगी कार्यों जैसे- कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण से लेकर न्याय व्यवस्था तक प्रत्येक कार्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित है। राज्य की सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था, अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण तथा सामाजिक सेवाओं का संचालन इत्यादि सभी कार्य प्रशासन की सूची में सम्मिलित होते हैं।

13. **विशेषज्ञों का महत्व-** विकासशील राष्ट्रों में सामान्यज्ञ अधिकारियों का वर्चस्व रहता है, जबकि विकसित राष्ट्रों में डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेषज्ञ अधिकारियों को उच्च दर्जा प्रदान किया जाता है। अमेरिका, जापान एवं जर्मनी में विशेषज्ञ अधिक सम्मानित हैं, वहीं ब्रिटेन तथा फ्रांस में भी इन्हें सामान्यज्ञों की अधीनरूपता में नहीं रखा गया है। अतः तकनीकी विकास की जटिलताओं तथा ज्ञान के बढ़ते क्षितिज ने विशेषज्ञों की प्रशासन में भूमिका महत्वपूर्ण बना दी हैं।

14. **प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव-** विकासशील देशों के विपरीत, विकसित देशों के लोक प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। ब्रिटेन के विपरीत अमेरिका में लोक सेवाओं पर दलीय प्रभाव पाया जाता हैं। यहाँ राष्ट्रपति को ये अधिकार होता है, कि वो अपने विश्वस्तों या मित्रों आदि को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर सकता है। फिर ये ही सब लोग नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फ्रांस की लोक सेवायें भी दलीय प्रभाव से अछूती नहीं हैं। वहाँ के लोक सेवकों को दलीय गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार होता है। परन्तु ब्रिटेन की स्थिति इस सम्बन्ध में थोड़ी भिन्न होती हैं। वहाँ पर लोक सेवकों के लिये राजनीतिक तटस्थता का पालन तो करना होता है, परन्तु, इसके साथ ही उन्हें बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका में परिवर्तन करते हुए सामन्जस्य भी बिठाना पड़ता है। ऐसी परिवर्तित परिस्थिति में पहले की सरकार से जो लोग घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं उनका स्थानान्तरण कम महत्वपूर्ण विभागों में कर दिया जाता हैं। अनेकों बार पूर्व में उनके द्वारा सम्पादित कार्यकलापों के लिये कुछ विभागीय जाँच समितियाँ भी स्थापित कर दी जाती हैं। भारत

इससे अछूता नहीं है, भारत में भी इस प्रकार की स्थिति देखने को मिलती है फिर भी वे अपेक्षाकृत ब्रिटेन की लोक सेवा पर दलीय प्रभाव अपेक्षाकृत कम पाया जाता हैं।

15. **लोक सेवकों की स्थिति-** विकसित देशों में लोक सेवकों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इनकी भर्ती योग्यता के आधार पर होती हैं। विकसित देशों में आरक्षण तथा भाई-भतीजावाद देखने को नहीं मिलता है। लोक-सेवकों का स्वरूप लोकतांत्रिक होता है, तथा वे स्थायी वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं, सरकार के परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं, वे तटस्थ होकर अपने कार्य करते हैं। उनके वेतन तथा सेवा शर्तें सभी आकर्षित होती हैं। लोक सेवक राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज में लोक सेवकों को प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं। राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के साथ-साथ लोक सवकों की स्थिति व प्रभाव में भी वृद्धि होती जाती हैं।

16. **उच्च स्तरीय समन्वय-** समन्वय समस्त प्रशासनिक संरचनाओं की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है, जो संगठन में संघर्ष तथा अतिराव को रोकती हैं। विकसित देशों में एक कार्य को कई सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा निजी संगठनों के द्वारा सम्पादित किया जाता है। परन्तु ऐसे प्रशासन की ये विशेषता होती है, कि इन सभी संगठनों के मध्य एक ही प्रकार के कार्यों के सम्पादन करने के उपरान्त भी इन संगठनों के मध्य टकराव, प्रथम तो कम उत्पन्न होते हैं, एवं यदि उत्पन्न भी होते हैं तो बहुत लम्बे समय तक अनिर्णित नहीं रहते हैं, बल्कि समय रहते राजनीतिज्ञों एवं शीर्ष कार्यपालक अधिकारियों द्वारा सुलझा लिये जाते हैं। विकसित देशों में लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों क्षेत्रों के संगठन परस्पर विचार-विमर्श करते रहते हैं।

17. **समितियों का महत्वपूर्ण स्थान-** अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में लोक प्रशासन में समिति व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। विविध समितियाँ प्रशासनिक कार्यों को समन्वित करने में प्रयत्नशील रहती हैं। इन देशों में मंत्रिमण्डल एवं संसद की विभिन्न समितियाँ होती हैं, जो प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में सहयोग प्रदान करती हैं साथ ही नियन्त्रण भी रखती हैं।

18. **राष्ट्र एवं संविधान के प्रति प्रतिबद्धता-** विकसित देशों को प्रशासन की तथा अन्य विशषताओं के साथ वहाँ के नागरिकों को भी अपने देश के संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय कानून आदि के प्रति अगाध प्रेम होता हैं। यही कारण है, कि इन देशों के नागरिकों तथा प्रशासन के मध्य सदैव सामन्जस्यता एवं सहयोग का भाव दिखाई देता हैं। नागरिक संविधान एवं देश के कानून के प्रति अगाध आस्था रखते हैं। राजनेता तथा लोक सेवक भी इसी कारण से राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। हर

नागरिक तथा सरकारी कार्मिक सदैव ये प्रयास करता है, कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके देश की छवि धूमिल न हो पाये और उनका देश सबसे आगे एवं सबसे अलग दिखाई दे।

19. **अभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व-** शासन सत्ता में उच्च परिवारों, धनिकों, प्रभावशाली जातियों तथा परम्परागत रूप से साधन सम्पन्न लोगों का प्रभुत्व, यूँ तो सभी देशों में समान सा ही है परन्तु फिर भी, फ्रांस, अमेरिका तथा ब्रिटेन में यह सर्वाधिक दिखाई देता है।

20. **सशक्त अर्थव्यवस्था-** विकसित राष्ट्रों की आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ है। अतः प्रशासनिक व्यय को सरलता से वहन किया जा सकता है। राज्य के द्वारा प्रवर्तित सभी कल्याणकारी सेवाऐं सरलता एवं कुशलतापूर्वक वहन की जाती हैं, क्योंकि आधुनिक प्रशासन तथा इसके कार्य पूर्णतया वित्त पर आधारित होते हैं। विकसित राष्ट्रों की एक और विशेषता होती है, कि चूँकि यहाँ प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है अतः प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवन की मूलभूत या न्यूनतम आवश्यकताओं की समस्या नहीं होती हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रशासन अपना ध्यान नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं लगाता है, बल्कि मानव जीवन को सुखमय बनाने हेतु अन्य पहलुओं पर भी विचार करती हैं।

21. **महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व-** विकासशील देशों के विपरीत विकसित देशों में प्रशासन में महिलाओं को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसे देशों में ये देखने को मिलता है, कि महिलाओं को सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर के अधिकार प्रदान किये जाते हैं और वे पुरुषों के समान ही कार्य करती हैं। फ्रांस की समस्त लोक सेवाओं में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या अधिक देखने को मिलती हैं। लोक सेवाओं में महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व से लोक सेवा में शालीनता तथा संजीदगी की भावना का प्रादुर्भाव होता है।

22. **राजनीति एवं प्रशासन के कार्यों का विस्तृत क्षेत्र-** राजनीति और प्रशासन के कार्यों का क्षेत्र विकसित राष्ट्रों में काफी विस्तृत होता है। इसमें सामाजिक जीवन के भी सभी पहलू समाविष्ट हो जाते हैं। यह क्षेत्र निरन्तर बढ़ता रहता है।

23. राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया बुद्धिपूर्ण, तर्क संगत एवं धर्मनिरपेक्ष होती है। परम्परावादी श्रेष्ठवर्ग की शक्तियाँ घट जाती हैं तथा परम्परागत मूल्यों का प्रभाव भी कम हो जाता है। फलतः धर्मनिरपेक्ष तथा निवैयक्तिक कानून व्यवस्था जन्म लेती है।

24. प्रबन्धकों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य पर्याप्त सम्पर्क।

25. सत्ता और नियंत्रण का अत्यधिक विकेन्द्रीकरण।

26. आन्तरिक प्रशिक्षण गतिविधियों की पर्याप्तता।

अभ्यास के प्रश्न-

1. विकास प्रशासन का लक्षण क्या नहीं है?
2. विकास प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध किससे है?
3. भारत में विकास प्रशासन की प्रमुख समस्या क्या है?
4. विकास प्रशासन की क्या विशेषता नहीं है?
5. विकास प्रशासन में किसकी भागीदारी आवश्यक है?

4.4 सारांश

इस अध्याय में हमने ये जानने का प्रयास किया, कि विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लक्षण क्या होते हैं? व वहां प्रशासन व नौकरशाही किन-किन विशेषताओं व दृष्टिकोणों के साथ कार्य करती हैं। प्रस्तुत वर्णन से इस बात को समझाने का प्रयास किया गया है कि राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा जाता है-विकसित एवं विकासशील। किसी भी देश का विकसित या विकासशील कहे जाने के पीछे उस देश के प्रशासन की प्रकृति और विकास के स्तर के सम्बन्ध को जाँचना होता हैं।

विकास का अभिप्राय आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के तत्वों के समूह से हैं जिनमें से प्रत्येक तत्व कम विकसित से अधिक विकसित अविच्छिन्नक पर फैला होता है। एक देश में एक ही समय में कुछ ऐसी विशेषतायें भी दिखाई देती हैं जो कम विकसित होती हैं। साथ ही विकसित देशों के लोक प्रशासन में भी कुछ ऐसे तत्व देखने को मिलते हैं जो विकसित देशों के लक्षण हाते हैं और कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो विकासशील देशों या कम विकसित देशों से मिलते-जुलते होते हैं। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाऐं, अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की होती हैं अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका होता है। फ्रांस, अमेरिका, जापान तथा ब्रिटेन आदि विकसित देशों की न केवल प्रशासनिक व्यवस्था बल्कि सामाजिक स्तर पर भी परिपक्वता दिखाई देती हैं। इसके अतिरिक्त सभी विकसित देशों के लोक प्रशासन में वैधानिकता, तार्किकता, विशेषज्ञता को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। यहाँ प्रायः राजनेताओं तथा प्रशासकों के मध्य मधुर सम्बन्ध रहते हैं, तथा प्रशासन संविधान, राष्ट्रीय कानूनों तथा आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध होता है। लोक-प्रशासन में विकेन्द्रीकरण का व्यवहारिक स्वरूप देखने को मिलता है और प्रशासनिक नीतियाँ लोकमत से प्रभावित होती हैं तथा प्रशासन में जनता पर्याप्त रूचि एवं सहभागिता प्रकट करती है।

इसी प्रकार विकसित देशों में विशेष तौर पर देश की कार्यशील जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग लोक सेवकों के रूप में कार्यरत रहता है तथा नौकरशाही की कार्यप्रणाली कठोर होने की अपेक्षा सहयोगी एवं संवेदनशील प्रवृत्ति की होती है। ईरा शारकैन्सकी (Ira Sharkansky) ने भी विकसित देशों में नौकरशाही की तीन प्रमुख विशेषताऐं बतायी-

1. नौकरशाही का आकार बड़ा होता है, तथा इसमें कर्मचारी विशेषज्ञ होते हैं, जो कार्यों के विशेषीकरण एवं सरकार की क्रियाओं के विस्तृत दायरे को प्रदर्शित करते हैं।
2. नौकरशाही सरकार की अन्य विधिसंगत शाखाओं से आदेश प्राप्त करती है।
3. नौकरशाही को पेशेवर समझा जाता है।

अतः अधिक विकसित देशों में नौकरशाही की अधिक विधिसंगत, कार्यकुशलता तथा राजनीतिक दृष्टि से अधिक उत्तर दायी समझा जाता है, वे विभिन्न प्रकार की बड़ी संख्या में कार्य करती है। यही कारण है कि समाज में उनका प्रवेश बहुत अधिक विस्तृत होता है। ग्राहकों अथवा नागरिकों के साथ उनकी परस्पर क्रिया वैयक्तिक होती है। फ्रांस और जर्मनी में समाज के अन्य व्यवसायिक समूहों से नौकरशाही ने, विशेषतया इसके उच्च स्तरों में अपनी एक अलग स्थिति बना ली है, किन्तु ब्रिटेन और अमेरिका में ऐसा नहीं हुआ है। फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में प्रशासनिक न्यायालयों की व्यवस्था है जो अमेरिका तथा ब्रिटेन के सिविल न्यायालयों के देशों की लोकसेवाओं में राजनीतिक चेतनता के स्तर, व राजनीति में भाग लेने की सीमा में भी बहुत भिन्नता है। किन्तु अधिकतर विकसित देशों के सम्मुख बहुत अधिक लोक सेवा तथा नियामक उपक्रमों के पारस्परिक असंगत सम्बन्धों की समस्या अब भी बनी हुई है।

4.5 शब्दावली

अविच्छिन्नक- सातत्य, अबाध-क्रम, प्रतिबिम्बित- जो स्पष्ट रूप से व्यक्त होता हो, उत्कृष्टता- श्रेष्ठता, भौतिकतावाद- यथार्थवाद, क्षतिपूर्ति- क्षति/हानि की पूर्ति होना, संवेदनशील- संवेदना से युक्त, तटस्थता- किसी का पक्ष ना लेना, सत्तारूढ़- जिसे सत्ता प्राप्त हो या सत्तासीन, प्रतिबन्ध- रोक या निषेध, सामान्यज्ञ- जिसको सब विषय के बारे में ज्ञान हो, विशेषज्ञ- किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाला, अनुमोदित- समर्थित या सम्मति प्राप्त, चिरकालिक- बहुत दिनों तक बना रहने वाला, तर्कसंगत- जो तर्क के आधार पर ठीक हो, मानक- पैमाना या कसौटी या गुणवत्ता का आधार या स्तर, गतिशीलता- चलने-बढ़ने का भाव या गतियुक्तता, परिचायक- सूचक या सूचित कराने वाला, परिदृश्य-चारों ओर दिखने वाला दृश्य, मनोयोग- मन को किसी कार्य या विषय में एकाग्र

करके लगाना, परिप्रेक्ष्य- उन परिस्थितियों का समाहार जिसमें घटना घटी हो; किसी विषय, घटना या बात के विभिन्न पक्ष,भाई-भतीजावाद- नौकरी, आर्थिक सहायता आदि दिलाने में या सगे-सम्बन्धियों के हित हेतु किया गया पक्षपात, स्वजन पक्षपात, अतिएव- अविच्छादन करना, परस्पर व्याप्त करना, एक ही समय होना, अनिर्णित- जिस पर निर्णय न हुआ हो; अनिश्चित, अगाध- जिसकी गहनता या गंभीरता का पता न चल सके, सामंजस्यता- तालमेल; मेल; संगति; एकरसता, अभिजात्य- कुलीन, अविच्छिन्नक- सातत्यपूर्ण।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नियमों की कठोरता, **2.** तुलनात्मक लोक प्रशासन, **3.** समन्वय, सम्प्रेषण का अभाव, **4.** नौकरशाही मनोवृत्ति, **5.** राजनीतिक प्रतिनिधि, सामाजिक संगठन और हित समूह।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0 पी0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
3. डॉ0 एम0 पी0 शर्मा, बी0एल0 सढाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन: सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद, 2015

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन , लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1992
2. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा, 1974
3. रमेश के0 अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1995
4. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2003

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास एवं विकास-प्रशासन की अवधारणा की व्याख्या कीजिये।
2. विकसित देशों में लोक प्रशासन के प्रमुख लक्षणों की विस्तार से विवेचना कीजिये।

इकाई- 5 विकासशील देशों की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 विकाशील देशों का अर्थ

5.3 विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन

5.4 विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही

5.4.1 उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही

5.4.2 गैर-उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही

5.5 विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

5.6 विकासशील देशों के प्रशासन की समस्याऐं

5.7 विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष चुनौतियां

5.8 विकसित व विकासशील देशों के लोक-प्रशासन व नौकरशाही में अन्तर

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

विकासशील देश जैसे शब्द का प्रयोग किसी ऐसे देश के लिये किया जाता है जिसके भौतिक सुखों का स्तर निम्न होता है। विकास के ये स्तर सभी विकासशील देशों में पृथक-पृथक हो सकते हैं। कुछ विकासशील देशों में, औसत रहन-सहन का स्तर का मानक भी उच्च होता है। विकासत तथा विकासशील राष्ट्रों के रूप में यह विभाजन प्रत्येक दृष्टि से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। सामान्यतः विकासशील देशों को अर्द्ध-विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश भी कहा जाता है। विगत अध्याय में आपने विकसित राष्ट्रों की विशेषताओं के बारे में जाना। प्रस्तुत

अध्याय में विकासशील राष्ट्रों के बारे में सम्पूर्ण अध्ययन करेंगे व अन्त में विकसित और विकासशील देशों के मध्य अन्तर स्थापित करते हुए उन्हें भली-भाँति जानने का प्रयास करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- परिभाषाओं के आधार पर विकासशील देशों के अर्थ को जान पायेंगे।
- विकासशील देशों की विभिन्न प्रकार की विशेषताओं से अवगत हो जायेंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य अन्तर को समझ जायेंगे।

5.2 विकासशील देशों का अर्थ

जैसा कि आपने जाना कि विकासशील राष्ट्र नामक शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थों में ऐसे राष्ट्रों के लिये किया जाता है, जिसमें भौतिक सुखों का स्तर निम्न होता हैं। चूँकि विकसित देश नामक शब्द की कोई भी एक परिभाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त नहीं है, अतः विकास के स्तर इन तथाकथित विकासशील देशों में भिन्न हो सकते हैं। विकासशील देशों को कई नाम दिये गये हैं। जैसे- कम विकसित, उद्-गामी, अन्तर्कालीन और अविकसित आदि। किन्तु 'विकासशील' शब्द अधिक लोकप्रिय हुआ, क्योंकि इसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान अधूरे विकास की स्थिति स्थायी नहीं है और वे विकास के एक उच्च स्तर की ओर चल रहे हैं। इस श्रेणी में अधिकतर अफ्रीका, एशिया (जापान एवं दक्षिण कोरिया को छोड़कर) तथा दक्षिण अमरीका के देश व कुछ द्वितीय राष्ट्र आते हैं, यद्यपि यूरोप के कुछ देशों को भी इस श्रेणी में लाया जा सकता हैं। सन् 1961 में अल्जीयर्स लेखक, फ्रेण्ट्ज फेनॉन ने अपनी पुस्तक "Les Dammes Da La Terres" में सर्वप्रथम तीसरी दुनिया नामक शब्द का प्रयोग अर्द्ध-विकसित या विकासशील देशों के लिये प्रयुक्त किया था। अपनी इस पुस्तक में फेनॉन ने अमेरिका तथा अन्य पूँजीवादी देशों को 'पहली दुनिया' रूस तथा अन्य समाजवादी राष्ट्रों को 'दूसरी दुनिया' तथा विकासशील राष्ट्रों को 'तीसरी दुनिया' कहा था। वास्तव में अब दूसरी दुनिया नामक शब्द की प्रासंगकिता नहीं रही है, क्योंकि सन् 1991 में सोवियत समाजवादी गणराज्य का विघटन हो चुका है तथा अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्र महाशक्ति के रूप में बचे हैं। आजकल 'चौथी दुनिया' शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा है। अति निर्धन देशों (सूड़ान, इथियोपिया तथा बांग्लादेश) को इस नाम से पुकारा जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य बहुत तेजी के साथ परिवर्तित हुआ है। पहली दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिम यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड की चर्चा होती थी, जबकि दूसरी दुनिया में सोवियत संघ तथा उसके मित्र राष्ट्र (पूर्वी यूरोपीय देश) शामिल थे। तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के वे देश शामिल हैं जो उपनिवेश काल से स्वतंत्र होकर विकास की राह पर चल रहे हैं। ये देश आर्थिक रूप से पिछड़े हुए, सामाजिक रूप से विषमताग्रस्त तथा उपनिवेश काल की विरासत को ढोने वाले माने जाते हैं। विकासशील देशों में आधुनिकता का अभाव पाया जाता है।

विश्व बैंक सभी निम्न और मध्यम आय वाले देशों को विकासशील देशों की श्रेणी में रखता है परन्तु साथ ही ये स्वीकार करता है कि, ''इस शब्द का प्रयोग सुविधा के लिये किया जा रहा है, हमारा आशय यह नहीं है कि इस समूह की सभी अर्थव्यवस्थाऐं एक समान विकास की प्रक्रिया से गुजर रही है अथवा अन्य अर्थव्यवस्थाऐं विकास की पसंदीदा अथवा अंतिम अवस्था पर पहुँच गयी हैं। आय द्वारा वर्गीकरण आवश्यक रूप से विकास की स्थिति को नहीं दर्शाता है।'' इस प्रकार तीसरी दुनिया के अधिकांश देश राष्ट्र-निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं।

उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णन के पश्चात यदि विकासशील देश के अर्थ को कुछ बिन्दुओं में समझना चाहें तो कह सकते हैं कि-

1. विकासशील राष्ट्र वो होते हैं, जिनका औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की तुलना में राजनीतिक एवं आर्थिक विकास का स्तर थोड़ा कम होता हैं।
2. वे राष्ट्र जो पूँजीवादी गुट अर्थात् अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप तथा साम्यवादी गुट अर्थात् सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप से स्वयं को पृथक रखते आये हैं, विकासशील राष्ट्र हैं।
3. विकासशील देश वे होते हैं, जिनकी अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती हैं।
4. वे राष्ट्र जिनका समाज बहु विविधताओं से युक्त तथा पिछड़ा हुआ होता हैं।
5. ऐसे राष्ट्र जो अब भी अशिक्षा, कुपोषण, गरीबी, रूढ़िवादिता आदि समस्याओं से जूझ रहे हैं, विकासशील राष्ट्र की श्रेणी में आते हैं।
6. सामान्यतः विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं व भौगोलिक दृष्टि से गरम जलवायु के देश हैं।

इन सब विशेषताओं के अलावा यदि संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के अनुसार देखें तो जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा यूरोप के देशों की तुलना में कम होती हैं वे अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश कहलाते हैं। परन्तु फिर भी अभी तक ऐसी कोई सर्वव्यापी परिभाषा विकसित नहीं हुई है जो सभी विकासशील

राष्ट्रों के सम्पूर्ण रेखाचित्र को स्पष्ट कर सके। विकासशील देशों की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को समग्र रूप में देखने से पूर्व आइये हम इन देशों में प्रशासन तथा नौकरशाही के स्वरूप को पृथक रूप से जानें ताकि इनकी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने में आसानी रहे।

5.3 विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन

विकासशील देशों के बारे में उपरोक्त वर्णन से आप अब तक ये तो जान ही गये होंगे कि ये देश जनाधिक्य, सामाजिक शोषण, गरीबी, बेरोगजारी, परम्परागत समाज तथा अन्धविश्वास से ग्रस्त हैं। एशिया और अफ्रीका के देश ब्रिटिश शासकों के शोषण के शिकार रहे तथा लम्बे समय तक राजशाही व्यवस्थाओं से त्रस्त रहे। ये देश उपनिवेशवाद के दौरान मिली प्रशासनिक व्यवस्था को विरासत में लेकर विकास की राह पर आगे बढ़े। उपनिवेशवाद के दौरान प्रशासन तन्त्र का स्वरूप केवल नियामकीय था जो केवल शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का ही काम करता था जबकि नवस्वतन्त्र राष्ट्रों की मुख्य आवश्यकता विकास प्रशासन की थी। विकासशील राष्ट्रों के साथ सबसे बड़ी समस्या संसाधनों की कमी की रही व साथ ही तकनीकी ज्ञान का अभाव भी रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब विकासशील देश उपनिवेशवाद से आजाद हुए तब तक शेष विश्व (विकसित) इनसे कहीं आगे निकल चुके थे। आज, यद्यपि विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हो चुकी हैं, तब भी इनका प्रशासन काफी हद तक कठोर, निष्ठुर और असंवेदनशील बना हुआ है। परिणामस्वरूप न तो विकास के लक्ष्य प्राप्त किये जा सके हैं और ना ही लोक कल्याणकारी राज्य या लोकतंत्र के सपने पूरे हुए हैं।

विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक दुराभिसन्धियाँ तथा संकीर्णताऐं अपने चरम पर होती हैं। रिग्स के अनुसार, 'विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती हैं।' उदहारणस्वरूप भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की तुलना में सामाजिक मानसिकता परिवर्तित नहीं हुई है। विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय भावना, नैतिकता तथा सच्चरित्रताकी स्थापना एक दुष्कर कार्य बना रहता है, क्योंकि नवतंत्र राष्ट्रों में स्वतंत्रता का आशय स्वच्छंदता से लिया जाता हैं। लोकतंत्र का तात्पर्य केवल अधिकारों की प्राप्ति से ही समझा जाता है, अतः इन देशों के नागरिकों में कर्तव्यों एवं उत्तर दायित्व की भावना का अभाव पाया जाता हैं। विकासशील राष्ट्रों का समाज परम्परागत, अशिक्षित, अल्प जागरूक, विषमतायुक्त तथा ग्रामीण जनसंस्कृति से युक्त होता है। अतः यहाँ पर सामाजिक न्याय की स्थापना एक महत्वपूर्ण बिन्दु बन जाता है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में लोक प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता हैं। विकसित राष्ट्रों में विकास के एकमात्र रूप में केवल सरकार ही प्रयत्नशील नहीं रहती है बल्कि अन्य संगठनों का भी इसमें योगदान रहता हैं। जबकि दूसरी तरफ

विकासशील राष्ट्रों की योजनाऐं एवं विकास कार्यक्रम पूरी तरह से राज्य द्वारा नियंत्रित एवं निर्धारित होते हैं। गरीबी, निरक्षरता, भुखमरी, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, महिला अत्याचार, बाल-अपराध, औद्योगीकरण का अभाव आदि कई ऐसी समस्याऐं हैं, जिनके समाधान में इन देशों का प्रशासन सैदव कार्यरत रहता हैं।

5.4 विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही

रिग्स ने माना कि विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एकसार नहीं होती हैं। लोक प्रशासन (प्राविशिकता) में विकास जितनी तेजी से हो पाता है, उतनी तेजी से राजनीतिक संस्थानों जैसे- राजनीतिक कार्यकारिणी, विधानमण्डल, चुनाव प्रणालियों (प्रक्रिया) आदि में नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विकासशील समाजों में नौकरशाही अधिक प्रभुत्वशाली बन जाती हैं और यह बेमेल प्रभाव का प्रयोग करती हैं जिसके बहुत गम्भीर परिणाम होते हैं।

एस0एन0 ईसनतेंत (S.N. Eisentadt) उपनिवेशिक और गैर-उपनिवेशिक दो प्रकार के विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही के विकास का वर्णन संरचनात्मक-कार्यात्मक (Structural-functional) दृष्टि से करते हैं।

5.4.1 उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्र

ऐसे विकासशील देश जो उपनिवेशी शासन के अधीन रहे उनके सन्दर्भ में ईसनतेंत ने कहा कि इनको अपनी प्रशासनिक संरचना उपनिवेशिक युग से विरासत के रूप में प्राप्त हुई हैं। इनमें सदा से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में देखने को मिलती हैं। इनका कार्य मूल प्रशासनिक सेवाओं जैसे- राजस्व तथा कानून और व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित थे। इन्होंने आधुनिक कानूनी और प्रशासनिक व्यवहारों के ढाँचों से स्थापित करने में सहायता की। ये राजनीतिक रूप से निष्पक्ष थे। ये उपनिवेशिक शासकों की सेवा करते थे जिन पर किसी प्रकार का राजनीतिक उत्तर दायित्व नहीं था। जब उपनिवेशी शासक चले गये तो इन देशों को यह उपनिवेशिक प्रशासन या नौकरशाही दोनों विरासत के रूप में मिले। इन देशों में नौकरशाही की दूसरी परत भी है जिसमें वे विभाग तथा ढाँचें सम्मिलित किये जाते हैं, जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात स्थापित किये गये। यहाँ एक नयी लोक सेवा का विकास किया गया- जो कार्मिक, लक्ष्यों, विभागों तथा क्रियाओं की दृष्टि से नयी थी। इनमें नये अधिकारियों की भर्ती की गई, ये सब ऐसे व्यक्ति रखे गये जिनको भूतपूर्व उपनिवेशिक लोक सेवा की अपेक्षा राजनीतिक उत्तर दायित्व की भावना तथा राजनीतिक दिशा का कहीं स्पष्ट और उच्च स्तरीय ज्ञान था।

5.4.2 गैर-उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्र

ईसनतेत ने विकासशील देशों की दूसरी श्रेणी में उन राष्ट्रों को रखा जो उपनिवेशिक शासन के अधीन नहीं रहे। ऐसे देशों में नौकरशाही कुछ भिन्न नमूने का प्रदर्शन करती है। उनमें एक परम्परागत नौकरशाही विधमान थी, चाहे वह मध्यपूर्व के देशों की भाँति राजशाही हो या अल्पतंत्रीय-गणतंत्रात्मक, जैसी कि दक्षिण अमरीका के देशों में देखी जाती है, बढ़ते हुए आधुनिकीकरण के प्रभाव, आन्तरिक लोकतन्त्रीकरण तथा नये सामाजिक, राजनीतिक लक्ष्यों के विकास के कारण इन नौकरशाहियों को अपनी क्रियाओं के क्षेत्र को विस्तृत करना पड़ा और नये कार्मिकों को भर्ती करना पड़ा। फेरेल हेडी ने विकासशील देशों में प्रशासनिक प्रारूपों की कई श्रेणियों का उल्लेख किया है-

1. **परम्परागत तानाशाही (Traditional Autocratic)-** जैसा कि सऊदी अरब, मोरक्को, पैरागुए आदि में है। इनका शासन का ढंग परम्परागत है। सत्ताधारी राजनीतिक अभिजन ऐसे परिवारों से आते हैं, जिनकी स्थिति राजतांत्रिक अथवा कुलीनतांत्रिक होती है और नीतियों में परिवर्तन करने के लिये वे सैनिक तथा असैनिक नौकरशाही पर आश्रित होते हैं। राजनैतिक अभिजन आर्थिक प्रगति और विकास के प्रति वचनबद्ध नहीं होते (सिवाय तेल का उत्पादन करने वाले देशों के)।
2. **नौकरशाही अभिजन (Bureaucratic Elite)-** जैसे कि थाईलैंड, पाकिस्तान, ब्राजील, सूडान, पेरू, इंडोनेशिया आदि में है। परम्परागत अभिजनों को प्रभावी सत्ता से हटा दिया गया है, यद्यपि उनकी उपस्थिति अभी भी कुछ-कुछ है। जनता का राजनीति में बहुत कम सहयोग होता है। राजनीतिक सत्ता अधिकतर सैनिक व असैनिक नौकरशाही के हाथ में होती है।
3. **बहुतंत्रात्मक प्रतिस्पर्धात्मक (Polyarchal Competitive)-** जैसे कि फिलिपीन्स, मलेशिया, कोस्टारिका, यूनान आदि में है। जहाँ तक जनता की भागीदारी स्वतंत्र चुनाव हितानुकूलित राजनीतिक दल और सरकार के प्रतिनिधि ढाँचे पश्चिमी योरोप और संयुक्त राज्य अमरीका से मिलते-जुलते है। कभी-कभी इनमें सैनिक हस्तक्षेप से रुकावट आती है, यद्यपि यह दावा किया जाता है। यह स्थिति अस्थायी है। कई परम्परागत समाजों की अपेक्षा यहाँ सामाजिक गतिशीलता अधिक होती है। यहाँ कई राजनैतिक अभिजन होते हैं जिनकी सत्ता का आधार नगरों के मध्य वर्ग, भूमिपतियों, सैनिक अधिकारियों, मजदूर नेताओं और पेशेवर लोगों में होता है। सरकार की नीतियाँ प्रायः फलमूलक होती हैं।
4. **प्रभुत्वदारी-दलीय संग्रहण (Dominant-Party Mobilization)-** जैसा कि अल्जीरिया, बोलविया, मिस्त्र, तंजानिया, ट्यूनीशिया, माली आदि देशों में है। यहाँ राजनीति में बहुत कम छूट दी जाती है। प्रभुत्वशाली दल ही एक मात्र वैध दल होता है जो बलपूर्वक तरीकों से अपनी स्थिति बनाये रखता है।

सरकार एक निश्चित सिद्धान्त का अनुकरण करती है और सरकार के प्रति वफादारी के लोक-प्रदर्शन किये जाते हैं। सत्ताधारी अभिजन प्रायः युवक नगरों में रहने वाले, अच्छे, शिक्षित और धर्मनिरपेक्ष होते हैं, किन्तु आम तौर पर उनका नेतृत्व कोई चमत्कारिक नेता करता है। राष्ट्रवाद और विकास के कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया जाता है।

5.5 विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक विशेषताऐं

शासन के संचालन तथा विकास एवं प्रगति की दिशा में प्रशासन की भूमिका सुविदित है। ला-पालोम्बरा ने विकासशील देशों में होने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों में नौकरशाही को एक महत्वपूर्ण स्वतंत्रचर माना है। यह सही है कि समाज सरकार के माध्यम से बोलता है और सरकार की नीति, योजना, परियोजना, कार्यक्रम आदि प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित होते हैं। विकासशील देशों में प्रशासन की स्थिति बड़ी शोचनीय है। तृतीय विश्व के अध्येयता इस बात पर पूरी तरह से एक मत हैं कि, नवीन देशों के सामाजिक, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में प्रशासन की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतएव प्रशासन के विकास पर पूरी तरह ध्यान दिया जाना चाहिये। विकासशील देशों में प्रशासनिक विकास के अभाव में समाज व्यवस्थाओं का भी आगे बढ़ना संभव नहीं है। अतः तीसरी दुनिया के अधिकांश देश जिन्हें हम विकासशील देश भी कहते हैं, राष्ट्र-निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि ये समस्त कार्य प्रशासन के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, इसलिये विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मुख्य लक्षणों का विश्लेषण करते हुए उन सब बातों को भी ध्यान रखना आवश्यक है। विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताओं को बिन्दुओं में कुछ इस प्रकार देखा जा सकता है-

1. **प्रशासन का उपनिवेश और पश्चिमी प्रतिमान-** विकासशील देशों के प्रशासन की एक विशेषता पश्चिमी देशों एवं उपनिवेश के प्रशासन का प्रतिरूप हैं। इन देशों का लोक प्रशासन स्वदेशी नहीं होता वरन् पाश्चात्य देशों की नकल मात्र होती हैं। एशिया, लेटिन अमरीका, अफ्रीका तथा मध्य पूर्व के देश ब्रिटेन, हालैण्ड, फ्रान्स, पुर्तगाल तथा स्पेन इत्यादि देशों के उपनिवेश रह चुके हैं अतः इन विकासशील देशों की अपनी कोई देशी शासन पद्धति नहीं है। ये देश साम्राज्यवादी देशों जैसा प्रशासन अपनाने लगे। किसी प्रशासनिक कार्यालय का संगठन, नागरिक सेवकों की स्थिति और समग्र प्रशासनिक रूप-रचना करते समय प्रायः उपनिवेशवादी शक्ति के व्यवहार को आदर्श माना जाता है। अर्थात् प्रशासन का स्वरूप देशी ना होकर अनुकरणात्मक है। परिवर्तन सिर्फ इतना है कि नौकरशाही अपने आप को समय और परिस्थति

के अनुसार बदलने के लिये और विकास की प्रक्रिया के अनुरूप नवीन चिन्तन और कार्यशैली अपनाने की दिशा में अग्रसर हो रही है। फिर भी यह सुधार सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता है।

2. **कार्यकुशल मानव शक्ति का अभाव-** विकासशील देशों में विकास कार्यक्रमों और परियोजनाओं का प्रबन्ध करने वाले कार्यकुशल एवं निपुण कार्मिकों और प्रशासनिक स्टाफ की कमी होती है। इन देशों में कुशल जन शक्ति की कमी है ना कि कार्मिकों की। अर्थात् निम्न स्तर पर काम करने वाले कार्मिकों की तो कमी नहीं है, बल्कि कमी है प्रशिक्षित और निपुण प्रशासकों की। उदाहरणस्वरूप भारत जैसे विकासशील देश के सम्बन्ध में देखें तो यहाँ शिक्षित नवयुवक बेरोजगार तो बहुत मिल जायेंगे लेकिन प्रशिक्षित प्रबन्धकों की यहाँ कमी है। आजकल प्रबन्धकीय कौशल का विकास किया गया है, और वित्तीय प्रबन्ध, कर्मचारी प्रबन्ध, सामान्य-सूची (Inventory) प्रबन्ध आदि के लिये विशेषज्ञों की आवश्यकता है। परन्तु विकासशील देशों में कुशल जनशक्ति अब भी विद्यमान है, जिसके तीन कारण माने जाते हैं, पहला- मानव संसाधन की कमी, विकास नियोजन और शिक्षण व्यवस्था में कमी। दूसरा- भर्ती और प्रशिक्षण की अनुचित नीतियाँ और तीसरा- बुद्धिजीवी अपवाह (Brain Drain) संक्षेप में, विकासशील कार्यक्रम के लिये इन देशों का प्रशासन आवश्यक मानव शक्ति से रहित है, पर इसमें प्रबन्ध क्षमता, विकासात्मक कौशल और तकनीकी दक्षता रखने वाले प्रशिक्षित प्रशासकों की कमी है।

3. **नौकरीशाही का उत्पादन कार्यों पर कम जोर-** विकासशील देशों की नौकरशाही उत्पादन कार्यों पर कम एवं अन्य विषयों पर अधिक जोर देती है। प्रो0 रिग्स ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। इन देशों में नौकरशाही पर अतीत के मूल्य तथा व्यवहारों का प्रभाव रहता है। आज भी गैर-परम्परावादी सामाजिक रूप रचना में भी ये मूल्य यथावत् हैं। यहाँ के प्रशासक लक्ष्य के प्रति सफलता की अपेक्षा प्रशासनिक प्रक्रिया के स्तर को अधिक महत्व देते हैं, जबकि समय की माँग विपरीत दिशा में है। स्तर के साथ-साथ कार्य सम्पन्नता को भी महत्व दिया जाना चाहिये।

4. **केन्द्रीकृत अधिकारी-तन्त्र ढाँचा-** नवस्वतन्त्र विकासशील देशों में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के क्रम में सैद्धान्तिक रूप से तो स्थिति सन्तोषप्रद दिखायी देती है। परन्तु सदियों तक गुलामी सह चुके इन राष्ट्रों के नागरिक एवं राजनेता सहजता से विकेन्द्रीकरण को स्वीकार नहीं कर पाते। अर्थात् विकासशील देशों में लोक-सेवाऐं सत्ता और नियंत्रण में केन्द्रीकृत होती हैं। यह अतिकेन्द्रीकरण शासकीय विभागों एवं मन्त्रालयों में देखने को मिलता हैं, जहाँ निर्णय लेने में लोक-सेवकों, विशेषकर मध्य और निम्न स्तर के लोगों को कम अवसर मिलता है। भारत सहित अधिकांश

विकासशील देशों में सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर उस मात्रा एवं गति से नहीं होता है, जो कि प्रशासनिक कुशलता के लिये आवश्यक है। प्रत्येक स्तर पर सत्ताधारी यही सोचता है कि, अधीनस्थ संस्था या व्यक्ति को अधिकार सौंपना आत्मघाती हो सकता है। इस भय के कारण एक ही स्थान या अधिकारी के पास कार्य का बोझ बढ़ता है जो अन्ततः भ्रष्टाचार, लाल-फीताशाही तथा अकर्मण्यता को जन्म देता हैं।

5. **आकार और वास्तविकता में अन्तर-** इन देशों में प्रशासन के आकार और वास्तविकता में अन्तर होता है। इस अन्तर को रिग्स ने 'आकारवाद' की संज्ञा दी है। इसमें वस्तुओं को ऐसे रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जैसा उन्हें होना चाहिए किन्तु वास्तव में वे वैसी नहीं होती हैं। सरकारी प्रस्तावों और उनके कार्यान्वयन में पर्याप्त अन्तर होता है और बहुत से कार्य बिलकुल ही लागू नहीं होते हैं।
6. **प्रशासनिक सामंजस्य-** विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारु संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि समस्त इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण तत्व है, परन्तु विकासशील देशों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।
7. **प्रशासन की नवीन चुनौतियाँ एवं दायित्व-** विकासशील देशों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से नित्य नयी चुनौतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन चुनौतियों का सामना करना प्रशासन का दायित्व माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में देश की अखण्डता व एकता को बनाये रखना तो एक महत्वपूर्ण चुनौती है ही, परन्तु इसके साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना भी इनके लिये किसी चुनौती से कम नहीं होता। विकासशील देश के समक्ष प्रस्तुत विभिन्न चुनौतियों को कुछ इस प्रकार देख सकते हैं-

विकासशील देशों के सम्मुख चुनौतियाँ		
सामाजिक	**आर्थिक**	**प्राकृतिक आपदाऐं**
• सामाजिक रूढ़िया। • आधुनिकीकरण करने वाले कार्यों और परम्परागत विशिष्ट या अभिजन वर्गों के बीच की दूरी। • हिंसात्मक झगड़े। • विभिन्न कबीलों की भाषाओं और जातीय समूहों में भेदभाव की भावना स्त्रियों तथा निम्न जाति के लोगों को ऊपर उठाना। • समाज का पुराना ढाँचा विघटित हो रहा है और नया ढाँचा इसका स्थान लेने का प्रयत्न कर रहा हैयह अन्तर्कालीन स्थिति एक अभूतपूर्व राज्य को जन्म देती है। • भाग्यवादिता,	• बढ़त पूँजीवाद। • विकास के चरणों को कम से कम समय में पूरा करने का दबाव। • आर्थिक अस्थिरता। • संसाधनों की कमी। • गरीबी। • बेरोजगारी। • अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित। • कमजोर अर्थव्यवस्था। • व्यापार घाटे। • खाद्यान्न की कमी। • मुद्रास्फिति। • महंगाई।	• बाढ़। • सूखा। • महामारी। • तूफान। • भूकम्प। • आगजनी। • स्वास्थ्य का निम्न स्तर। • संक्रामक रोगों का व्यापक प्रसार। • कुपोषण।

कर्मकाण्डता। • क्षेत्रवाद। • जनाधिक्य। • मानवाधिकारों का हनन। • अन्धविश्वास। • आतंकवाद। • साम्प्रदायकिता। • भाषावाद		

अर्थात् उपरोक्त वर्णित गम्भीर एवं जटिल सामाजिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक समस्याओं का सामना करना प्रशासन का उत्तर दायित्व है और इनका समाधान करके ही विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है परन्तु, विकासशील देशों की प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था इन सबका सामना व समाधान करने के लिये ना तो सक्षम होती हैं और ना ही तैयार, क्योंकि वो विरासत में मिली प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था पर काम करते हैं जो इस सब के लिये पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में इन देशों को कुछ साहसिक और सामायिक कदम उठाने की आवश्यकता है।

8. **सेवीवर्ग का सत्तात्मक और गुणात्मक पक्ष-** स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकासशील देशों में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने तथा नवीन विभागों, मन्त्रालयों आदि संगठनों की स्थापना के कारण लोक-सेवकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। भारत जैसे विकासशील देश में लोक-सेवकों की संख्या में मात्रात्मक दृष्टि से बहुत अधिक वृद्धि हुई है। हमारे यहाँ केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की संख्या 1948 में 14,45,000 थी, से बढ़ कर पंचम वेतन आयोग के अनुसार 38.76 लाख हो गयी थी। मात्रात्मक वृद्धि के साथ गुणात्मक दृष्टि से लोक-सेवकों की सेवा के स्तर में गिरावट आयी है। आज प्रशासन बेईमानी और भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गया है। इस प्रकार मात्रात्मक वृद्धि के अनुपात में गुणात्मक वृद्धि नहीं हुई है। यह हमारे प्रशासन का सबसे गम्भीर और शोचनीय विषय है।

9. **सामान्यज्ञों का वर्चस्व-** विकासशील देशों में औपनिवेशिक काल की विरासत आज भी सम्मानपूर्वक प्रवर्तित है। सामान्यज्ञ या प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी लोक प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन रहते हैं तथा राजनीतिज्ञों (मंत्रियों) को परामर्श देने का कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञ एवं सामान्यज्ञ अधिकारी

मिलकर लोक-नीति, कानून तथा विकास कार्यक्रमों का निर्माण करते हैं जिनका क्रियान्वयन विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारियों को करना होता है। अधिक तकनीकी क्षमता एवं कौशल से युक्त विशेषज्ञ अधिकारी, सामान्यज्ञों के अधीन रहते हुए प्रायः कुंठा एवं निराशा के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि भारत में सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद वर्षों से जारी है। तकनीकी विकास एवं सामाजिक-परिवर्तन के वर्तमान दौर में जहाँ विकास प्रशासन की अवधारणा तेजी से जड़ें जमा रही है, विशेषज्ञों की उपेक्षा राष्ट्रहित में नहीं है।

10. **प्रशासन का राजनीतिकरण-** यह विकासशील देशों की एक विशिष्ट और रोचक विशेषता है और प्रशासन राजनीतिक शिकंजे से पीड़ित है। भारत के प्रशासन में बढ़ता हुआ राजनीतिक हस्तक्षेप एक चिन्ता का विषय है। हमारे मन्त्री, विधायक और सांसद सेवीवर्ग की भर्ती, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अनुशासन आदि पर अनुचित प्रभाव डालते हैं। इसका प्रशासन की कार्य-प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। योग्य, कुशल प्रत्याशियों के स्थान पर कम योग्यता वाले लोग सरकारी पदों पर आ जाते हैं। अयोग्य या कम योग्य कार्यकर्ताओं के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता घट जाती है। पदोन्नति के विषयों में राजनीतिक हस्तक्षेप कर्मचारियों के मनोबल को गिरा देता है। वे अपने कार्य की ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा राजनीतिक जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं, क्योंकि उन्नति और अच्छे एवं महत्वपूर्ण पदों पर स्थानान्तरण का यही सरल रास्ता शेष रह जाता है। राजनीतिक स्वार्थ प्रशासनिक नियमों को बदल देते हैं। वे ऐसे अनेक पदों का आविष्कार करते हैं जिनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता नगण्य है, किन्तु केवल अपने समर्थकों एवं स्वजनों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए करदाताओं पर यह अनावश्यक भार डाला जाता है। फलतः संगठन में अनुशासन की गम्भीर समस्या उठ खड़ी होती है।

11. **नियन्त्रण की व्यवस्था-** विकासशील देशों में प्रशासन पर विविध तरीकों से नियन्त्रण स्थापित करके उत्तर दायी बनाये जाने की व्यवस्था है। यह नियन्त्रण तीन प्रकार का होता है: जनता का नियन्त्रण, विधायिका का नियन्त्रण और न्यायिक नियन्त्रण। इन देशों में लोक प्रशासन कानून पर आधारित होने से उसका कानूनी आधार है। प्रशासन अपने समस्त कार्यों को कानून की परिधि के आधार और उसके अन्तर्गत ही करता है।

12. **परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज का प्रभाव-** विभिन्न जाति, वंशों, नस्लों, वर्गों, धर्मों तथ सम्प्रदायों से युक्त विकासशील देशों का समाज परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज कहलाता है। इन समाजों में आज भी रूढ़ियों, आडम्बरों तथा परम्पराओं को सामाजिक कानूनों से अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

विकास प्रशासन के रूप में कार्यरत यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था 'सामाजिक परिवर्तन' के नियोजित प्रयास सफलतापूर्वक नहीं कर पाती है। लोक प्रशासन द्वारा संचालित विकास एवं कल्याण कार्यक्रम प्रायः जन सहभागिता के अभाव में निष्फल सिद्ध होते हैं।

13. यद्यपि विकासशील समाजों में 'आधुनिकीकरण' की ओर रूझान पाया जाता है किन्तु यह तार्किकता, ज्ञान के प्रसार तथा मानव कल्याण पर आधारित न होकर केवल पश्चिमी फैशन के अनुसरण तथा भौतिक संस्कृति से लगाव का उदाहरण भर होता है। यद्यपि प्रशासन तंत्र को इन देशों में 'परिवर्तन का वाहक' माना जाता है, किन्तु उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती है।

14. **प्रशासनिक सामंजस्य-** विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि समस्त इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण तत्व है, परन्तु विकासशील देशों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।

15. **भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन-** विदेशी शासकों के चंगुल से मुक्त हुए इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार तथा अकार्यकुशलता के कीचड़ में आकंठ(गले तक) डूबी हुई नजर आती है। राष्ट्रीय संसाधनों, राष्ट्रीय कानूनों तथा सत्ता का दुरुपयोग यहाँ आम बात है, क्योंकि इन देशों की सामाजिक व्यवस्था में राष्ट्रप्रेम का छद्म स्वरूप होता है। वस्तुतः न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक नागरिक स्वयं को राष्ट्र से पृथक् समझता है। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता से लगाया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों के लोक सेवक जिस मात्रा में अपने अधिकारों के लिए सचेत पाए जाते हैं, उसी मात्रा में कर्तव्यों के प्रति लापरवाह भी होते हैं। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार समाप्ति के यदा-कदा प्रयास होते रहते हैं। सामाजिक स्तर पर सभी चाहते हैं कि यह व्यवस्था सुधरे।

16. **परिवर्तन से परहेज-** विकासशील देशों में सामाजिक तथा प्रशासनिक, दोनों ही स्तरों पर यथास्थिति को बनाए रखने के प्रयास होते रहते हैं। जब कभी राज्य एवं अन्य संस्थाओं द्वारा सुधार कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं, तब उन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध किया जाता है। यही कारण है कि

विकासशील देशों की प्रशासनिक संरचनाऐं आज भी उपनिवेशवाद की विरासत को ढो रही हैं। परिवर्तन की कल्पनामात्र से समाज तथा लोकसेवक नकारात्मक रुख धारण कर लेते हैं। यद्यपि इन देशों में प्रशासनिक सुधार एवं नवाचार के प्रयास होते हैं किन्तु वे केवल कागजी अभ्यास सिद्ध होते हैं।

17. **जनसहयोग का अभाव-** विकासशील देशों का प्रशासन सामान्यतः विकास प्रशासन का पर्याय माना जाता है जो नियोजित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हेतु अनेक प्रकार के कल्याणकारी एवं विकासपरक कार्यक्रम संचालित करता है। स्पष्ट है विकास प्रशासन की सफलता जन सहभागिता पर निर्भर करती है किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि इन देशों में वे व्यक्ति प्रशासनिक कार्यों या विकास कार्यों में सहयोग नहीं करते हैं जिनके लिए विकास कार्य संचालित किए जाते हैं। वस्तुतः निरक्षरता, गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन, नौकरशाही का अहं, स्वार्थ भावनाएँ तथा कामचोरी की प्रवृत्ति विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता में कमी लाती है।

18. **नौकरशाही तथा उनके स्वार्थ-** विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि नौकरशाही के कर्मचारी संस्था के उद्देश्यों की अपेक्षा अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति को अधिक महत्व देते हैं। विकसित देशों में भी ऐसी इच्छाएँ होती हैं, परन्तु वे संस्था के लक्ष्यों को सर्वोपरि महत्व देते हैं। विकासशील देशों के अधिकारी-तन्त्र उत्पादनविमुख न होकर कुछ अन्य हैं। यहाँ पद के साथ जो महिमा, प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है वह उपलब्धि पर नहीं बल्कि पद पर आरोपित गरिमा के कारण है और इसी से उनके व्यवहार को समझा जा सकता है। अयोग्य व्यक्तियों को योग्यता का विचार न करके पदोन्नति मिल जाती है। इससे कार्मिक प्रथाएँ, अनुशासन एवं पदोन्नतियाँ प्रभावित होती हैं। वहाँ भ्रष्टाचार व्यापक रूप से फैला है। अधिकारी न केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करते हैं बल्कि अपनी बिरादरी के लोगों के स्वार्थों की भी रक्षा करते हैं। संक्षेप में विकासशील देशों में पक्षपात, भाई-भतीजावाद प्रशासनिक पद्धति का एक भाग है और यह बुराई समाज का एक अंग बन गयी है।

19. **लोक-प्रशासन का स्वरूप-** लोक प्रशासन का स्वरूप विकासोन्मुख दिखाई देता है। लेकिन भीतर ही भीतर इसमें काम करने वाली नौकरशाही की कार्यशैली कठोर, अहंकारग्रस्त तथा असंवेदनशील होती है।

20. **सेवीवर्ग, प्रशासन पर विकास कार्यों का भार-** विकासशील देशों में देश के विकास का सम्पूर्ण भार प्रशासन अर्थात् सेवी वर्ग पर ही होता है क्योंकि वे ही विकास की नीतियों को क्रियान्वित करते हैं।

21. **जन आकांक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण-** इन देशों में प्रशासन अथवा नौकरशाही जन आकांक्षाओं के प्रति एक सजग दृष्टिकोण रखती है।

22. **उत्प्रेरणा का अभाव-** विकासशील देशों में लोक प्रशासन या सेवीवर्ग में उत्प्रेरणा का अभाव पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे पूर्ण सक्रियता के साथ अपने उत्तर दायित्वों का निर्वहन नहीं कर पाते हैं।

5.6 विकासशील देशों के प्रशासन की समस्याऐं

इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त भी विकासशील देशों के प्रशासन में कुछ समस्याऐं ऐसी होती हैं जो इन देशों के प्रशासन की विशेषताओं के तौर पर ही देखी जा सकती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. सामान्यतः उपनिवेशवाद के शिकार रहे इन देशों का प्रशासन तंत्र विदेशी शासक राष्ट्र के प्रतिमानों पर आधारित माना जाता है, अतः उसमें स्थानीय मूल्यों, संस्कृति तथा अपनत्व का अभाव रहता है।
2. इन देशों में प्रशासनिक तंत्र में जड़ता व्याप्त रहती है। समयानुकूल सुधारों तथा परिवर्तनों का विरोध होता है, अतः प्रशासनिक पिछड़ापन व्याप्त रहता है।
3. राजनैतिक मंत्री तथा प्रशासनिक सचिव के मध्य अहं तथा अधिकार क्षेत्र का संघर्ष पाया जाता है।
4. प्रशासनिक विभागों, संगठनों तथा कार्मिकों की संख्या का निरन्तर विस्तार होता रहता है, अतः अनुपयोगी प्रशासन तंत्र का बढ़ता आकार राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि करती है।
5. लोककल्याणकारी राज्य के लक्ष्यों की सम्पूर्ति हेतु सरकार द्वारा नित्य नए विकास एवं कल्याण कार्यक्रम निरूपित किए जाते हैं, किन्तु इनका निष्पादन बहुत शोचनीय रहता है क्योंकि उत्तर दायित्व एवं प्रतिबद्धता की भावना का अभाव है।
6. विदेशी सहायता(अनुदान या ऋण) कार्यक्रम पर आधारित इन देशों की विकास परियोजनाएँ तथा प्रशासन बहुधा विदेशी अभिकरणों की शर्तों का पालन करने को विवश रहते हैं। अतः न चाहते हुए भी अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ता है।
7. हड़ताल, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, लापरवाही तथा रिश्वतखोरी इन देशों की प्रमुख समस्याऐं बनी हुई हैं।
8. लोक प्रशासन में होने वाला व्यय अनुत्पादक अधिक होता है। सामान्यतः आधा बजट तो कार्मिकों के वेतन-भत्तों पर ही व्यय हो जाता है।
9. नौकरशाही की निरंकुश कार्यप्रणाली इन देशों के समाज की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती है। अतः लॉर्ड हीवर्ट के शब्दों में नौकरशाही 'नवीन निरंकुशता' के रूप में इन देशों का शासन संचालित करती है।

10. समाज वैज्ञानिकों तथा मनोविश्लेषकों का निष्कर्ष है कि विकासशील राष्ट्रों का भाग्यवादी एवं पिछड़ा हुआ समाज अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होता है। अतः प्रशासनिक शोषण भी जारी रहता है।

11. प्रशासनिक कुशलता तथा राष्ट्रीय विकास के लिये बने कानून बहुत शिथिल तथा अपूर्ण हैं। अतः न्यायपालिका भी मुकदमों के बोझ से पीड़ित रहती है।

12. राजनैतिक अस्थिरता तथा जन असन्तोष के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता निम्न स्तरीय बनी रहती है।

13. प्रशासनिक नियंत्रण की व्यवस्था पूर्ण प्रभावी नहीं होती है। अतः संसाधनों का दुरुपयोग यथावत् जारी रहता है।

14. मानव संसाधन की तकनीकी तथा व्यावहारिक योग्यताएँ निम्न स्तरीय पाई जाती हैं।

15. विशेषज्ञों को नीति-निर्माण एवं निर्णयन में कम महत्व मिलने के कारण सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद बना रहता है।

16. प्रशासनिक संगठनों तथा प्रक्रियाओं में अनावश्यक रूप से औपचारिकताओं की भरमार रहती है।

17. लोक प्रशासन की कार्यशैली में लैंगिक भेद, जातीय वैमनस्य तथा वर्गीय असमानता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

18. लोक प्रशासन नित्य नए कानून, नीति, संगठन तथा समितियाँ बनाता है, किन्तु उनकी प्रभावशीलता शून्य रहती है।

19. लोक सेवाओं में संविधान, कानून तथ जनता के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव पाया जाता है।

20. नौकरशाही या लोक सेवाओं का आकार निरन्तर बढ़ता रहता है, किन्तु कुशलता उसी अनुपात में वृद्धि नहीं करती है।

21. भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन-भत्ते तथा पेन्शन इत्यादि कार्मिक प्रकरण सदैव विवादग्रस्त बने रहते हैं।

22. स्वयं लोक सेवक तथा आम जनता प्रशासनिक निर्णयों के विरूद्ध बड़ी संख्या में वाद दायर करती है।

23. सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला तथा प्रशिक्षण इत्यादि की महज औपचारिकताएँ पूरी की जाती हैं। अन्तिम निष्कर्ष अत्यन्त निराशाजनक होता है।

24. राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग आम जनता से कहीं अधिक नौकरशाह करते हैं। प्रशासनिक विभागों का आधे से अधिक बजट केवल वेतन-भत्तों पर व्यय होता है।

25. प्रत्येक कार्यों में नियम, कानूनों तथा प्रक्रियाओं की अनावश्यक औपचारिकताएँ पूर्ण की जाती हैं, चाहे कार्य कितना ही छोटा या आपातकालीन परिस्थिति से सम्बद्ध क्यों न हो।

26. प्रशासनिक संगठनों के आन्तरिक कार्यकरण में जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, लिंग तथा नस्ल इत्यादि पर आधारित भेदभाव एवं संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।

27. अनुसंधान, नवाचार तथा प्रशासनिक सुधारों के नाम पर महज खानापूर्ति की जाती है। किसी भी स्तर पर पहल क्षमता तथा नेतृत्व का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

28. अति महत्वाकांक्षी, कर्मठ, योग्य तथा प्रतिबद्ध कार्मिकों को प्रायः निराशा के दौर से गुजरना पड़ता है। अतः इन देशों की प्रतिभाएँ विकसित राष्ट्रों की ओर पलायन कर जाती हैं।

29. प्रशासनिक गोपनीयता के कारण पारदर्शिता, सूचना का अधिकार तथा लोक जवाबदेयता सुनिश्चित नहीं हो पाती है।

30. शिकायत निवारण व्यवस्था प्रायः निष्क्रिय तथा स्वार्थी तत्वों से युक्त होने के कारण उपहास एवं अविश्वास की शिकार रहती है।

31. प्रत्येक कार्य को उलझाने तथा दूसरों पर टालने के लिए 'समिति व्यवस्था' के दुरुपयोग की यहाँ सामान्य परम्परा होती है।

32. आन्तरिक और बाहरी आक्रमण से सुरक्षा और व्यवस्था की स्थापना।

33. विभिन्नता में राष्ट्रीय एकता बनाये रखना।

5.7 विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष चुनौतियाँ

इन समस्याओं के अतिरिक्त प्रशासन के समक्ष कुछ ऐसी चुनौतियाँ विद्यमान होती हैं, जिसके लिये प्रशासन को निरन्तर प्रयासरत रहना होता है-

1. केन्द्रीय, राज्यीय और स्थानीय सरकारों के विभिन्न इकाइयों के बीच सामंजस्य बनाये रखना;
2. परम्परागत सामाजिक-आर्थिक निहित स्वार्थों को समाप्त करना;
3. मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक सुरक्षा को प्रोत्साहन देना;
4. राष्ट्रीय बचत एवं अन्य वित्तीय संसाधनों को गतिशील बनाना;
5. विनियोग का बुद्धिपूर्ण आवंटन तथा सुविधाओं एवं सेवाओं का कुशल प्रबन्ध;
6. विकास प्रक्रिया में जन-सहभागिता को सक्रिय बनाना;
7. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में सम्मानजनक स्थिति सुनिश्चित करना;
8. आधुनिक तकनीक और ज्ञान को प्राप्त करना तथा विकास करने की प्रक्रिया को सक्रिय बनाना; आदि।

इस प्रकार पिछले अध्याय व इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप विकसित व विकासशील दोनों प्रकार के देशों की विशेषताओं को समझ गये होंगे। इन दोनों अवधारणाओं को और स्पष्ट करने के लिये आइये इनके बीच अन्तर करके इनको और अधिक स्पष्टता से जाना जाये।

5.8 विकसित व विकासशील देशों के लोक प्रशासन और नौकरशाही में अन्तर

विकसित राष्ट्र	विकासशील राष्ट्र
इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन स्थायित्व प्राप्त, प्रतिबद्ध एवं सुचारू है।	इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन यहाँ के समाज और राजनीति की भाँति संक्रमण काल से गुजर रहा है तथा कम प्रतिबद्ध है।
यह विकसित राष्ट्रों के स्वयं के इतिहास, जनाकांक्षा तथा परिपक्वता का परिचायक है।	उपनिवेशवाद नहीं का शिकार है तथा जनाकांक्षाओं के अनुरूप है।
सांस्कृतिक भिन्नताएँ कम हैं अतः एकता प्रयासों में बांधा नहीं आती है।	विकासशील देशों में सांस्कृतिक भिन्नताऐं अधिक हैं तथा संघर्ष बना रहता है।
तकनीकी दृष्टि से सक्षम तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था है।	कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है तथा तकनीकी क्षमताएँ अपूर्ण हैं।
मानवीय, प्राकृतिक तथा मशीनी संसाधनों के मध्य सामंजस्य होता है।	सभी प्रकार के संसाधन होते हुए भी उनका एकीकृत सदुपयोग नहीं हो पाता है।
नीति एवं क्रियान्वयन में पर्याप्त समन्वय होता है।	नीति, कार्यक्रम तथा योजना के निर्माण में जितने कुशल हैं उतने ही अकुशल इनके क्रियान्वयन में हैं।
प्रशासन स्वयं को समाज का एक भाग मानता है।	प्रशासन स्वयं को समाज से उच्च मानता है।
जनसहभागिता एवं सहयोग मिलता है।	विकास कार्यों में जनसहयोग नहीं मिलता है।
राष्ट्रीय मुद्दों पर विभिन्न राजनीतिक दलों में सहमति होती है।	दलगत राजनीतिक स्वार्थों के आगे राष्ट्र के मुद्दे गौण हो जाते हैं।
लोक प्रशासन की दैनिक गतिविधियों में राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता है।	प्रत्येक स्तर पर राजनीतिक दबाव एवं स्वार्थ अभिभावी रहते हैं।
सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रायः आवश्यकतानुसार	सत्ता का विकेन्द्रीकरण सैद्धान्तिक रूप से दिखता है,

होता है।	वास्तव में होता नहीं है।
कानूनों का पालन यहाँ का राष्ट्रीय चरित्र है।	यहाँ कानूनों की भरमार होते हुए भी उनका पालन करवाना दुष्कर है।
मंत्रालयों तथा प्रशासनिक संस्थाओं इत्यादि का विस्तार नियंत्रित रहता है।	विकासशील देशों में अनियंत्रित ढंग से प्रशासनिक संस्थाएँ गठित होती रहती हैं।
नियोजन में सरकारी भूमि केवल निदेशात्मक (Indicative) रहती है।	सम्पूर्ण नियोजन एवं विकास कार्यों में सरकार की भूमिका पूर्णरूपेण रहती है।
प्रशासन पर नियन्त्रणकारी संस्थाएँ प्रभावी सिद्ध होती हैं।	नियंत्रणकारी संस्थाएँ अल्पप्रभावी या निष्प्रभावी सिद्ध होती हैं।
लोक प्रशासन में 'कार्य की संस्कृति' पायी जाती है।	'प्रशासनिक कार्य संस्कृति' का सर्वथा अभाव रहता है।
आवश्यकतानुसार सुधार एवं परिवर्तन किए जा सकते हैं।	सुधारों तथा परिवर्तनों के विरोध का माहौल बना रहता है।
यहाँ की लोक सेवाऐं मुख्यतः सम्बन्धित देश की ऐतिहासिक सांस्कृतिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं।	यहाँ की लोक सेवाऐं अधिकांशतः 15वीं सदी के पश्चात के उपनिवेशवाद का परिणाम हैं।
परम्परा, जाति, नस्ल, बहुभाषा तथा रूढ़ियों का प्रभाव यहाँ की लोक सेवा पर न के बराबर है।	विकासशील देशों का समाज रूढ़िवादी, शिक्षित तथा कृषकों का है अतः लोक सेवा पर जाति, भाषा, परम्परा का प्रभाव है।
लोक सेवकों में उत्तर दायित्व की भावना है।	लोक सेवक प्रायः कामचोर तथा अहं भावना से पीड़ित होते हैं।
लोक सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा सरल होता है जिसमें वेतनमानों की संख्या कम होती है।	वर्गीकरण बहुत उलझा हुआ होता है। वेतनमानों की संख्या अधिक तथा कार्मिकों में वर्गभेद रहता है।
लोक सेवाओं में विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व दिया जाता है।	सामान्यज्ञ अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है।
लोक सेवाओं के कार्य निष्पादन मूल्यांकन व्यवस्था	कार्य निष्पादन मूल्यांकन या तो होता नहीं अथवा

सुदृढ़ होती है।	केवल औपचारिकता की पूर्ति भी होता है।
लोक सेवकों से अधिक वेतनभत्ते-, निजी क्षेत्र में होते हैं अतः लोक सेवाओं की ओर अधिक झुकाव नहीं होता है।	लोक सेवाओं में अधिक वेतनभत्ते होने से निजी क्षेत्र - को दोयम स्थान दिया जाता है।
पदोन्नति प्रायः योग्यता एवं वरिष्ठता पर आधारित है।	अधिकांशतः वरिष्ठता को ही पदोन्नति का आधार माना जाता है।
देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का 07 से 10 प्रतिशत हिस्सा लोक सेवाओं में कार्यरत है।	कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि करता है। लोक सेवाओं में मात्र 02 से 04 प्रतिशत व्यक्ति (कार्यशील नागरिक) रोजगार प्राप्त है।
लोक सेवकों को अनेक प्रकार की अभिप्रेरणाएँ तथा वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध हैं।	वेतन की अधिकता तथा पदोन्नति ही मुख्य अभिप्रेरणाएँ हैं।
अनुसंधान तथा नवाचारों को स्थान दिया जाता है।	कार्मिक प्रशासन में अनुसंधान, परिवर्तन तथा नवाचार को महत्व नहीं दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकासशील देशों के कई नामों में से एक नाम है?
2. तीसरी दुनिया नाम शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब किया गया था?
3. चौथी दुनिया शब्द का प्रयोग किन देशों के लिए किया जाता है?

5.9 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप ये जान गये होंगे कि राजनीतिक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव समाज या दुनिया के राष्ट्र दो ध्रुवों में विभक्त है- विकसित एवं विकासशील। विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ सामान्यतः तटस्थ या गुटनिरपेक्ष प्रकृति की रही हैं। औद्योगिक दृष्टि से विश्व के विकसित देशों की तुलना में इनका आर्थिक एवं राजनीतिक विकास निम्न स्तरीय होता है। इन देशों का समाज भी बहुत सी विविधताओं से युक्त होता है। अधिकांश विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं एवं विकसित देशों की प्रशासनिक प्रणालियों की विशेषताओं का विकासशील देशों में अभाव है। लेकिन विकसित देशों की सभी विशेषताऐं विकासशील देशों में समाहित करना व्यर्थ एवं असम्भव है। परन्तु विकासशील देशों को ये प्रयास जरूर करना चाहिये कि विकसित देशों की कुछ

आवश्यक एवं उपयोगी पद्धतियों को लकर अपनी परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार उन्हें अपना ले। विकासशील देशों को अपनी स्वयं की प्रशासन की पद्धति को विकसति करने की आवश्यकता है जिसमें बेईमानी, लालफीताशाही, पक्षपात आदि बुराइयाँ ना हो एवं प्रशासन अपने निर्णय लेने में निष्पक्ष व सक्षम हो।

5.10 शब्दावली

प्रासंगिकता- उपयुक्तता या अनुकूलता, परिदृश्य- चारों ओर दिखने वाला दृश्य, साम्यवादी- साम्यवाद का पक्षधर या समर्थक, उपनिवेश- अन्य स्थान से आये हुए लोगों की बस्ती, प्राविधिकता- किसी कार्य की विशिष्ट प्रायोगिक तथा व्यवहारिक।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उद्-गामी, **2.** 1961, **3.** अति-निर्धन देशों के लिए

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2013

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
2. एम0पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब मण्डल, इलाहाबाद, 2015

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकासशील देशों में लोक प्रशासन की प्रमुख समस्याऐं क्या हैं? वर्णन कीजिये।
2. विकासशील देशों से आपका क्या अभिप्राय है? विकासशील देशों की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई- 6 भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि

6.3 ब्रिटिश काल में प्रशासन का विकास

6.4 भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे के लिए उत्तर दायी कारक

6.5 भारतीय प्रशासनकी विशेषताऐं

6.6 सारांश

6.5 शब्दावली

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था पर उस देश की संवैधानिक व्यवस्था का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। भारतीय प्रशासन पर भी यह बात लागू होती है। गणतांत्रिक एवं प्रजातान्त्रिक, शासन व्यवस्था, संसदीय एवं संघीय व्यवस्थाओं का मिश्रण, कल्याणकारी राज्य की स्थापना, व्यक्तिगत एवं सामाजिक न्याय के मध्य समन्वय, स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायिक व्यवस्था, धर्म निरपेक्षता, योग्यता के आधार पर व्यवस्था आदि विशेषताएँ भारत की सांविधानिक व्यवस्था के स्वरूप को प्रकट करती है। इनमें उन सामान्य सिद्धान्तों का भी आभास मिलता है, जिनके अन्तर्गत भारतीय प्रशासन को अपना कार्य संचालन करना होता है। भारतीय संविधानिक व्यवस्था में देश के प्रशासन की संगठनात्मक संरचना ने उसके उद्देश्यों, कार्यों वातावरण आदि को व्यापक रूप से निर्धारित एवं प्रभावित किया है। संविधान के अन्तर्गत लोक प्रशासन के तीनों स्तरों पर देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का भार डाला गया है। ये तीनों स्तर केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय हैं। संविधान द्वारा भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है। इसलिए भारत के सम्पूर्ण प्रशासनिक यन्त्र का सर्वोपरि लक्ष्य लोककल्याण है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि को जानेंगे।
- ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास से अवगत हो पाओगे।
- भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान पायेंगे।

6.2 भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि

लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितनी प्राचीन हमारी सभ्यता है। यद्यपि स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में इसका विकास 127 वर्षों का है, लेकिन प्राचीन काल से ही राजतन्त्रीय व्यवस्थाओं में सरकारी कार्यों के संचालन में इसका प्रयोग होता रहा है। प्राचीन भारत की शासन-पद्धति का इतिहास वैदिक काल से प्रारम्भ होकर सामान्यजतः मुगल शासन की स्थापना तक फैला हुआ है। भारतीय लोक-प्रशासन के विकास की लम्बी यात्रा में जहाँ अनेक प्रशासनिक संगठन बने और बिगड़े वहीं इसकी दो विशेषताऐं निरन्तर कायम रहीं - प्रथम, प्रशासनिक संगठन की संरचना में प्रारम्भिक इकाई के रूप में ग्राम का महत्व; और द्वितीय, प्रशासनिक संगठन में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत का वर्तमान प्रशासन अपने अतीत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विकसित प्रतिरूप है। अतः परम्परागत लोक-प्रशासन की नींव पर आज के प्रशासन का महल खड़ा हुआ है। बहुत पहले से एवं निरन्तर रूप से यह सिलसिला चलता आ रहा है। प्रशासनिक प्रक्रिया के इस सिलसिले को संस्थागत रूप अंग्रेजों ने दिया। भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जानने से पहले आइये इसके विकास के विभिन्न चरणों अर्थात् विभिन्न कालों का विस्तार से अध्ययन कर लें जिससे इसकी विशेषताओं को समझने में सहायता मिले।

प्रशासनिक संस्थाऐं प्राचीन भारत से किसी ना किसी रूप में विद्यमान रहीं। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि ईसा से लगभग 5,000 वर्ष पूर्व की सिन्धु घाटी सभ्यता अत्यन्त विकसित थी एवं वहाँ प्रशासन का रूप अवश्य ही सुविकसित रहा होगा। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के अवशेषों से भी ज्ञात होता है कि उस समय अनेक स्वतन्त्र समुदायों की अपेक्षा एक केन्द्रीयकृत राज्य था। 3000 ई0 पूर्व में यहाँ नगरपालिकाएँ सुस्थापित हो चुकी थीं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत में लोक प्रशासन का विकास अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है, चाहे इसका सुव्यवस्थित एवं निश्चित स्वरूप एवं विवरण उपलब्ध न हो। भारत में केन्द्रीय प्रशासन के विकास को

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से निम्नलिखित कारणों में विभक्त किया जा सकता है- प्राचीन कालीन प्रशासन (Ancient Period Administration), कौटिल्य युगीन प्रशासन (Kautilya Period Administration), गुप्तकालीन प्रशासन (Guptas Period Administration), राजपूत कालीन प्रशासन (Rajputs Period Administration), सल्तनत कालीन प्रशासन (Sulthants Period Administration), मुगल कालीन प्रशासन (Mughal Period Administration), ब्रिटिश कालीन प्रशासन (British PeriodAdministration)।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का पहला काल प्राचीन कालीन प्रशासन कहा जा सकता है। खुदाई में प्राप्त अवशेषों से विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा के साम्राज्य व्यवस्थित थे। इस समय शासन की बागडोर पुरोहितों के हाथों में थी वे सुमेर एवं अकाल के पुरोहित राजाओं के समान थे। राज्य का स्वरूप केन्द्रीयकृत था एवं नगरपालिका शासन से लोग परिचित थे। इस काल के शासन व्यवस्था को हण्टर (Hunter) ने लोकतन्त्रात्मक बताया।

ऋग्वेदिक काल में भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। राज्य एवं राजा को जन-कल्याण-साधक माना जाता था। प्रजा धर्म के विरूद्ध कार्य करने वाले राजा एवं पदाधिकारी पद्च्युत किए जा सकते थे। विभिन्न मन्त्रियों के परामर्श से राजा शासन चलाता था। मन्त्रियों में सबसे मुख्य स्थान पुरोहित का था। राजदरबार में गाँव वासियों का प्रतिनिधित्व होता था। ग्रामीण नामक पदाधिकारी गाँव का प्रतिनिधित्व करते थे। सभा एवं समिति नामक जनसंस्थाएँ भी विद्यमान थीं। समिति सम्पूर्ण प्रजा की संस्था थी जो राजा का निर्वाचन करती थी। सभा समिति से छोटी संस्था थी जिसकी सहायता से राजा दैनिक राज्य कार्य करता था। इस संस्था के माध्यम से ही वह अभियोगों का नियन्त्रण करता था। इन दोनों संस्थाओं का राजा के ऊपर नियन्त्रण था जो आगे चल कर शिथिल हो गया।

उत्तर -वैदिक काल में राजा का पद वंशानुगत हो गया। इस काल में राजा निरंकुश नहीं था। हालाँकि वह स्वच्छन्द होता था। इस काल में राजा का निर्वाचन होता था उसके उत्तराधिकारी पर राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों का प्रभाव एवं नियन्त्रण रहता था। राजा शासन के संचालन प्रतिष्ठित मन्त्रियों की परिषद् की सहायता लेता था।

महाकाव्य काल में दो तरह की शासन व्यवस्थाएँ पाई जाती थीं। इस समय अधिकांश राज्य राजतन्त्रात्मक थे। लेकिन कुछ गणतन्त्रात्मक राज्य भी पाए जाते थे। राजा पर सामन्तों, सैनिकों, नेताओं, उच्च कुलीनों एवं नेताओं आदि का नियन्त्रण एवं प्रभाव होता था। फलतः राजा निरंकुश होने का प्रयास नहीं करता था। राजा की सहायता एवं पथ-प्रदर्शन के हेतु केन्द्रीय प्रशासन में दो संस्थाएँ थीं।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का दूसरा काल कौटिल्य युगीन प्रशासन कहा जा सकता है। मौर्य काल में राजा ही साम्राज्य का प्रमुख होता था। राजा के हाथों में कार्यकारी, न्यायिक एवं विधायी शक्तियाँ निहित होती थीं। इस काल के प्रमुख राजाओं में चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम लिया जा सकता है।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टिसे भारतीय प्रशासन का तीसरा स्वरूप काल गुप्तकालीन प्रशासन कहा जाता था। इस समय का साम्राज्य एवं प्रशासन मौर्यकाल के समान केन्द्रीयकृत एवं संगठित नहीं था। गुप्त साम्राज्य का स्वरूप बहुत हद तक मण्डल व्यवस्था पर आधारित था। इस समय बहुत से सामान्त एवं राजा गुप्त शासकों की अधीनता में साम्राज्य के विभिन्न भागों में शासन करते थे। गुप्तकाल में एकतन्त्रीय शासन प्रणाली प्रचलित थी। राजा राज्य का सर्वोच्च होता था एवं राज्य की अन्तिम सत्ता उसके हाथ में होती थी। मौर्यकाल की भाँति इस काल में भी मन्त्रिपरिषद् की प्रथा थी, लेकिन उसकी रचना एवं कार्य के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

एतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का चौथा काल राजपूतकालीन प्रशासन कहा जा सकता है। इस काल में गणतन्त्रों के समाप्त होने से राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का बोल-बाला था। राजा को मन्त्रिमण्डल द्वारा परामर्श दिया जाता था। मन्त्री अपने-अपने विभागों का प्रबन्ध करते थे। मन्त्री का पद वंशानुगत था। केन्द्रीय शासन सुगठित नहीं था क्योंकि प्रान्तीय शासन पर उन सामन्तों का ही अधिकार होता था जो प्रायः स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे। जागीर प्रथा का प्रचलन हो जाने से सामन्तों के अधिकारों में बहुत वृद्धि हो गई।

एतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का पाँचवा काल सल्तनत कालीन प्रशासन कहा जा सकता है। सल्तनत काल (1206-1526 ई0) का प्रशासन मूलतः सैनिक प्रशासन था। दिल्ली के सुल्तान निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक थे, लेकिन फिर भी शासन का सम्पूर्ण कार्य वे अकेले नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्हें अमीरों एवं सरदारों के सक्रिय समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता था। दिल्ली के सुल्तानों को अपने शासन के प्रारम्भ से ही अधिकारियों की संगठित एवं व्यवस्थित श्रृंखलायुक्त एक शासनतन्त्र की व्यवस्था करनी पड़ी। ये अधिकारी किसी प्रकार से भी सुल्तानों के अधिकारों को प्रतिबन्धित नहीं करते थे, बल्कि सुल्तानों की आज्ञानुसार अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते थे। सुल्तान अपने इस अनुभवों एवं योग्य अधिकारियों के परामर्श से कुछ-न-कुछ मार्ग-दर्शन प्राप्त करते थे। नीतियों का निर्धारण करते समय भी उनके परामर्श को ध्यान में रखा जाता था। सुल्तानों के मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी। एक मन्त्री के अधीन प्रायः एक से अधिक विभाग होते थे। सबसे बड़े मन्त्री को वजीर कहा जाता था। उसका पद प्रधानमन्त्री के समान होता था एवं उसकी स्थिति राजा एवं प्रजा के बीच सम्पर्क कड़ी सी थी। वह सरकार की सम्पूर्ण मशीनरी का अध्यक्ष होता था।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का छठा काल मुगलकालीन प्रशासन कहा जा सकता है। भारतीय प्रशासन में नए क्षितिज का आगमन इस शासन की स्थापना के साथ हुआ। मुगल शासकों ने अपने साम्राज्यों की सुदृढ़ता के लिए प्रशासन को सुव्यवस्थित बनाते हुए उसे केन्द्रीकृत स्वरूप प्रदान किया। इस काल में शासन व्यवस्था का प्रधान या सर्वेसर्वा सम्राट ही होता था। वह सम्पूर्ण शासन एवं राज्य का एक धम्म स्वामी होता था। शासन पूर्णतः केन्द्रीभूत था, लेकिन प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से प्रान्तीय एवं स्थानीय शासन व्यवस्था भी प्रचलित थी। केन्द्रीय शासन में सम्राट एवं मन्त्रीगणों का समावेश होता था। अक्सर ही मुगल सम्राट निरंकुश होते थे। फलतः मन्त्रियों का महत्व कुछ भी नहीं होता था। प्रजा के हितों की चिन्ता करना, न करना राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। मुगल सम्राटों में अकबर ने प्रजा के हितों को महत्व प्रदान की लेकिन औरंगजेब ने प्रजा के हितों की उपेक्षा की। मुगल सम्राट सर्वोच्च सेनापति एवं न्यायाधीश होते थे। उनके शब्दों को कानून माना जाता था। उन पर केवल विद्रोह की आशंका ही अंकुश लगाती थी। सम्राटों की शक्ति का आधार सेना होती थी। अतः वे अपने प्रभावशाली सरदारों एवं सेनापतियों के विचारों का ही आदर करते थे। वे अनमत से भी डरते थे। प्रशासन में सहायता के लिए मुगल सम्राट एक मन्त्री भी नियुक्त करते थे। मन्त्री केवल सलाहकार होते थे। उनकी सलाह मानना या न मानना सम्राटों की अपनी इच्छा पर निर्भर करता था। मन्त्री का यह कर्तव्य होता था कि सम्राट के आदेशों का पालन हो एवं उनके अनुसार शासन चलाया जाए। अर्थात् उनकी इच्छा की कोई महत्व नहीं थी।

भारतीय प्रशासन का ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से सातवाँ काल ब्रिटिश कालीन प्रशासन(British Period Administration) कहा जा सकता है। इस काल में भारतीय प्रशासन के विकास को निम्नलिखित चरणों में विभक्त कर देखा जा सकता है- 1600 से 1765 ई0 तक(अंग्रेजों का भारत आगमन), 1765 से 1858 ई0 तक (ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना), 1858 से 1919 ई0 तक (कम्पनी शासन का अन्त), 1919 से 1947 ई0 तक (स्वशासन के बढ़ते चरण)।

1. **1600 से 1765 तक (अंग्रेजों का भारत आगमन)-** ब्रिटिश शासन का इतिहास काल भारत में सन् 1600 ई0 से प्रारम्भ होता है। उस समय भारत की अपार सम्पदा की चर्चा भारत में हाती थी। धन प्राप्त करने एवं समुद्री यात्राओं की उमंग ने अंग्रेजों को भारत की ओर आकृष्ट किया। सन् 1600 में एक राजलेख (चार्टर) द्वारा महारानी एलिजाबेथ ने एक कम्पनी की स्थापना की जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी कहलाई। इस राजलेख द्वारा कम्पनी को विदेशों में व्यापार करने की स्वीकृति प्रदान की गई। भारत में मुगल बादशाह जहाँगीर से अनुमति प्राप्त करके ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सूरत में अपना प्रधान व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। सन् 1725 ई0 के राजलेख द्वारा कलकत्ता-बम्बई-मद्रास प्रेसीडेन्सियों के राज्यपाल

एवं उसकी परिषद् को कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही इस राजलेख ने भारत स्थित कम्पनी की सरकार सपरिषद् गर्वनर जनरल को नियम, उपनियम एवं अध्यादेश पारित करने का अधिकार प्रदान किया। 1757 ई0 में अंग्रेज मुगल देशज के अन्तिम नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराकर बंगाल प्रान्त के वास्तविक शासन बन गये। प्लासी की जीत से ही वास्तविकता में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ी। सन् 1765 ई0 में मुगल बादशाह आजम ने कम्पनी को बंगाल, बिहार वं उड़ीसा का दीवान बना दिया। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों की माल गुजारी वसूलने से लेकर दीवानी न्याय प्रशासन तक का उत्तर दायित्व कम्पनी पर आ गया।

2. **1765 से 1858 तक (ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना)-** 1765 ई0 से 1858 ई0 तक ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा का वास्तविक प्रशासन कम्पनी के हाथों में आ जाने से कम्पनी के अधिकारी स्वच्छन्द हो गए। कम्पनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था जिसके कारण वे अनैतिक कारणों से धन एकत्रित करने लगते। ब्रिटिश सरकार एवं राजनीतिज्ञों को कम्पनी के कुप्रशासन का आभास हो गया। ब्रिटिश संसद में सन् 1773 ई0 में रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित करके कम्पनी ने प्रशासन में अनेक परिवर्तन किए। इस एक्ट के द्वारा समस्त ब्रिटिश भारत के लिये एक अखिल भारतीय सरकार की स्थापना की गई। इस व्यवस्था में भारत सरकार के प्रधान के रूप में गर्वनर जनरल एवं चार सदस्यीय परिषद् की स्थापना की गई। कम्पनी के प्रबन्ध में सुधार न होने पर ब्रिटिश संसद ने कम्पनी पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए सन् 1784 में पिट्स इडिया एक्ट पारित किया। इस एक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापारिक एवं राजनीतिक कार्यों को पृथक् कर दिया गया। सन् 1793 में चार्टर एक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापार को 20 वर्ष के अवधि के लिए बढ़ा दिया गया। सन् 1813 ई0 में चार्टर एक्ट द्वारा कम्पनी के सर्वाधिकार को समाप्त करके समस्त ब्रिटिश लोगों के लिये भारत में व्यापार के द्वार खोल दिये गये। सन् 1833 के चार्टर द्वारा बंगाल के गर्वनर जनरल को सम्पूर्ण भारत का गर्वनर जनरल बना दिया गया। सन् 1853 में चार्टर का निर्माण करके इसके तहत भारत के लिये कानून बनना था। भारतीय विधान परिषद् में क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस परिषद् को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। लेकिन इसमें अन्तिम स्वीकृति गर्वनर की थी।

3. **1858 से 1919 तक (कम्पनी शासन का अन्त)-** सन् 1958 ई0से 1919 ई0के दौरान कम्पनी शासन का अन्त हुआ। सन् 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन एवं कम्पनी की अप्रभावी एवं अकुशल कार्य पद्धति के कारण सन् 1858 में एक्ट को 'दी बेटर गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया' नाम से पारित करके

भारत में शासन को कम्पनी से हस्तान्तरित करके ब्रिटिश सम्राट को सौंप दिया गया। गर्वनर जनरल को अब वायसराय के नाम से जाना जाने लगा। भारतीयों की देख-रेख के लिए राज्य सचिव की नियुक्ति की गई जो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सदस्य होता था। राज्य सचिव के कार्यों में सहायता करके एवं उसके नियन्त्रण रखने के लिए 15 सदस्यीय 'भारत परिषद्' की स्थापना की गई। इस परिषद् में भारतीयों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। यह राज्य सचिव ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तर दायी था। सन् 1861 में इस एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए भारत परिषद् अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा अल्प संख्या में लोक प्रतिनिधित्व का श्रीगणेश हुआ। सन् 1885 ई0में सर ए0ओ0 ह्यूम द्वारा 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का गठन किया गया। इसका उद्देश्य भारतीयों को प्रशासन एवं विधि निर्माण में अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना था। सन् 1892 में स्थिति में सुधार के लिए भारतीय अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा भारतीय विधान परिषद् में शासकीय सदस्यों का बहुमत रखा गया लेकिन गैर-सरकारी सदस्य बंगाल चैम्बर ऑफ कॉमर्स एवं प्रान्तीय परिषद् द्वारा नाम निर्देशित होने लगा। नवम्बर, 1906 में लार्ड मिन्टो को भारत का वायसराय बनाया गया। जॉन मार्ले को भारत का राज्य सचिव नियुक्त किया गया। मार्ले उदारवादी विचारों के थे एवं भारतीय प्रशासन में सुधारों के समर्थक थे। मिन्टों भी मार्ले के विचारों से सहमत थे। इनके द्वारा किए गए सुधारों को मार्ले-मिन्टो सुधार के नाम से जाना जाता है। मार्ले-मिन्टो सुधार भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 में लागू किये गये। केन्द्र की विधान परिषद् में निर्वाचन का समावेश हुआ, लेकिन शासकीय बहुमत बरकरार रहा। प्रान्तीय विधान परिषद् के आकार में वृद्धि की गई एवं उसमें कुछ गैर-सरकारी सदस्यों को शामिल किया गया जिससे शासकीय बहुमत समाप्त हो गया। इस अधिनियम द्वारा विधान परिषद् के विचार-विमर्श सम्बन्धी कार्यों में वृद्धि की गई। प्रथम बार मुस्लिम समुदाय के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व का उपबन्ध किया गया। इसी से भारत में पृथक्तावाद का बीजारोपण हुआ। हालाँकि मार्ले-मिन्टो सुधार उपयोगी था, लेकिन वह भारतीयों की आकांक्षाओं को पूर्ण न कर सका।

4. **1919 से 1947 तक (स्वशासन के बढ़ते चरण)-** सन् 1919 से ई0 तक के काल को स्वशासन के बढ़ते चरण का काल कहा जा सकता है। सन् 1917 ई0में भारत के नए सचिव मोंटेग्यू ने भारत में अधिक सुधारों का समर्थन किया। इसके लिए मोंटेग्यू ने ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारत का भ्रमण किया एवं भारत की प्रशासनिक एवं राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन किया। सन् 1918 ई0 में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जो मॉटफोर्ड योजना के नाम से जानी जाती है। इसमें भावी

सुधारों की योजना थी। इस प्रतिवेदन पर आधारित 'गर्वमेन्ट ऑफ एक्ट, 1919' पारित किया गया जो भारत सरकार अधिनियम, 1919 के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम की कुछ विशेषताऐं थीं, जो निम्नलिखित हैं-

- प्रान्तों में दोहरे शासन को स्थापित करके एक आंशिक उत्तर दायी सरकार की स्थापना की गई। प्रशासन के विषयों को दो भागों में बाँटा गया- केन्द्रीय विषय एवं प्रान्तीय विषय।
- केन्द्रीय विधानमण्डल को पहली बार द्वि-सदनीय बनाया गया। उच्च सदन को राज्य परिषद् एवं निम्न सदन को विधान सभा का नाम दिया गया।
- केन्द्रीय विधानमण्डल की अपेक्षा गर्वनर जनरल का वर्चस्व बनाए रखा गया।
- केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तर दायी थी न कि केन्द्रीय विधान परिषद् के प्रति। लेकिन कुछ सीमा तक प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय विधान मण्डलों के प्रति उत्तर दायी बनाया गया। गर्वनर जनरल की परिषद् की सदस्य सीमा समाप्त कर दी गई एवं भारतीय सदस्यों की संख्या तीन कर दी गई। यह कार्यपालिका शक्तियाँ गर्वनर जनरल में निहित थी।

सन् 1919 ई0 का अधिनियम भारतीयों की आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतरा जिससे भारतवासियों ने क्रुद्ध होकर गाँधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलतः साईमन कमीशन का गठन हुआ जिसमें एक भी भारतीय न था। सन् 1930 में इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन दिया। भारत शासन अधिनियम, 1935 ई0में पारित किया गया। इस अधिनियम की विशेषताऐं कुछ इस प्रकार थी-

- संघात्मक सरकार की स्थापना करना।
- केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच शक्तियों का विभाजन तीन सूचियों को बनाकर किया गया जो इस प्रकार हैं- केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची, समवर्ती सूची।
- प्रान्तों में द्वैध शासन को हटाकर केन्द्र में लागू किया गया।
- प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित किया गया, आदि।

1935 ई0 के अधिनियम की सभी दलों ने आलोचना की, लेकिन सन् 1937 के चुनावों में सभी दलों ने भाग लिया। 1938 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीयों को खुश करने एवं उनका सहयोग लेने के लिए भारत में क्रिटस मिशन भेजा गया। सन् 1942 ई0 में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस स्थिति से

निपटने के लिये 1946 में ब्रिटिश सरकार ने 1946 में संविधान निर्माण के लिए भारतीय नेताओं से बातचीत करने हेतु कैपिनेट मिशन भेजा।

कैबिनेट मिशन की कार्य योजना सभी भारतीयों को स्वीकार्य थी। इस मिशन के प्रस्ताव पर जुलाई, 1946 को संविधान सभा का गठन किया गया। 2 सितम्बर, 1946 को एक अन्तरिम सरकार भी गठित की गई। 1947 में भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित किया गया। 15 अगस्त, 1947 को इस अधिनियम के प्रभावी होने से भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना एवं 26 जनवरी, 1950 को भारत में नया एवं स्वतन्त्र संविधान लागू हुआ जिसमें भारत को लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया गया।

6.3 ब्रिटिश काल में प्रशासन का विकास

उपरोक्त वर्णन से आपको ज्ञात हो गया होगा कि भारतीय प्रशासन का विकास अचानक नहीं हुआ, बल्कि हर काल का इसमें योगदान रहा। परन्तु आधुनिक भारतीय प्रशासन के विकास में ब्रिटिश काल का विशेष महत्व है। भारत में ब्रिटिश प्रशासन का बीजरूप में प्रारम्भ 1600 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ। तत्पश्चात 1853 से भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की शुरूआत हो गयी। सन् 1947 तक भारत का शासन ब्रिटिश क्राउन के द्वारा चलाया गया। भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जानने से पहले ये जानना आवश्यक हो जाता है कि ब्रिटिश काल जो कि करीब 200 वर्षों का रहा, उसमें लोक प्रशासन का विकास किस प्रकार हुआ। भारत में लोक प्रशासन के विकास को निम्नलिखित शीर्षकों से विभक्त करके बता सकते हैं-

1. **केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् का विकास-** केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना 1773 के रेग्यूलेंटिग एक्ट द्वारा की गयी थी। ऐक्ट के अनुसार बंगाल के गवर्नर को कम्पनी के भारतीय प्रदेशों का गवर्नर जनरल बनाया गया और उसकी सहायता के लिए 04 सदस्यों की एक परिषद् की स्थापना की गयी। परिषद् के सदस्य अपने-अपने अधीन केन्द्रीय प्रशासन के विभागों के अध्यक्ष होते थे। उनके साधारण कर्तव्य परामर्शदाताओं की अपेक्षा प्रशासकों जैसे अधिक थे। प्रत्येक सदस्य अपने विभाग के मन्त्री के समान राजनीतिक अध्यक्ष होता था और उसके विभाग में स्थायी कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या होती थी, जिसका सर्वोच्च पदाधिकारी स्थायी सचिव होता था। विभागीय सचिव का कर्तव्य होता था कि वह प्रत्येक मामले को विभागीय अध्यक्ष के सम्मुख निर्णय के लिए रखे। इसके साथ वह अपनी सम्मति भी देता था। साधारण मामलों में परिषद् का सदस्य अन्तिम निर्णय करता और आदेश निकालता था। यदि मामला महत्वपूर्ण होता, तो उसे गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिये भेजा जाता था। यदि गवर्नर

जनरल सदस्य के निर्णय को अस्वीकार करता, तो सम्बन्धित सदस्य ऐसे मामले को पूरी परिषद् के सम्मुख पेश कर सकता था। एक से अधिक विभागों से सम्बन्धित मामले पर यदि सम्बन्धित विभाग सहमत न हो पाते, तो उसे गवर्नर जनरल के पास भेजा जाता था।

2. **केन्द्रीय सचिवालय का विकास-** कम्पनी शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केन्द्रीय सरकार का सचिवालय गठित किया गया, जिसमें 1833 के चार्टर अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक मितव्ययिता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किये गये। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि राजस्व और वित्त विभागों को मिलाकर एक मिश्रित विभाग बना दिया गया। 1843, 1855 और 1862 से 1919 तक सचिवालय में विभागों का गठन-पुनर्गठन होता रहा। सन् 1919 से 1947 तक का युग केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।
3. **वित्तीय प्रशासन-** भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित होने के बाद प्रान्तों को वित्त के सम्बन्ध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतन्त्रता दी गई, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। 1833 से 1870 ई0 तक प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता के रूप में ही काम करती रही। उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लॉर्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया। इस प्रस्ताव के आधार पर निम्नलिखित व्यवस्थाऐं की गई- पहला, जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा सेवाऐं, सड़के, छपाई, आदि के व्ययों की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रान्तीय सरकारों के नियन्त्रण में हस्तान्तरित कर दिया गया। दूसरा, प्रान्तों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई। वित्तीय मामलों में प्रान्तीय सरकारों की और अधिक उत्तर दायित्व प्रदान करने के लिये 1882 में एक नई योजना प्रस्तावित की गयी। इसके अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया- केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा विभाजित। 1919 के ऐक्ट द्वारा प्रान्तीय प्रशासन में उत्तदायित्व के तत्व का प्रवेश हुआ और प्रान्तों के बजट केन्द्रीय सरकार से बिल्कुल पृथक् कर दिये गये और प्रान्तीय सरकारों को अपने बजटों के निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया। 1935 के एक्ट द्वारा प्रान्तीय स्वायत्ता की व्यवस्था की गयी थी। अतः इस अधिनियम के द्वारा संघीय सरकार द्वारा प्रान्तों में 3 सूचियों के आधार पर न केवल कार्यों का वर्गीकरण किया गया, अपितु वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया।

4. **स्थानीय शासन का विकास-** भारत में वर्तमान स्थानीय शासन संस्थाओं की रचना और विकास अंग्रेजी शासन की देन है। इनकी रचना ब्रिटिश संस्थाओं के नमूने पर अंग्रेजों ने की और उन्हीं के शासन काल में इनका विकास हुआ। स्थानीय शासन का प्रारम्भ प्रेसीडेन्सी नगरों में रहते हुये 1687 ई0 में मद्रास के लिये एक निगम की स्थापना के साथ हुआ। लॉर्ड रिपन के शासनकाल मं स्थानीय संस्थाओं को काफी बढ़ावा मिला। उनके स्वरूप को लोकतान्त्रिक बनाया गया तथा उनके कार्यों एवं शक्तियों में वृद्धि की गयी। मॉण्टेग्यू घोषणा के पश्चात भी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के विकास को काफी प्रोत्साहन मिला। सन् 1937 में प्रान्तों में उत्तर दायी मन्त्रिमण्डलों के निर्माण के फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओं के, प्रजातन्त्रीकरण के कार्य में काफी प्रोत्साहन मिला।
5. **क्षेत्रीय प्रशासन-** अंग्रेजी शासन काल में क्षेत्रीय शासन का विकास हुआ। प्रान्त जिलों में विभक्त थे। कुछ प्रान्तों में जिलों का समूहीकरण कर संभाग का निर्माण किया गया था। संभाग का अधिकार आयुक्त (कमिश्नर) तथा जिले का अधिकारी 'कलक्टर' कहलाता था। आयुक्त व कलक्टर आई0सी0एस0 के वरिष्ठ अधिकार होते थे। कलक्टर जिला प्रशासन की धुरी होता था। वह जिले में प्रशासनिक यन्त्र को गतिमान रखता थ। जिले में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना उसका कर्तव्य था। जिला मजिस्ट्रेट के रूप में वह न्यायिक एवं कार्यकारिणी कार्यों का सम्पादन करता था।
6. **न्याय प्रशासन-** ब्रिटिश शासन में न्याय व्यवस्था अच्छी थी। न्याय का कार्य संघीय न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों के हाथों में था। सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। प्रान्तों में उच्च न्यायालय का गठन सन् 1961 के भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत किया गया था। इन न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, गैर-वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपील दोनों प्रकार के प्राप्त थे। जिलों में अधीनस्थ न्यायालय थे। ये न्यायालय दो प्रकार के थे, अधीनस्थ दीवानी न्यायालय और अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय।
7. **लोक सेवा का विकास-** सन् 1858 में कम्पनी शासन के अन्त और उसके स्थान पर ब्रिटिश क्राउन की सरकार की स्थापना से 'प्रशासन तन्त्र' को 'सरकार' बना दिया। उच्च भारतीय प्रशासनिकारी वास्तव में भारत के मालिक (Owner) बन बैठे। किसी सत्ता के प्रति उत्तर दायी होने के स्थान पर वे अपने को आपस में एक-दूसरे के प्रति उत्तर दायी समझने लगे। सन् 1886 से 1923 तक जिन तीन शाही आयोगों की नियुक्ति हुई वे भारतीय लोक सेवाओं के विकास इतिहास में तीन महत्वपूर्ण चरण कहे जा सकते हैं।

प्रथम आयोग ने, जिसे एचीसन आयोग (1886) भी कहा जाता है, भारत सरकार को यह सलाह दी कि वह 'स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस' व्यवस्था को समाप्त कर प्रान्तीय लोक सेवा का गठन करे। दूसरा आयोग जो इस्लिगटन आयोग के नाम से अधिक जाना जाता है सन् 1917 में गठित हुआ। इस आयोग ने इंग्लैण्ड और भारत में साथ-साथ ली जाने वाली प्रतियोगिता-भर्ती परीक्षाओं की राष्ट्रीय मांग को स्वीकृति दी। इसने यह भी अनुशंसा की कि भारतीय उच्च लोक सेवाओं में 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिये सुरक्षित रखे जाये और इन सुरक्षित पदों पर चुने जाने वाले भारतीय प्रत्यक्ष भर्ती व्यवस्था द्वारा लिए जाऐ और शेष को प्रान्तीय लोक सेवाओं में से पदोन्नत किया जाए। तीसरा आयोग, जिसे ली आयोग के नाम से जाना जाता है, सन् 1923 में गठित किया गया। इस आयोग के अध्यक्ष ली ऑफ फर्नहाम की यह निश्चित मान्यता थी कि द्वैध शासन व्यवस्था के अन्तर्गत जो विषय हस्तान्तरित प्रान्तीय विषय है, उनके प्रशासन को चलाने वाली लोक सेवाओं पर राजनीतिक नियन्त्रण को कठोर बनाया जाये। इस शाही आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय लोक सेवाओं में भारतीयकरण की प्रक्रिया के दो भिन्न-भिन्न रूप सामने आये- एक आई0सी0एस0 में भारतीयकरण और दूसरे केन्द्रीय सेवाओं में भारतीयकरण। सन् 1919 का भारतीय शासन अधिनियम वह पहला दस्तावेज था जिसने ब्रिटिश क्राउन की इन शाही सेवाओं का एक निश्चित एवं सुस्पष्ट वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इस अधिनियम के अनुसार जिन सेवाओं और विभागों के सदस्य स्थायी तथा प्रत्यक्ष रूप से सुप्रीम गवर्नमेण्ट' के अधीन थे, उन्हें वहाँ से आगे 'सेण्ट्रल सर्विसेज' या केन्द्रीय सेवाऐं कहा गया। इस प्रकार की सेवाऐं थीं- रेलवे, कस्टम आदि। ऑडिट तथा अकाउण्ट्स तथा मिलिट्री अकाउण्ट्स। इसी प्रकार इस श्रेणी के विभागों में डाक-तार विभाग के कर्मचारी आते हैं, जिन्हें इम्पीरियल सर्विस का स्तर नहीं दिया गया। अन्य इम्पीरियल सेवाओं का फिर से नामकरण किया गया और उन्हें अखिल भारतीय सेवाओं की संज्ञा दी गयी। ये ऑल इण्डिया सर्विसेज थीं- इण्डियन सिविल सर्विस (I..C.S.), इण्डियन पुलिस सर्विस (I.P.S.), इण्डियन सर्विस ऑफ इन्जीनियर्स तथा इण्डियन एज्यूकेशनल सर्विस। ये सभी अखिल भारतीय सेवाऐं भारत सचिव की देख-रेख में अपना कार्य करती थीं। प्रान्तीय सेवाओं के नाम उनके अपने प्रान्तों के नाम पर रखे गये, जैसे- बम्बई सिविल सर्विस, मद्रास सिविल सर्विस, आदि। साइमन कमीशन योजना के अनुसार प्रस्तावित इन संघीय और प्रान्तीय सेवाओं के अधिकारों और विशेषाधिकारों को सन् 1935 के भारत अधिनियम में कानूनी रूप दिया गया और इन सेवाओं के कर्मियों की पदोन्नति, वेतनमान, अवकाश, सेवानिवृत्ति शर्तों, इत्यादि की व्यवस्था को सुरक्षित बनाया गया। इसी अधिनियम ने संघीय तथा प्रान्तीय लोक सेवा

आयोगों का गठन किया जिनका कार्य तीन प्रकार की लोक सेवाओं के विभिन्न क्षेत्रों में अभिकरणों के रूप में कार्य करते रहना था।

इस प्रकार आपने देखा कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन में ब्रिटिश काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए व संस्थागत विकास भी हुआ। इस काल में प्रशासन में हुआ विकास स्वातन्योत्तर प्रशासन का आधार बना एवं इन्हीं विशेषताओं को भारत में ब्रिटिश प्रशासन की विरासतों के तौर पर देखा जाता है।

भारतीय प्रशासन की पूरी पृष्ठभूमि जान लेने के बाद आइये अब हम विस्तार से भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करते हैं।

6.4 भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे के लिए उत्तर दायी कारक

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे में आकस्मिक और मौलिक परिवर्तन आए हैं। सन् 1935 का अधिनियम, जिसके अन्तर्गत सीमित संसदीय लोकतन्त्र और केन्द्रीकृत संघवाद भारत को दिए गए थे, मूल रूप से हमारी प्रशासनिक व्यवस्था का आधार बने।

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे में नव-परिवर्तन के लिए मुख्यतः चार कारण उत्तर दायी हैं-

1. **संसदीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात-** ब्रिटिश शासन काल में कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तर दायी नहीं थी। वह केवल ब्रिटिश सम्प्रभुओं के प्रति ही उत्तर दायी थी। इसलिए ब्रिटिश हितों का संरक्षण ही उसका प्रमुख दायित्व था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में संसदीय शासन व्यवस्था की शुरुआत की गयी और कार्यपालिका को संसद के प्रति उत्तर दायी बना दिया गया। निर्वाचित मन्त्रिमण्डल के माध्यम से लोक प्रशासन की अन्ततोगत्वा संसद के प्रति जिम्मेदारी होती है। संसद द्वारा प्रशासनिक उत्तर दायित्व का बोध उसके जनहितकारी दायित्वों के सम्पादन के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।
2. **प्रशासन के लक्ष्य और उद्देश्यों में परिवर्तन-** स्वतन्त्रता के बाद प्रशासन का लक्ष्य मात्र कानून और व्यवस्था बनाए रखना मात्र नहीं है। संविधान की प्रस्तावना(Preamble) तथा नीति निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में प्रशासन के लक्ष्यों और दायित्वों का निर्धारण कर दिया गया है। अब प्रशासन को नौकरशाही प्रवृत्ति छोड़कर लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध होना है।

3. **संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना-** स्वतन्त्रता के साथ ही एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि एकात्मक सरकार को संघात्मक शासन में परिवर्तित कर दिया गया। राज्य सरकारों को स्वायत्ता प्रदान की गयी और इस प्रकार राज्यों के क्षेत्रों में केन्द्रीय नियन्त्रण कम हुआ।
4. **जन-प्रतिनिधियों की प्रशासन में भागीदारी-** स्वतन्त्रता के बाद प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में जन-प्रतिनिधियों की भागीदारी में वृद्धि हुई। ब्रिटिश शासन काल में विभागों के अध्यक्ष मन्त्री न होकर आई0सी0एस0 के सदस्य होते थे जिनके कोई राजनीतिक कार्य नहीं थे। उनका उत्तर दायित्व केवल गवर्नर जनरल के प्रति था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं थी, वे अपना सम्पूर्ण समय प्रशासन में लगाते थे जबकि मन्त्रियों की अब राजनीतिक प्रतिबद्धता होती है, उन्हें प्रशासन का बहुत कम अनुभव होता है, वे अपना अधिकांश समय राजनीतिक दायित्वों में लगाते हैं। वे प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष के रूप में निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। अब प्रशासक और राजनीतिज्ञों को व्यवस्था में भागीदार बना दिया गया है। समाजवादी और धर्म निरपेक्ष राज्य-संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा प्रस्तावना 'समाजवादी राज्य' और 'धर्म निरपेक्ष' राज्य घोषित किया गया है।

वस्तुतः स्वतन्त्रता के बाद भारत में प्रशासन के दर्शन (Philosophy), परिवेश (Ecology) तथा उसके तत्व (Contents) में परिवर्तन आया है। कल्याणकारी राज्य, सामाजिक न्याय, समाजवाद और संविधान के प्रति प्रतिबद्धता ने उसके ढ़ाँचे और स्वरूप को नया मोड़ दिया है।

स्वतत्रन्ता के बाद भारत में लोक प्रशासन के दृष्टिकोण और मनोवृत्ति को व्यापक सरकार के विचार दर्शन और जनतान्त्रिक शासन के आदर्शों ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। प्रशासन-तन्त्र पर विकास की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी। विकास का अर्थ था- 'समूचे देश का आर्थिक विकास।' 'सामाजिक न्याय' के लक्ष्य ने सारी स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया। केवल समूचे देश का विकास अब लक्ष्य नहीं रह गया। साथ में जुड़ गये गरीबी दूर करने, गरीबी और अमीर का अन्तर मिटाने का लक्ष्य। प्रशासन-तन्त्र अब तक विद्यमान व्यवस्था को बनाए रखने के लिए था।

6.5 भारतीय लोक प्रशासन की विशेषताऐं

भारत में लोक प्रशासन संविधान में उल्लेखित उद्देश्यों और आदर्शों की प्राप्ति के लिये कार्यरत है। परम्परागत दायित्वों के साथ-साथ आज प्रशासन सामाजिक सेवा, राज्य व्यापार एवं नागरिक आपूर्ति, औद्योगिक एवं श्रमिक

प्रबन्ध जैसे कार्यों का भी सम्पादन कर रहा है। नये आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भ में लोक प्रशासन नया परिवेश ग्रहण कर रहा है। नए-नए प्रशासनिक अभिकरण एवं संस्थाएँ अस्तित्व में आई हैं। पुरानी संस्थाओं और प्रवृत्तियों का स्थान नयी संस्थाएँ और दृष्टिकोण ग्रहण करते जा रहे हैं। वर्तमान में भारतीय लोक प्रशासन की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं-

1. **ब्रिटिश विरासत-** चूँकि सन् 1947 में सत्ता का हस्तान्तरण ब्रिटिश हाथों से भारत एवं पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों को किया गया था अतः स्वभाविक रूप से पूर्ववर्ती विशेषताऐं आज भी विद्यमान हैं। जिस प्रकार मुगलकालीन फारसी भाषा का आज भी राजस्व तथा न्याय प्रशासन में प्रभाव दिखायी पड़ता है उसी प्रकार अंग्रेजो द्वारा विकसित कानून, नियम, प्रक्रियाऐं तथा परम्पराऐं भारतीय लोक प्रशासन में दृष्टिगत होती है। अखिल भारतीय एवं अन्य लोक सेवाऐं सचिवालय व्यवस्था, नौकरशाही की कठोर प्रणाली, जिला प्रशासन, राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन तथा स्थानीय प्रशासन इत्यादि ब्रिटिश शासन के प्रमुख प्रभाव हैं जो आज भी भारतीय प्रशासन में दिखाई देते हैं।
2. **संघीय ढाँचे का प्रभाव-** ''भारत के संविधान के अनुसार भारत राज्यों का एक संघ है'' अतः संघीय स्तर पर केन्द्र (भारत) सरकार तथा राज्यों से प्रान्तीय सरकारें कार्य करती हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची (अनुच्छेद-246) में शासन के कार्यों को संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त किया गया है। अतः आवष्टित कार्यों के अनुसार लोक-प्रशासन का संगठन तथा कार्यकरण निर्धारित किया हुआ है। रेलवे, डाक- तार, दूरसंचार तथा विदेश नीति इत्यादि केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र में है जबकि पुलिस, सिंचाई, स्वास्थ्य तथा स्थानीय स्वशासन इत्यादि राज्य सरकारों के अधीन हैं। यही कारण है कि भारत में प्रत्येक प्रान्त में राज्य प्रशासन पूर्णतया एक समान नहीं है। राज्यों में अपनी लोक-सेवाऐं तथा प्रशासनिक संस्थाऐं कार्यरत हैं जो राज्य विधान मण्ड़लों द्वारा पारित अधिनियमों के अनुसार कार्य करती हैं।
3. **गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रशासन-** भारत का प्रशासन प्रगतिशील, गतिशील एवं परिवर्तनशील गुणों से युक्त है। मौर्य काल और गुप्त काल में जो प्रशासन था उसमें मुगल शासकों ने समयानुकूल परिवर्तन किए। ब्रिटिश काल का प्रशासन दमन, अनुशासन, दक्षता और शोषण की विशेषताओं से युक्त था। स्वतन्त्रता के बाद संसदीय प्रजातन्त्र की परम्पराओं के अनुरूप प्रशासन के संगठन और मूल्यों में व्यापक परिवर्तन आये। अब लोक प्रशासन जनता के स्वामी के बजाय जनसेवक की भूमिका का निर्वाह करने लगा। संसद, न्यायपालिका, समाचार-पत्र और यहाँ तक कि राजनैतिक दलों के माध्यम से भारतीय प्रशासन जनता के सीधे नियन्त्रण का विषय बन गया है।

4. **उत्तरदायी प्रशासन-** भारत में संसदीय प्रणाली की स्थापना की गयी है। संसद के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं और मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति उत्तर दायी होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य विभिन्न प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष होते हैं। संसद में उनसे प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके विभागों की आलोचना तक की जाती है। मन्त्रियों के माध्यम से संसद प्रशासन पर नियन्त्रण रखती है। संसद में प्रश्नकाल प्रशासनिक अधिकारियों को चौकन्ना रखता है। यह उसे सजग रहने के लिए बाध्य करता है। प्रशासन की किसी असफलता, अकार्यकुशलता, विलम्ब, त्रुटि अथवा अनियमितता के बारे में लगाये गये आरोप को अन्ततोगत्वा मन्त्रिमण्डल को अपने ऊपर लेना पड़ता है, जिसका दण्ड साधारण भी हो सकता है, जैसे अप्रसन्नता व्यक्त करना अथवा कठोर भी हो सकता है, जिसमें मन्त्रिपरिषद् को हटाया जा सकता है। अतः प्रशासन पर सावधान, सचेत, जागरूक, ईमानदार और कार्यकुशल रहने का भारी दायित्व तथा मन्त्रिपरिषद् पर प्रशासन की प्रत्येक गतिविधि की निगरानी रखने तथा संसद के प्रति सत्यनिष्ठा रखने का भारी दायित्व होता है, क्योंकि घटनाएँ घटने के पश्चात संसद द्वारा इन दोनों के कार्यों का परीक्षण किया जाता है।
5. **विधि का शासन-** भारत में लोक प्रशासन विधि पर आधारित है। समस्त कार्य कानून की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत ही होते हैं। न्यायालय इस बात को देखता है कि प्रशासन कहीं कानूनों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा है। उल्लंघन करने पर न्यायालय उन्हें अवैध घोषित कर सकता है। इसके साथ-साथ संविधान की प्रस्तावना में प्रशासन के समक्ष पाँच स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं- न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना।
6. **कल्याणकारी प्रशासन-** आज के युग में राज्य को एक बुराई के रूप में नहीं बल्कि अनिवार्यता के रूप में देखा जाता है। यही कारण है कि आम व्यक्ति की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रशासनिक संगठन कार्यरत हैं। कहा जाता है कि आज का लोक-प्रशासन जन्म से पूर्व (गर्भवती माता का टीकाकरण) से लेकर मृत्यु के उपरान्त (बीमा तथा सम्पत्ति निपटारा) तक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास एवं कल्याण हेतु कार्य करता है। भारतीय लोक प्रशासन भी भोजन, वस्त्र तथा आवास जैसी मूलभूत (न्यूनतम) आवश्यकताओं सहित शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, परिवहन, संचार, पेयजल, रोजगार तथा न्याय इत्यादि सेवाओं की व्यवस्था एवं संचालन करता है। राज्य के कल्याणकारी दायित्वों में हो रही आशातीत वृद्धि के कारण ही प्रशासनिक संगठनों एवं कार्यों का विस्तार हुआ है। संवैधानिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु पिछड़े वर्गों को लोक सेवाओं में आरक्षण प्रदान किया गया है।

7. **प्रशासन का कानूनी रूप-** वर्तमान भारतीय लोक-प्रशासन राजशाही, तानाशाही या चमत्कारिक सत्ताओं पर आधारित नहीं है, बल्कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार संचालित है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों की भावनाओं तथा इच्छाओं का पर्याय संविधान, प्रशासन-तन्त्र को वैध तार्किक सत्ता प्रदान करता है। संविधान के अनुसार भारत में 'विधि का शासन' है, अर्थात् कानून से बढ़कर कोई नहीं है। पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के अनुसार भारतीय लोक प्रशासन के प्रत्येक कृत्य का मूल आधार वे कानून होते हैं जो जनकल्याण, विकास, सुरक्षा, समानता तथा न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों एवं तथ्यों की पूर्ति हेतु बनाये जाते हैं। राज्य के समस्त कार्यों की पूर्ति का दायित्व आज के प्रशासन के कन्धों पर है अतः भारत में भी प्रशासकीय राज्य है।

8. **सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों से युक्त प्रशासन-** भारतीय प्रशासन सामान्यज्ञ प्रधान रहा है। एक समय आई0सी0एस0 का वर्चस्व रहा और आज आई0ए0एस0 की प्रधानता है जो कि एक सामान्यज्ञ लोक सेवा है। सरकार के कार्यों की प्रकृति में परिवर्तन होने के साथ ही लोक सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों, प्रविधिज्ञों तथा दक्षों की नियुक्ति होने लगी। फलस्वरूप प्रशासन में अनेकरूपता देखने में आ रही है। सरकार अब केवल लिपिकों तथा सामान्यवादियों (Generalists) को ही नियुक्त नहीं करती है। अब अधिकाधिक वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, मनोवैज्ञानिकों, मानसिक चिकित्सकों, कृषिशास्त्रियों, ऋतुविज्ञों, विधिवेत्ताओं, सांख्यिकों आदि को नियुक्त किया जाता है।

9. **नियामकीय और विकास कार्यों का मिश्रण-** भारतीय प्रशासन में नियमाकीय एवं विकास कार्यों को मिश्रित कर दिया गया है। दोनों प्रकार के कार्य समान स्तरों पर समान अधिकारियों द्वारा किये जाते हैं। यद्यपि विकास कार्य अलग अधिकारियों द्वारा किया जाता है, किन्तु ये अधिकारी नियामकीय अधिकारियों की देख-रेख में कार्य करते हैं जो सरकार के प्रति दोनों प्रकार के कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं। उदहारण के लिए, कलक्टर एक ओर तो कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राजस्व, आदि के कार्य करता है और दूसरी ओर वह पंचायती राज्य का निरीक्षक एवं पथ-प्रदर्शक, विकास कार्यों का समन्वयकर्ता एवं सामुदायिक योजना का अभिकर्ता भी है। इसी प्रकार उपखण्ड, तहसील और ग्राम स्तर पर ये दोनों विरोधी प्रकृति के कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों को सौंपे गये हैं।

10. **प्रशासन की राजनीतिक तटस्थता-** यह भारतीय प्रशासन की अन्य विशेषता है। तटस्थता का अर्थ यह है कि लोक-सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक विचारों या अवधारणाओं से पूर्ण मुक्त रहता है। भारत में लोक सम्बन्धी आचरण के नियमों के अनुसार सरकारी कर्मचारियों पर राजनीतिक कार्यों में

क्रियात्मक रूप से भाग लेने पर प्रतिबन्ध है। फलस्वरूप प्रशासन-तन्त्र के सदस्य सरकार की नीतियों को बिना किसी दलीय आसक्ति या स्वयं के आग्रह के पूर्ण निष्ठा से कार्यान्वित करते हैं तथा सरकार की नीतियों के पालन में उनकी निष्ठा पर सरकार के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन की यह राजनीतिक तटस्थता भारत की संवैधानिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित की गयी है।

11. **आरक्षण व्यवस्था-** भारतीय संघात्मक व्यवस्थार के केन्द्रोन्मुख होने एवं साथ ही एकात्मक तत्वों के समावेश ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के समन्वित स्वरूप का निर्धारण किया है। अतः प्रशासनिक व्यवस्था पर केन्द्र का वर्चस्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्ग प्रशासनिक सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व में वंचित न रहें, इसके लिये भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिये अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्ग के हेतु आरक्षण का प्रावधान है। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि राजकीय सेवाओं एवं पदों पर नियुक्ति हेतु इन वर्गों के सदस्यों के दावों पर समुचित ध्यान दिया जायेगा। संविधान में यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन वर्गों के सदस्यों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के क्रम में यदि सरकार उनके लिए सेवाओं में आरक्षण का ऐसा कोई विशेष उपबन्ध करती है तो उसका कार्य नागरिकों को दी गई अवसर की समानता की गारण्टी के प्रतिकूल नहीं समझा जाएगा।

12. **स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष चयन प्रणाली-** भारत में प्रशासनिक अधिकारियों के चयन का आधार केवल योग्यता को ही माना गया है एवं इस योग्यता के समुचित मूल्यांकन एवं परीक्षण हेतु निश्चित प्रणाली की व्यवस्था की जाती है। प्रशासनिक सेवा में भर्ती हेतु भारत में योग्यता एवं उपयुक्तता के अतिरिक्त अन्य कोई आधार विधिवत मान्य नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती हेतु सर्वसाधारण के लिए खुली चयन व्यवस्था को अपनाया गया है। फलतः प्रशासन पर विशिष्ट कार्यों का एकाधिकार समाप्त हो गया है और इसमें जनसाधारण का प्रतिनिधित्व बढ़ता जा रहा है। प्रशासन के प्रजातान्त्रिक स्वरूप एवं चयन में योग्यता के निष्पक्ष आकलन की इन विशेषताओं को संविधान ने स्पष्टतः निर्धारित किया है। अब सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए लिंग, धर्म, जाति एवं नस्ल के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया है। संविधान ने राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में समस्त नागरिकों के लिये अवसर की समानता की घोषणा की है। इन प्रावधानों के माध्यम से संविधान ने प्रशासन-तन्त्र में सर्वसाधारण के प्रवेश द्वारा उसके जनतान्त्रिक स्वरूप का मार्ग प्रशस्त किया है। अब प्रशासन का अभिजात्य स्वरूप नहीं रहा है। जनसाधारण वर्ग के योग्य अधिकारी प्रशासनिक पदों पर आरूढ़ हैं। प्रशासनिक सेवाओं में निष्पक्ष

चयन हेतु संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है। प्रशासनिक सेवाओं में निष्पक्ष चयन किया जाता है। सामान्यत सरकार इस सन्दर्भ में आयोग के परामर्श को स्वीकार करती है एवं सरकार किसी विशेष स्थिति में संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श को अस्वीकार करती है तो सरकार को ऐसी अस्वीकृति का कारण सहित ज्ञापन संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। राज्य के लोक सेवा आयोग द्वारा की गई सिफारिशों की अस्वीकृति की स्थिति में राज्य सरकार को यह ज्ञापन राज्य के विधान मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करना होता है।

इन आयोगों के कार्य पर राजनीतिक या अन्य किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़े इसके लिए संविधान में उचित व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य अपने पद से राष्ट्रपति के आदेश द्वारा केवल कदाचार के आरोप में ही हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति भी ऐसा आदेश तभी जारी कर सकता है जबकि भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जाँच करके ऐसे किसी आरोप को सही पाकर सम्बन्धित व्यक्ति को पद्च्युत किये जाने की सिफारिश कर दी हो। इस व्यवस्था का उद्देश्य लोक सेवा आयोग को स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष होकर कार्य करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है। इस तरह यह पता चलता है कि संविधान द्वारा ऐसी व्यवस्थाऐं की गई हैं कि प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए चयन प्रणाली को निष्पक्ष बनायार जा सके एवं यथासम्भव, चयन का योग्यता के अतिरिक्त अन्य कोई आधार न हो सके।

13. **कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का पृथक्करण-** देश में कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का पृथक्करण एवं प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण की व्यवस्था है, ताकि वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग एवं सीमाओं का अतिक्रमण न करें।
14. **पृथक प्रशासनिक विधि-** भारत में प्रशासन देश की विधि के अन्तर्गत ही कार्य करती है। यही फ्रांस की तरह पृथक प्रशासकीय कानून एवं न्यायालयों की व्यवस्था नहीं की गई है।
15. **विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था-** सभी स्तरों पर शक्ति का विकेन्द्रीकरण भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की एक प्रमुख व्यवस्था है। यह व्यवस्था संविधान में घोषित लोकतान्त्रिक स्वरूप के अनुरूप है। इसलिए प्रशासन तन्त्र की शक्तियों का स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं तक विकेन्द्रीकरण किया गया है।
16. **जनता के प्रति उत्तर दायित्व-** भारत में प्रशासन को जनता के प्रति उत्तर दायी बनाया गया है। यह उत्तर दायित्व निम्नलिखित प्रकार से स्थापित किया जाता है-

- प्रत्येक प्रशासनिक विभाग के शीर्ष पर मन्त्री होता है जो कि मन्त्रिमण्डल का सदस्य होने के नाते सामूहिक रूप से संसद के लोक सदन के प्रति उत्तर दायी होता है। प्रशासन पर जनता का यह परोक्ष नियन्त्रण भारतीय संविधान के संसदीय प्रजातन्त्र की विशेषता से निर्धारित हुआ है। इस विशेषता के कारण जनता का प्रत्यक्ष नियन्त्रण नहीं होते हुये भी मन्त्रिमण्डल उत्तर दायित्व के कारण प्रशासन जनता के प्रति अपने उत्तर दायित्व के प्रति सदैव जागरूक होता है।
- संसद के सदस्य प्रशासन की कार्यप्रणाली एवं भूमिका के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों, काम रोको प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों के माध्यम से प्रशासन पर नियन्त्रण रखते हैं एवं उसे जनता के हितों के प्रति सजग बनाये रखते हैं। संसद एवं राज्य विधान मण्डलों कीर विभिन्न संसदीय समितियाँ भी प्रशासन पर नियन्त्रण स्थापित करती हैं। प्रशासन पर इस प्रकार संसद या विधान मण्डल के सदस्यों द्वारा किया गया नियन्त्रण वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से प्रशासन को जनता के प्रति उत्तर दायी बनाता है।
- विभिन्न प्रशासकीय उद्देश्यों एवं कार्य संचालन हेतु बनाई गई विभागीय समितियों में जन-प्रतिनिधियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाता है। इस प्रकार की समितियों में जन-प्रतिनिधियों की उपस्थिति प्रशासन को जनता के हितों के प्रति सचेत रखती है।

17. **विशाल आकार-** भारत में लोक प्रशासन का आकार काफी व्यापक है। उसमें एकरूपता का अभाव भी है। स्वतन्त्रता के बाद सरकारी कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। नए-नए विभाग खुलते जा रहे हैं और पुराने विभागों का विस्तार हो रहा हैं। जिस रूप में विशालकाय प्रशासन यन्त्र विकसित होता जा रहा है, उसके फलस्वरूप प्रशासनिक संगठन में स्वेच्छाचारिता, कर्तव्य विमुखता, अधिकार वृद्धि की आकांक्षा, उत्तर दायित्व को टालने की मनोवृत्ति, आदि अवगुणों के विकास के कारण प्रशासन का सफलतापूर्वक संचालन कठिन होता जा रहा है।
18. **प्रत्यायोजित व्यवस्थापन-** लोककल्याणकारी राज्य की धारणा के विकास ने भारत में राज्य के कार्य-क्षेत्र में जिस तीव्रता से अभूतपूर्व विस्तार किया है, उसके द्वारा संसद एवं विधानसभाओं के लिए व्यवस्थापन प्रक्रिया को वंचित समय दे पाना सम्भव नहीं हो रहा एवं ये संस्थाऐं कार्यभार की अधिकता से दबी हुई है। अतः संसद एवं विधानमण्डल व्यवस्थापन की मूल नीति का ही निर्धारण कर पाते हैं एवं कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रत्यायोजित व्यवस्थापन की शक्ति प्रशासन के पास अनिवार्यतः आ गई

है। प्रत्यायोजित व्यवस्थापन की प्रशासन की इस शक्ति को भी संविधान ने ही निधार्ररित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय प्रशासन का जनतांत्रिकरण किया गया है। फलतः उसे अनेक संवैधानिक एवं राजनीतिक बाध्यताओं में कार्य करना पड़ता है।

19. **विस्तृत प्रशासनिक व्यय-** केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर इस विशाल प्रशासन तन्त्र के वेतन-भत्ते एवं पेंशन पर भारी व्यय किया जाता है। समय-समय पर बढ़ाये जाने वाले महँगाई-भत्ते की राशि के कारण भी इस व्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है। इस कारण विकास कार्यों के लिये पर्याप्त राशि नहीं रह पाती है। प्रशासनिक व्यय का बढ़ता भार केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के लिए एक चुनौती का विषय बना हुआ है। आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों की भर्ती भी इस व्यय को निरन्तर बढ़ा रही है।

20. **नवीन चुनौतियाँ-** स्वतन्त्रता के पश्चात भारत ने विकास की विभिन्न मंजिलें तय की हैं। विशाल एवं तकनीकी के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। लोककल्याणकारी राज्य के अभ्युदय ने राज्य की भूमिका को भी विस्तृत बना दिया है। प्रशासन तन्त्र का भी भारी विस्तार हुआ है। इस बदलते परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक बन गया है कि भारतीय लोक प्रशासन अपनी नई भूमिका का सृजन करें। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प शेष नहीं रह जाता है। प्रशासन का लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण के अनुरूप आचरण करना अपरिहार्य है। लोक प्रशासकों का उचित प्रशिक्षण एवं उनमें मानवीय संवेदना का विकास करना अत्यावश्यक बन गया है। विकास कार्यों में लोगों की साझेदारी की भावना का विकास करना भी लोक प्रशासन का आवश्यक दायित्व है।

21. **केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति-** भारत में प्रशासन का संगठन सोपानात्मक (hierarchical) है अर्थात् ऊपर से नीचे तक अधिकारियों के अनेक वर्ग या सोपान हैं। भारत में केन्द्र चूँकि बहुत शक्तिशाली है, इसलिए अधिकांश महत्वपूर्ण निर्णय दिल्ली में किये जाते हैं। निचले स्तर पर बैठे अधिकारी भी फैसले स्वयं न करके मामला उच्चस्तरीय अधिकारियों के पास भेज देते हैं। वहाँ से ये मामले और ऊँचे अधिकारियों और अन्त में केन्द्र तक पहुँच जाते हैं। इस प्रक्रिया में इतना समय लग जाता है कि कभी-कभी तो निर्णय तब लिए जाते हैं, जब बाढ़ का पानी सूख जाए या फसल चौपट हो जाए या जिसे राहत दी जाने है वह स्वर्ग सिधार जाए।

22. **बढ़ती हुई शक्तियाँ-** विगत 100 वर्षों में विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात से लोक प्रशासन का एक अत्यन्त विलक्षण पक्ष सामने आया है कि लोक सेवा की शक्तियों, कार्यों तथा प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि हुई है। स्वतन्त्र भारत की आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाइयों ने एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी

समाज की धारणा एवं उसकी स्थापना के विचार को बल प्रदान किया है। यह नियोजित पद्धति द्वारा ही सम्भव है। स्वतन्त्रता के पश्चात सरकार द्वारा नए-नए कार्य तथा उत्तर दायित्व ग्रहण किये जाने के कारण प्रशासन के महत्व एवं शक्तियों में वृद्धि हो गयी है। अब लोक कर्मचारी (Civil Servant) पहले की भाँति केवल पुलिस या राजस्व अधिकारी मात्र नहीं है। यह तो अनेक प्रकार के विकास कार्यों में और देश के विभिन्न भागों में सहस्त्रों परियोजनाओं के परिपालन में संलग्न है।

इसके परिणामस्वरूप हमारी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही अत्यधिक शक्तिशाली हो गयी है। इस नौकरशाही अर्थात् लोक सेवा की शक्ति का आभास अकेले प्रशासन से ही नहीं प्राप्त होता बल्कि विधान तथा वित्तीय क्षेत्रों में भी अनुभव होता है। यह केवल विधियों को क्रियान्वित ही नहीं करती बल्कि प्रायः उन्हें निर्मित भी करती है। यह करों से प्रायः द्रव्य का केवल व्यय ही नहीं करती बल्कि यह भी प्रायः निश्चित करती है कि कितना किस प्रकार एकत्र किया जाना है।

23. **पुरानी नियमावली व क्रियाविधि-** पुराने कायदे (Out dated manuals and procedures) के कारण बहुत सी समस्याऐं उत्पन्न होती हैं और काम में रुकावट आती है। उदाहरण के लिये, 1939 के 'मोटर अधिनियम' (Motor Vehicles Act) को लीजिए, यह तब बना था जब ना 'जेबरा क्रॉसिंग'(Zebra Crossings) थे और ना बिजली से संचालित 'संकेत चिन्ह'। पर आज तक वही अधिनियम प्रयोग में लाया जा रहा है। वित्त मन्त्रालय के अनुदान सम्बन्धी नियमों (Grand-in-aid rules) को लीजिये, ना जाने कब से यह नियम चला आ रहा है कि अनुदान की राशि वित्तीय वर्ष के समाप्त होने से पहले खर्च हो जानी चाहिए अन्यथा यह समझा जाता है कि अनुदान मांगने वालों ने अपना बजट बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था अथवा प्रशासनिक अधिकारी या समूचा विभाग निकम्मा है। इस नियम की वजह से मार्च के अन्तिम सप्ताह में सभी विभागों में यह होड़ लग जाती है कि किसी ना किसी तरह वे निर्धारित राशि को खर्च कर डालें। फलस्वरूप फिजूलखर्ची को प्रोत्साहन मिलता है अथवा ऐसी चीजें खरीद ली जाती हैं, जिनकी कोई आवश्यकता या उपयोगिता न हो।

24. **समस्याओं से पीड़ित प्रशासन-** आज भारतीय प्रशासन अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। सभी स्तरों पर राजनीतिज्ञों और लोक सेवकों के मध्य सम्बन्धों की समस्या, प्रशासनिक अधिकारियों की मनोवृत्ति को राजनीतिक परिवर्तनों के अनुकूल बनाने की समस्या, जनता और प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य आपसी सम्बन्धों की समस्या, प्रशासकों के नैतिक चरित्र में गिरावट की समस्या, विभिन्न विभागों में समन्वय की समस्या, विशेषज्ञों और सामान्यज्ञों के सम्बन्धों की समस्या, संगठनात्मक संरचना में

परिवर्तन की समस्या, प्रशासन में अपव्यय को रोकने की समस्या, आदि अनेक प्रमुख समस्याऐं हैं। इन समस्याओं का निदान आवश्यक है।

25. **लालफीताशाही-** भारतीय प्रशासन की एक विशेषता लालफीताशाही है। अधिकारी और कर्मचारी नियमों और विनियमों पर आवश्यकता से अधिक बल देते हैं। वे प्रत्येक काम सुनिश्चित प्रक्रियाओं द्वारा ही सम्पन्न करते हैं और 'उचित मार्ग' से कार्य करने में विश्वास करते हैं। अतः फाइलें इधर से उधर घूमती रहती हैं और निर्णयों तथा कार्य में विलम्ब होता रहता है।

26. **लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित-** आधुनिक विश्व में लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणाऐं सर्वत्र अत्यधिक मात्रा में व्याप्त है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में जनता जनार्दन के हाथों में सत्ताधीशों का चयन तथा नियंत्रण की प्रणाली विकसित की गई है। भारत में संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा को अपनाया गया है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि न केवल विधायिका में कानून निर्मित करते हैं बल्कि कार्यपालिका में मंत्री के रूप में लोक प्रशासन का नेतृत्व भी करते हैं। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए नगरों में नगर निगम और नगरपालिकाएँ इत्यादि तथा गाँवों में पंचायती राज संस्थाओं का प्रवर्तन है। प्रजातांत्रिक समाजवाद के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शांतिपूर्ण, न्यायपूर्ण तथा राज्य प्रभावी कदमों को प्रश्रय प्रदान किया गया है। वर्तमान में प्रशासन को यह दायित्व दिया गया है कि वह देश में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार तथा संरक्षण में अपना योगदान करे।

27. **उलझा हुआ प्रशासन-तंत्र-** भारत में लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र कई प्रकार से विस्तृत एवं उलझा हुआ है, क्योंकि अंग्रेजी शासनकाल में अद्यतन अनेकानेक प्रशासनिक संस्थाऐं भारत में गठित होती रही है। संघीय स्तर पर कार्यरत विशाल केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य शासन सचिवालयों सहित इनके कार्यकारी संगठनों का सम्पूर्ण देश में जाल बिछा हुआ है। अनेक प्रकार के बोर्ड, आयोग, संगठन, न्यायाधिकरण, संस्थान, परिषद् प्राधिकरण, अभिकरण, निगम तथा सरकारी कम्पनियाँ विभिन्न कार्यों के निष्पादन हेतु कार्यरत है। भारत में विश्व के सभी प्रमुख देशों में प्रचलित प्रशासनिक संगठन-स्वरूप किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिल जाते हैं। समस्या यह है कि यहाँ आयोग, समिति तथा कार्य दलों की रिपोर्ट के आधार पर नित्य नये संगठन स्थापित करना एक परम्परा बन चुकी है। परिणामस्वरूप परम्परागत नौकरशाही की कार्यशैली में किन्चित भी परिवर्तन नहीं आता है बल्कि इसका आकार तथा वित्तीय भार बढ़ जाता है।

भारत में प्रशासनिक नामों की उलझन के बहुत सारे उदाहरण विद्यमान है। 'उप' शब्द के लिये कहीं पर डिप्टी (Deputy) तो कहीं 'सब'(SUB) शब्द प्रयुक्त होता है। लेफ्टिनेंट (Lieutenant) का अर्थ भी लोक प्रशासन में 'उप' से है (जैसे- उपराज्यपाल)। पुलिस विभाग में रेन्ज का तात्पर्य कई जिलों से होता है जबकि वन विभाग में रेन्ज बहुत छोटी इकाई है। नामों की उलझन न्यायिक क्षेत्र में भी है। इलाहाबाद, मुम्बई, कोलकाता, गुवाहाटी, चेन्नई तथा पटना उच्च न्यायालयों का नाम शहरों के आधार पर है, जबकि आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात तथा राजस्थान सहित बहुत से राज्यों के उच्च न्यायालय का राज्य के नाम पर है।

28. **विकास प्रशासन-** यह भारतीय प्रशासन की एक अनुपम विशेषता है। विकास प्रशासन एक गतिशील परिवर्तनात्मक अवधारणा है जो समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन लाने हेतु प्रयत्नशील है। इसमें प्रशासन के विकास पर महत्व दिया जाता है। विकास प्रशासन योजना, नीति-कार्यक्रम तथा परियोजना से सम्बन्ध रखता है। यह सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जन-कल्याण तथा जनजीवन को व्यवस्थित करने के लिए किये गये प्रयासों से है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन में विकास प्रशासन के तत्व देखने को मिलते हैं, जैसे- परिवर्तनोन्मुखी, प्रजातान्त्रिक मूल्यों से सम्बन्धित, आधुनिक जन-आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील तथा आर्थिक विकास के प्रति प्रयत्नशील। आज प्रशासन के द्वारा जन-सम्पर्क को अधिक महत्व दिया जा रहा है तथा जन-सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

29. **प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक न्याय-** भारत में प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक व आर्थिक न्याय के क्रियान्वयन से सम्बन्धित विविध प्रकार की नीतियों का क्रियान्वयन करनरा है। सामाजिक न्याय व लोककल्याण के प्रति प्रशासनिक व्यवस्था की प्रतिबद्धता का आधार भारत की संवैधानिक व्यवस्था ही है। जहाँ एक ओर संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक व आर्थिक न्याय को राज्य का आधार स्वीकार किया गया वहीं दूसरी ओर संविधान में अनेक प्रावधानों द्वारा राज्य पर इन उद्देश्यों की पूर्ति का दायित्व सौंपा गया है। राज्य का यह दायित्व वास्तव में प्रशासनिक व्यवस्था की दायित्व है, क्योंकि उसकी नीतियों का क्रियान्वयन अन्ततोगत्वा प्रशासन द्वारा किया जाता है। संविधान में राज्य से यह अपेक्षा की गयी है कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्यसाधक व्यवस्था करके लोककल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा। राज्य द्वारा किये गये प्रयत्न तब तक अधूरे हैं जब तक कि

समाज के पिछड़े व कमजोर वर्गों की सामाजिक व आर्थिक उन्नति के लिए हर प्रकार के शोषण से उसकी मुक्ति के कारगर प्रयत्न नहीं किए जाते। संविधान ने यह व्यवस्था की है कि राज्य जनता के दुर्बलतर वर्गों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय व हर प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा। इस प्रकार संविधान ने अल्पसंख्यकों व कमजोर वर्गों के हितों के प्रति प्रशासन से अधिक संवेदनशीलता की अपेक्षा की है तथा यह भारत के प्रशासन की एक प्रमुख विशेषता है।

30. **संसदीय शासन व्यवस्था एवं उत्तर दायी कार्यपालिका-** भारतीय शासन प्रणाली का स्वरूप संसदीय है, जिसमें वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रीपरिषद् के हाथों में निहित है। मन्त्रीपरिषद् संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। अगर संसद का मन्त्रीपरिषद में विश्वास ना रहे तो उसे अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ता है।

31. **जवाबदेय प्रशासन-** प्रशासनिक कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादित करने के लिये कार्मिकों को पर्याप्त प्राधिकार या शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। किन्तु वे प्राधिकार अनन्य नहीं हैं, बल्कि उत्तर दायित्व भी निश्चित किये गये हैं। लोक प्रशासन में निम्नतम स्तर पर कार्यरत कार्मिक से लेकर मन्त्री महोदय तक सभी को संविधान, जनता, कानून तथा व्यवस्था के प्रति जवाबदेय बनाया गया है, क्योंकि विधि का शासन व्यक्ति के बनाये कानून को सर्वोच्चता प्रदान करता है। लोक-प्रशासन की जवाबदेयता सुनिश्चित करने के लिये संसदीय, कार्यपालिका तथा न्यायिक नियन्त्रण की अनेक प्रणालियाँ प्रभावी हैं। स्वतन्त्र न्यायपालिका के द्वारा प्रशासनिक जवाबदेयता तथा नियन्त्रण को अधिक प्रभावी बनाया गया है।

32. **नौकरशाही का वर्चस्व-** आधुनिक प्रशासनिक तथा कल्याणकारी राज्यों में कर्मचारी तन्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु कर्मचारी तन्त्र में व्याप्त अहम्, लालफीताशाही, कठोर नियमों के प्रति मोह, शक्ति लालसा, अकार्यकुशलता, अनुशासनहीनता सहित नौकरशाही के समस्त अवगुण विद्यमान हैं। यद्यपि भारत में लोक प्रशासन का बाह्य स्वरूप विकासोन्मुख तथा कल्याणकारी दिखायी पड़ता है, तथापि आन्तरिक रूप से प्रशासन-तन्त्र की कार्यशैली आज भी ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है, जिसमें आम आदमी की मानवीय संवेदनाओं से कहीं अधिक नियमों को वरीयता दी जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में लोक प्रशासन का लक्ष्य क्या है?
2. भारतीय संविधान की प्रकृति है?

3. लोकतन्त्रीय प्रशासन का लक्षण है?

4. भारत में कल्याकारी प्रशासन का उल्लेख किसमें मिलता है?

5. भारतीय लोक प्रशासन का प्रमुख लक्षण नहीं है?

6.6 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप जान गये होंगे कि भारत का वर्तमान प्रशासन अतीतकालीन प्रशासनिक व्यवस्थाओं एवं प्रागैतिहासिक शासनों का विकसित प्रतिरूप है। इसका प्राचीनतम स्वरूप हमें सिन्धु घाटी सभ्यता काल में देखने को मिलता है जहाँ उसने निरन्तर प्रगति करते हुये युगों के अनेक उतार-चढ़ावों के थपेड़ों को सहन करते हुए आधुनिकता के परिवेश को प्राप्त किया है। अपने वर्तमान स्वरूप में यह ब्रिटिश शासन के विकास से पूर्णरूपेण प्रभावित है तथापि भारत का प्राचीन हिन्दु युग राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से उन्नत माना जाता था। स्वतन्ता के बाद भारतीय प्रशासन के स्वरूप में आमूल-चूल परिवर्तन आया। 26 जनवरी, 1950 के बाद भारत में लोकतन्त्र, विकास और समाजवाद के लिये लोक-प्रशासन युग की शुरुआत हुई है, इसके परिणामस्वरूप भारतीय प्रशासन को नये और विशिष्ट महत्व के कार्यों के सम्पादन की चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। अब लोक प्रशासन आर्थिक एवं औद्योगिक गतिविधियों में भाग लेने लगा; ग्रामीण विकास और गाँवों में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की गति को तीव्र करने का उत्तर दायित्व लोक प्रशासन पर ही डाला गया।

6.7 शब्दावली

राजतन्त्रीय- ऐसा राज्य या शासन जिसमें सारी सत्ता एक राजा के हाथ में हो, सामान्यज्ञ- जिसे सब विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान हो, विशेषज्ञ- जो किसी एक विषय का विशेष ज्ञाता हो, नियामकीय- नियन्त्रक, विधि- कानून, निष्पक्ष- जो किसी पक्ष या दल में सम्मिलित ना हो, तटस्थता- न इस ओर न उस ओर का, प्रत्यायोजन- सोंपना

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. न्याय की स्थापना, **2.** लोकतंत्रात्मक शासन, **3.** जबाबदेयता, **4.** निदेशक सिद्धान्तों में, **5.** प्रतिबद्ध लोक सेवाऐं

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 कमलेश कुमार सिंह, भारतीय प्रशासन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008

2. डॉ0 बी0एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016

3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2016

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पी.0के0 त्यागी, भारत में लोक प्रशासन, सुमित एन्टरप्राईजेज, नई दिल्ली, 2006

2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2001

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन पर ब्रिटिश प्रभाव का उल्लेख करते हुए इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करिये।
2. भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि बताते हुए वर्तमान में इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. भारतीय प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं का विस्तार से वर्णन करिये।

इकाई-7 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 नियंत्रण का अर्थ

7.3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता

7.4 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

7.5 प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की समस्याऐं

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक समाज में सत्ता के न्यायोचित प्रयोग के लिये उस पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता पड़ती है। सत्ता जितनी अधिक होगी, नियंत्रण की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। समुचित नियंत्रण व्यवस्था के अभाव में प्रशासन कानून को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है। कानूनों और स्थापित मर्यादाओं का उल्लंघन हो सकता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिये अधिकारी पक्षपातपूर्ण व्यवहार, भाई-भतीजावाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन जैसे मार्गों को अपनाकर अपनी सत्ता का दुरूपयोग कर सकते हैं। हमारा देश विकासोन्मुख है। अतः विकास कार्यों में वृद्धि के साथ-साथ लोक प्रशासन के अधिकारों में भी स्वतः वृद्धि हो रही है। इससे सत्ता के दुरूपयोग की संभावना भी बढ़ गयी है। इस पर नियंत्रण रखने तथा प्रशासन को जनता के प्रति उत्तर दायी बनाने हेतु कुछ सुरक्षात्मक कदम आवश्यक है। नियंत्रण मुख्यतया तीन प्रकार से स्थापित किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय हम प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण के साधनों के बारे में विस्तार से जानेंगे।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासन के संबंध में नियंत्रण के अभिप्राय व आवश्यकता के संबंध में जान पायेंगे।
- कार्यपालिका नियंत्रण के प्रकारों को समझ पायेंगे।
- कार्यपालिका नियंत्रण से सम्बन्धित क्या समस्याएँ उपस्थित होती हैं तथा उनसे सम्बन्धित क्या उपाय किये जा सकते हैं? इस संबंध में जान पायेंगे।

7.2 नियंत्रण का अर्थ

लोक प्रशासन पर नियंत्रण के विभिन्न प्रकारों को समझने से पूर्व आइये हम नियंत्रण के अभिप्राय को समझने का प्रयास करते हैं।

संगठन की व्यवस्था बनाये रखने हेतु तथा इसके समस्त अंगो को विधिवत् ढंग से संचालित करने हेतु नियंत्रण आवश्यक होता है। वस्तुतः नियंत्रण संगठन का वह अमूर्त् तत्व तथा प्रक्रिया है जो अन्य स्वरूपों में अपना कार्य करता है तथा संगठन की प्रक्रियाओं जैसे- संचार, समन्वय, पर्यवेक्षण, सत्ता तथा उत्तर दायित्व इत्यादि से घुल-मिल गया है। बहुधा निरीक्षण, पर्यवेक्षण, समन्वय, जांच-पड़ताल तथा नियंत्रण एक जैसे ही प्रतीत होते हैं, जबकि इनमें काफी अन्तर है। नियंत्रण संगठन की अधिकांश प्रक्रियाओं का एक उद्देश्य है जो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है।

शब्दकोषीय दृष्टि से नियंत्रण- निर्देश देने, आदेश देने तथा प्रबन्ध करने की सत्ता और शक्ति नियंत्रण है या दूसरे शब्दों में किसी चीज का प्रबन्ध अथवा प्रतिबन्ध नियंत्रण है।

हेमैन के शब्दों में ''नियंत्रण, देखभाल करने की एक प्रक्रिया है, ताकि यह पता किया जा सके कि नियोजन का अनुसरण किया जा रहा है या नहीं, लक्ष्यों की दिशा में प्रगति हो रही है या नहीं और यदि आवश्यक हो तो सुधार के लिये क्या प्रयास किया जाये।''

मैकफारलैण्ड के अनुसार, ''नियंत्रण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिकारी अपने अधीनस्थों के निष्पादन की तुलना निर्धारित योजनाओं, आदेशों, उद्देश्यों अथवा नीतियों के अनुसार अथवा इनके निकट करते हैं।''

वस्तुतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नियंत्रण, संगठन की व्यवस्था को बनाये रखने तथा उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक 'सुधारात्मक उपाय' है, जिसे प्रायः 'प्रबन्ध का नकारात्मक पक्ष' भी

मान लिया जाता है। वास्तव में नियंत्रण, जवाबदेयता को सुनिश्चित करने की एक विधि या आवश्यकता है। प्रभावशाली नियंत्रण के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व 'समय' है, अर्थात् कार्य एवं प्रक्रिया पर नियंत्रण समय रहते किया जाना चाहिये।

7.3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता

लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता के संबंध में प्रो0 व्हाइट कहा कि, ''लोकतांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण आवश्यक है। शक्ति जितनी अधिक है, नियंत्रण की भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है।'' आज के आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य के सन्दर्भ में ये बात और अधिक तर्कसंगत नजर आती है। आज राज्य ने लोक सेवाओं के द्वारा अपने नागरिकों को अपने ऊपर और अधिक से अधिक निर्भर बना लिया है। राज्य के ऊपर बढ़ते हुए कार्यों के बोझ ने प्रशासकीय शक्ति में स्वाभाविक रूप से विस्तार कया है। आज प्रशासन असीमित शक्तियों का केन्द्र बन गया है। लोक प्रशासन और उसका सेवी-वर्ग अपनी शक्तियों का दुरूपयोग ना करे, निरंकुश और अनुत्तरदायी न बने, इसके लिये यह आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित किया जाये और इन पर अंकुश रखा जाये। एक प्रजातांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण रखना और अधिक इसलिये भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जनतंत्र में प्रशासन का संचालन जन-हित के लिये जनता की सहमति से किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रशासन जनता के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तर दायी रहे। दूसरे शब्दों में कहें, तो लोक प्रशासन को जनता के प्रति उत्तर दायी तथा संवेदनशील बनाने हेतु सार्थक तथा प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था का होना आवश्यक है। प्रशासन और उससे सम्बन्धित लोग जब अपनी सत्ता का दुरूपयोग करने लगते हैं, तो बड़े से बड़े कार्यपालक को भी सत्ता से हाथ धोना पड़ता है। अगस्त 1990 के प्रथम सप्ताह में, जब पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो को बर्खास्त किया तो उन पर सबसे प्रमुख आरोप यह लगाया गया था कि बेनजीर, उसके पति आसिफ जरदारी, मां नुसरत भुट्टो एवं अन्य सम्बन्धियों ने अपनी सत्ता एवं शक्ति का पूर्णतः दुरूपयोग किया था तथा उन पर मुकदमा भी चलाया गया। लार्ड एक्टन (Lord Acton) ने इस सन्दर्भ में ठीक ही कहा है कि, ''शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूर्णत: भ्रष्ट करती है।'' अतः लोक प्रशासन पर नियंत्रण की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन पर नियंत्रण के दो और उद्देश्य होते हैं, प्रथम- वित्तीय संसाधनों का दुरूपयोग रोकना एवं द्वितीय- संविधान, कानून, नीतियां तथा निर्धारित नियमों के अनुरूप प्रशासनिक कार्यों का संचालन कराना। सामान्यतः वित्तीय नियंत्रण के लिये वित्त मंत्रालय, नियंत्रक एवं

महालेखा परीक्षक तथा संसदीय प्रक्रियाऐं एवं समितियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेकिन लोक प्रशासन पर नियंत्रण के तीन प्रमुख स्वरूप हैं- संसदीय नियंत्रण/विधायी नियंत्रण, कार्यपालिका नियंत्रण और न्यायिक नियंत्रण। इस प्रकार शासन के इन तीनों अंगों के माध्यम से लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

7.4 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

लोक प्रशासन से सम्बन्धित संगठनों पर नियंत्रण न सिर्फ विधायिका और न्यायपालिका द्वारा स्थापित किया जाता है बल्कि स्वयं कार्यपालिका भी प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करती है। कार्यपालिका नियंत्रण लोक प्रशासन को नियंत्रित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसे आन्तरिक नियंत्रण के नाम से भी जाना जाता है। शासन के अंगों में कार्यपालिका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो कानूनों के क्रियान्वयन तथा कल्याणकारी नीतियों के निर्माण एवं निष्पादन के लिये उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में शासन की नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। उत्तरदायी शासन प्रणाली में शासन के समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर होता है, जो अपने कार्यों के लिये संसद के प्रति उत्तर दायी होती है। यद्यपि प्रशासक स्वयं नीतियों का क्रियान्वयन करते हैं। किन्तु उनके आचरण को कार्यपालिका की आशाओं के अनुरूप बनाये रखने हेतु कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। संसदीय, विधायी तथा न्यायिक नियंत्रण के साथ कार्यपालिका नियंत्रण लोक प्रशासन के कार्यकरण को अत्यधिक प्रभावित करता है। यदि यह कहा जाये, कि कार्यपालिका द्वारा किया जाने वाला नियंत्रण सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है, तो काई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

संसदीय लोकतंत्र वाले देशों में (भारत) कार्यपालिका के दो स्वरूप होते हैं। नाममात्र की कार्यपालिका एवं वास्तविक कार्यपालिका। नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति औपचारिक अथवा संवैधानिक प्रमुख होता है, जबकि राष्ट्रपति की शक्तियों को व्यवहार में काम में लेने के लिए प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् होती है, जिसे वास्तविक कार्यपालिका भी कहते हैं। उत्तरदायी शासन व्यवस्था में विभाग के भीतर होने वाले सम्पूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व विभागीय मंत्री का ही होता है, क्योंकि मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व, संसदीय शासन प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। कार्यपालिका को संसद में जवाब देने के लिये तथा संसदीय उत्तरदायित्व निभाने के लिये ये आवश्यक है, कि कार्यपालिका स्वयं अपने विभाग के कार्यकलापों, उच्चाधिकारियों एवं नीतियों का पर्यवेक्षण और निरीक्षण करे। इसके लिये मंत्री का अपने विभाग पर नियंत्रण होना आवश्यक माना जाता है। आजकल शासन की नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है और नीतियों का क्रियान्वयन सेवी- वर्ग द्वारा किया जाता है। इसलिये सेवी-वर्ग पर, जो शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करते हैं,

कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकता सुस्पष्ट है। प्रो0 एफ0 ए0 निग्रो के अनुसार, ''कार्यपालिका का नियंत्रण विभागीय कार्यवाही के लिये तथा निर्धारित नीति के माध्यम से कार्य कराने के लिये अति आवश्यक है।'' लोक सेवा से सम्बद्ध किसी अधिकारी और कर्मचारी को, उसके द्वारा किये गये कार्यों के उत्तरदायित्वों के लिये कभी संसद के समक्ष नहीं बुलाया जा सकता है। समस्त सफलताओं और असफलताओं का उत्तर दायित्व सम्बन्धित विभाग के मंत्री का होता है। यदि वह संसद में अपने विभाग से सम्बन्धित पूछे गये प्रश्नों के सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे पाता है, और सदन को सन्तुष्ट नहीं कर पाता है, तो ऐसी स्थिति में उसे स्वयं को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है। कभी-कभी सामूहिक उत्तर दायित्व के सिद्धान्त के अनुरूप पूरे मंत्री-मण्डल को ही त्याग-पत्र देना पड़ता है। अतः इतने बड़े उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिये ये स्वाभाविक रूप से आवश्यक हो जाता है कि कार्यपालिका का प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण हो। अतः दूसरे शब्दों में इस बात को इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि संसदीय शासन प्रणाली में मंत्री-परिषद् ही सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न कार्यपालिका होती है, जो अधीनस्थ कार्मिकों (लोक सेवकों) पर नियंत्रण स्थापित करती है। एक प्रकार से कर्मचारी तंत्र, कार्यपालिका का ही अधीनस्थ भाग है जिस पर उच्च स्तरीय कार्यपालिका नियंत्रण करती है। ई0एन0 ग्लेडन ने तीन प्रकार के साधन बताये, जिनके द्वारा कार्यपालिका प्रशासन पर नियंत्रण करती है। प्रथम, मंत्रियों द्वारा नीति निर्माण करके तथा राजनीतिक निर्देशों के द्वारा; द्वितीय, राष्ट्रीय बाजार का संचालन; तथा तृतीय, नियुक्ति का अधिकार। इन तीन साधनों सहित कुछ और प्रमुख साधन हैं, जिनके माध्यम से कार्यपालिका द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। आइये उनका विस्तार से अध्ययन करते हैं-

1. **नीति निर्माण द्वारा नियंत्रण-** शासन व्यवस्था को भंली-भाँति संचालित करने, संवैधानिक लक्ष्यों की प्राप्ति करने तथा सम्बन्धित राजनीतिक दल की घोषणाओं को यथार्थ रूप देने के लिये विभिन्न प्रकार की नीतियाँ बनायी जाती है। मुख्य कार्यपालिका ही मुख्य प्रशासक होती है। इस हैसियत से वह नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। संसदीय प्रणाली में मंत्रिमण्डल नीतियों का निर्माण करके सदन में स्वीकृत कराने के लिये उत्तर दायी है। इसके अलावा विभागीय मंत्री मुख्य कार्यपालिका एवं मंत्रिमण्डल से सलाह लेकर स्वयं भी अनेक नीतियों को निर्धारित करता है, जो सम्बन्धित विभागों में लागू की जाती है।

   विभागीय मंत्री के पास निर्देशन, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण की शक्ति होती है, जिसका प्रयोग वह लोक सेवा से सम्बन्धित विभिन्न विभागों के लिए करता है। प्रत्येक उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपने कार्य के लिये विभाग के मंत्री के प्रति उत्तर दायी होता है। विभागीय मंत्री या मुख्य कार्यपालिका स्वयं

भी, अनेक विभागों के कार्यकलापों का स्थल पर जाकर औचक (अचानक, बिना किसी पूर्व सूचना के) निरीक्षण करता है और दोषी कर्मचारियों एवं अधिकारियों पर तत्काल अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है। मंत्री, विभागीय अधिकारियों को आवश्यक आदेश और निर्देश भी जारी करता है। समस्त विभागीय अधिकारी और कर्मचारी, मंत्री के निर्देशन और नियंत्रण में कार्य करते हैं। मंत्री उच्चाधिकारियों का एक शाखा से दूसरी शाखा में तबादला कर सकता है। मंत्री किसी भी फाईल को मंगवाकर उससे सम्बन्धित समस्त कार्यवाहियों की जाँच कर सकता है। तात्पर्य यह है कि मंत्री विभाग पर पूरा नियंत्रण रखता है। अर्थात् कोई भी प्रशासनिक अधिकारी या कर्मचारी मंत्रिपरिषद् द्वारा बनायी गई नीतियों का उल्लंघन नहीं कर सकता हैं और इस प्रकार प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में सरकार की नीतियाँ महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होती हैं।

2. **नियुक्ति तथा निष्कासन के द्वारा नियंत्रण-** 'नियुक्ति' एवं 'विमुक्ति' अर्थात् निष्कासन भी प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। मंत्री, जो अपने विभाग का प्रमुख होता है अपने सचिव और विभागाध्यक्ष का चयन स्वयं करता हैं, ताकि उसके साथ वह स्वयं सामंजस्यपूर्ण वातावरण में काम कर सके। लोक सेवा के कार्मिकों की भर्ती का कार्य प्रायः संघ लोक सेवा आयोग और राज्यों के लोक सेवा आयोग द्वारा ही किया जाता है, परन्तु भर्ती के नियम कार्यपालिका द्वारा निर्देशित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न पदों के लिये प्रत्याशी में क्या योग्यता होनी चाहिये? कितना अनुभव होना चाहिये? और आयु क्या होनी चाहिये? आदि सभी बातों का निर्धारण भी मुख्य कार्यपालिका के द्वारा ही किया जाता है। जिस प्रकार भर्ती या नियुक्ति से सम्बन्धित सभी तत्वों का निर्धारण मुख्य कार्यपालिका द्वारा किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इसे अर्थात् विभागीय मंत्री को कई प्रकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को निष्कासित करने का भी अधिकार होता हैं। या यूँ कहें कि कार्यपालिका को लोक-सेवकों को निष्कासित करने का अधिकार भी होता है। अनुच्छेद 310(1) के अनुसार, संघ एवं राज्यों के लोक-सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करते हैं। अर्थात् लोक-सेवकों की नियुक्ति एवं निष्कासन में कार्यपालिका को अन्तिम शक्ति प्राप्त है। यद्यपि राष्ट्रपति या राज्यपाल अपनी इच्छा से किसी भी कार्मिक को बिना वजह निष्कासित नहीं करते हैं, क्योंकि संविधान लोक-सेवकों को संरक्षण भी प्रदान करता है। अतः नियुक्ति और निष्कासन के अस्त्र के द्वारा मंत्री विभाग पर प्रभावकारी नियंत्रण रखता है।

अमेरिका में यद्यपि उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये राष्ट्रपति को सीनेट की अनुमति लेना जरूरी है, लेकिन उसको हटाने में वह स्वतंत्र होता है। वहाँ कार्मिक प्रबन्ध कार्यालय (O.P.M.) कार्मिक प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः कहा जा सकता है कि नियुक्ति और निष्कासन के अस्त्र द्वारा मुख्य कार्यपालिका प्रशासन पर या दूसरे शब्दों में मंत्री अपने विभाग पर पूरा एवं प्रभावशाली नियंत्रण रखता हैं।

3. **बजट प्रणाली के द्वारा नियंत्रण-** बजट, आधुनिक प्रशासनिक संस्थान की प्राण वायु है। इस दृष्टि से बजट को प्रशासन पर मुख्य कार्यपालिका के कठोर नियंत्रण स्थापित करने के अस्त्र के तौर पर भी देखा जाता है। बजट निर्माण प्रत्येक प्रशासनिक संगठनों द्वारा किया जाता है, किन्तु इसका अन्तिम प्रारुप, वित्तीय कार्य-प्रणाली तथा आर्थिक नीतियाँ, मंत्रिपरिषद् द्वारा ही स्वीकृत होती हैं। या दूसरे शब्दों में कहें, तो प्रत्येक विभाग को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिये कार्यपालिका पर ही निर्भर रहना पड़ता है। कार्यपालिका ही बजट तैयार करती है, व्यय को निर्धारित करती है तथा आय के स्त्रोतों की भी व्याख्या करती है। विभागों को राशि आवंटित करने का अधिकार भी मुख्य कार्यपालिका के पास ही होता हैं। इस आवंटित धनराशि के भीतर ही उच्चाधिकारी अपने कार्यों का संचालन करते हैं, या यूँ कह सकते हैं कि धन को इन वित्तीय नियमों के अनुसार ही खर्च किया जा सकता है। विभागों की सम्पूर्ण आय-व्यय का लेखा-जोखा रखा जाता है और उन लेखों का लेखा-परीक्षण भी होता हैं। अतः इस प्रकार मंत्रिपरिषद् द्वारा स्वीकृत बजट ही व्यवस्थापिका में प्रस्तुत किया जाता है और वही स्वीकृत होता है। इसी बजट की क्रियान्विति प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा की जाती है। इस दिशा में वित्त मंत्रालय भी बहुत प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका में होता है। बजट द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण से मुख्य तत्वों को बिन्दुवार कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है-

- सैद्धान्तिक रूप से नीतियों, कार्यक्रमों, योजनाओं का अनुमोदन बजट के अन्तर्गत होता हैं।
- बजट में प्रावधानित पूर्वानुमानों की स्वीकृति।
- प्रत्यायोजित अधिकारों के तहत किये गये खर्चों की स्वीकृति।
- अनुदानों का पुनर्विनियोग करके अर्थात् अनुदान राशि का शीर्ष बदलकर जिससे एक मद की राशि दूसरे मद में व्यय की जा सके।
- एक वित्तीय सलाहकार के माध्यम से वित्तीय सलाह उपलब्ध करवाना।
- व्यय-प्राधिकारियों के लिये वित्तीय आचार संहिता का निर्धारण करके।

- बजट के क्रियान्वयन का लेखांकन और लेखा परीक्षण करके।

4. **प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नियंत्रण-** आजकल विधायिका के कार्यकलापों में वृद्धि होने के कारण व्यवस्थापिका अनेक मामलों में विधि-निर्माण का कार्य कार्यपालिका को सौंप देती हैं। कार्यपालिका को विधि-निर्माण का कार्य सौंपे जाने का एक और कारण ये भी होता है, कि व्यवथापिका के पास ना तो पर्याप्त समय होता है और ना ही तकनीकी मामलों का ज्ञान। ऐसे में जब विधायिका के द्वारा कानून निर्माण की शक्ति किसी भी कारण से, कार्यपालिका को सौंप दी जाती है, तो इसे प्रदत्त विधायन या व्यवस्थापन कहा जाता है। प्रदत्त व्यवस्थापन की स्थिति में, विधायिका कानून का एक मोटा प्रारुप या ढाँचा तैयार करके उसकी सम्बन्धित बारीकियों पर विधि निर्माण करने का कार्य या अधिकार कार्यपालिका को दे देती हैं। इसके उपरान्त कार्यपालिका विधायिका द्वारा प्राप्त ढाँचे के आधार पर अपनी उपयोगिताओं और आवश्यकताओं के अनुसार विधि-निर्माण करती हैं। इस विधि-निर्माण में बहुत से विभागों के संगठन, अधिकारियों की नियुक्ति एवं सेवा शर्तें, अधिकार-क्षेत्र आदि कर्तव्यों को भी निर्धारित किया जाता है। भारत तथा कई अन्य देशों में यह भी प्रावधान है, कि ऐसे समय में जब सदन का सत्र नहीं चल रहा होता है तो अनुच्छेद-123 के तहत कार्यपालिका (राष्ट्रपति) अध्यादेश भी जारी कर सकता हैं। लेकिन यह अध्यादेश अस्थायी होता हैं। अगर अध्यादेश को निर्धारित समय के भीतर विधायिका द्वारा पास नहीं कराया जाता हैं तो वे अप्रभावी हो जाते हैं। इस प्रकार प्रदत्त विधायन तथा कार्यपालिका द्वारा जारी किया गया अध्यादेश भी प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण तरीका बन जाता है।
5. **कर्मचारी संघों से सहयोग-** विभिन्न विभागीय पद-स्थिति, तकनीकी योजनाओं तथा कार्य-प्रणाली के आधार पर लोक-सेवकों के अनेक संघ या समूह बन जाते हैं। इनको कार्मिक संघों की संज्ञा दी जाती हैं। ये कार्मिक संघ अपने सदस्यों के विकास एवं कल्याण के प्रति सदा समर्पित होते हैं। इन कार्मिक-संघो को मान्यता देना तथा पंजीकृत करना सब कुछ सरकार के अधीन होता है। कार्यपालिका के द्वारा समय-समय पर इन कार्मिक-संघों के द्वारा कार्मिकों को नियंत्रित भी कराया जा सकता हैं।
6. **लोक सेवा आचार-संहिता-** लोक-प्रशासन के विभिन्न विभागों में काम करने वाले सभी लोक सेवकों या सरकारी कर्मचारियों के लिये एक आचार-संहिता बनी होती हैं। इस आचार-संहिता में लोक सेवकों के आचार-व्यवहार तथा कार्य-प्रणाली को अनुशासित, प्रतिबद्ध एवं जवाबदेह बनाने के कुछ प्रावधान किये गये होते हैं। इस आचार-संहिता का उल्लंघन करना लोक सेवकों के लिये दण्डनीय माना जाता है तथा

ऐसा करने पर उन्हें अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ता हैं। ऐसे महत्वपूर्ण केन्द्रीय आचरण नियम है- अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम-1954, केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम-1955, रेलवे सेवा (आचरण) नियम-1956। इस प्रकार लोक सेवकों को नियंत्रित करने में ये आचार-संहिता भी एक साधन के तौर पर कार्य करती हैं।

7. **लोकमत से अपील-** लोकतंत्र में जनता सम्प्रभु होती हैं। ऐसा इसलिये क्योंकि, लोकतंत्र में ऐसा माना जाता है कि शासन-सत्ता की बागडोर अप्रत्यक्ष रूप से जनता के हाथ में होती है। सरकार के द्वारा जिस प्रकार के कार्य किये जाते हैं, उनकी जो नीतियाँ होती हैं तथा जिस प्रकार की उनकी कार्य-प्रणाली होती हैं, इन सब से जनता प्रभावित होती रहती हैं। प्रशासनिक तंत्र में भी यदि किसी प्रकार की बुराइयाँ या व्याधियाँ व्याप्त होती हैं तो अनेक बार कार्यपालिका के द्वारा भी जनता से अपील की जाती है कि वो सरकार का इन व्याधियों से निपटने में साथ दे या सहयोग करे। सरकार या कार्यपालिका द्वारा जनता से की गयी ये अपीलें भी व्याप्क रूप से जनता के व्यवहार को प्रभावित करती हैं तथा निरंकुश नौकरशाही को इस बात का भय बना रहता हैं कि उनके अनियंत्रित होने पर जनता भी उन्हें कटघरे में खड़ा कर सकती है।
8. **स्टॉफ अभिकरणों द्वारा-** प्रशासन सुधार विभाग, योजना आयोग, मंत्रिमण्डलीय सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय आदि महत्वपूर्ण स्टॉफ अभिकरण भारत में कार्यरत हैं। इनकी सहायता से भी कार्यपालिका प्रशासन पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण आरोपित करती हैं और उनमें परस्पर समन्वय बनाने का प्रयन्त करती हैं।
9. **कर्मचारी निरीक्षण एकक-** प्रशासनिक कार्यकुशलता बनाये रखते हुए, कर्मचारियों की संख्या में कमी लाने तथा कार्य निष्पादन मानदंड और कार्य मानक विकसित करने के उद्देश्य से कर्मचारी निरीक्षण एकक की स्थापना सन् 1964 में की गयी थी। बदले माहौल में और सरकार द्वारा बेहतर शासन तथा सेवाओं के परिष्कृत वितरण पर जोर दिये जाने को देखते हुए कर्मचारी निरीक्षण एकक की भूमिका को पुनर्निधारित किया गया है। इस एकक को अब इस तरह से तैयार किया गया है, कि वह सम्बन्धित मंत्रालयों और स्वायत्त सेवाओं को संगठनात्मक सुधार हेतु प्रेरित कर सकें। इस प्रकार उपरोक्त वर्णित साधनों के साथ ही डॉ0 अवस्थी एवं माहेश्वरी ने भी कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिये 06 प्रकार के साधन बताये हैं- नियुक्ति एवं निष्कासन का अधिकार, विधि-निर्माण एवं अध्यादेश आदि के अधिकार, लोक-सेवा संहिता, कर्मचारी-वर्ग के समुदाय का अभिकरण, बजट और लोकमत से अपील।

7.5 प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की समस्याऐं

इस प्रकार आपने अब तक जाना कि, प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों ही रूपों में देखने को मिलता है। किन्तु समस्या यह उठती है कि क्या यह नियंत्रण प्रभावी बन पाता है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण में व्याप्त व्याधियों को जानना होगा, जिनका वर्णन कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है-

1. **मंत्रियों का चयन राजनीति के आधार पर-** भारतीय राजनीति की एक विशेषता ये है कि यहाँ पर मंत्रियों को जब मंत्रिमण्डल में शामिल किया जाता है, तो उनको कौनसा विभाग मिलेगा यह महज एक संयोग की बात होती है। मंत्रियों का चयन राजनीतिक आधार पर होता है। इसमें उनकी योग्यता की कोई भूमिका नहीं होती है और ना ही अनुभव ही इसका आधार होता है। मंत्री पद प्राप्त करने के लिये उन्हें गुटबन्दी और कई प्रकार की तिकड़मों का सहारा लेना पड़ता है। प्रधानमंत्री की इच्छा पर उनका मंत्री बनना तथा विभागों का बँटवारा निर्भर करता है। गठबन्धन की सरकारों में तो इस प्रकार की तिकड़म और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अतः राजनीतिक आधार पर चयनित, अधिकांशतः अयोग्य एवं अनुभवहीन माने जाने वाले मंत्री संयोगवश मिले मंत्रालय में कार्मिकों को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने में सदा ही सफल रहते हैं, ऐसा जरूरी नहीं है।
2. **मंत्री पेशवर प्रशासक नहीं-** मंत्री, पेशेवर प्रशासक नहीं होते हैं और ना ही वो किसी विषय के विशेषज्ञ होते हैं। तकनीकी ज्ञान का भी उनमें अभाव पाया जाता हैं। इस कारण उन्हें अधिकारी वर्ग द्वारा बताये गये आंकड़ों और तरीकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मंत्रियों को विभाग सौंपे जाने के बाद उनको कोई प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता है। फलतः ये अपने कार्यों के निष्पादन के लिये पूर्णरूप से नौकरशाहों पर निर्भर करते हैं। अतः ये स्थिति भी शिथिल नियंत्रण की ओर ही इशारा करती है।
3. **राजनेताओं के पास समय का अभाव-** राजेनता अर्थात् मंत्रीगण अपनी राजनीतिक गतिविधियों में इतने व्यस्त होते हैं, कि उनके पास विभागीय कार्यों को समझने हेतु समय ही नहीं होता। फलस्वरूप वो अपने कार्यकाल या सत्ता में बने रहने के दौरान भी वो केवल विपक्षी दलों के साथ राजनीतिक दाव-पेंचों तथा उठा-पटक में ही लगे रहते हैं, प्रशासन के कार्यों के प्रति अपना ज्ञान तथा तकनीक विकसित नहीं करते। फलस्वरूप उनके द्वारा स्थापित नियंत्रण भी अप्रभावी ही रहता हैं।

4. **सरकारों का अस्थायित्व-** कार्यापालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण को शिथिल तथा कमजोर बनाने में सरकार का अस्थायी होना भी एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। कई बार सरकारों को किसी भी कारण से अपने निर्धारित समय से पूर्व सत्ता से जाना पड़ता है और उनका अनुभव, ज्ञान सब अधूरा रह जाता है। अतः वे अपने कार्यकाल का लाभ उठा कर भी नियंत्रण की प्रभावी तकनीक का ज्ञान नहीं ले पाते हैं।
5. **मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन-** मंत्रियों के विभागों का परिवर्तन भी एक ऐसा तथ्य है, जो कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण के मार्ग में बांधा बन जाते हैं। उदाहरण के तौर पर शिक्षा विभाग का मंत्री दो-चार महीनों या एक वर्ष में जब तक शिक्षा नीति को समझने का प्रयत्न करता है और कुछ नया करना चाहता है तो अचानक से उसको पट्रोलियम और रसायन मंत्रालय में दे दिया जाता हैं। ऐसे में इनके किसी भी मंत्रालय में सुधार, नियंत्रण, नयी तकनीक आदि सब के सुझाव और विचार, व्यवहार में आने से रह जाते हैं और उन्हें नये कार्य को नये सिरे से प्रारम्भ करना पड़ता है।
6. **मंत्रियों के विपरीत लोक-सेवकों का ज्यादा योग्य और कुशल होना-** जैसा कि आप जानते होंगे, कि राजनेताओं के लिये किसी प्रकार की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता की कोई अनिवार्यता नहीं होती हैं, अतः उनमें तकनीकी ज्ञान और कुशलता का अभाव पाया जाता हैं। वहीं दूसरी ओर लोक-प्रशासन के उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपनी योग्यता, ज्ञान और कुशलता के आधार पर ही सेवा में आते हैं। अतः इस बात को आसानी से समझा जा सकता है, कि लोक-सेवकों में राजनेताओं से ज्यादा ज्ञान और अनुभव दोनों ही पाया जाता हैं। ऐसी स्थिति में मंत्री सदैव अधिकारियों पर ही आश्रित रहते हैं। साथ ही लोक-सेवक मंत्रियों को ज्यादा जागरूक बनाने की कोई कोशिश भी नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता है, कि यदि मंत्री को ज्यादा जागरूक बना दिया गया या ज्यादा ज्ञान दे दिया गया तो इससे ना केवल उनके प्रभाव में कमी आयेगी, बल्कि मंत्रियों का उन पर दबाव तथा हस्तक्षेप भी बढ़ जायेगा। इस कारण अनेक बार उच्चाधिकारी मंत्री को जानकारी भी उतनी ही देते हैं, जिसके कारण वे बराबर विभाग के अधिकारियों पर आश्रित ही रहें एवं उनका नियंत्रण भी शिथिल ही रहे।

उपयुक्त सभी सीमाओं और समस्याओं को देखने के बाद ये बात स्पष्ट हो जाती है कि मंत्रियों का विभागों पर प्रभावी नियंत्रण अनेक कारणों से स्थापित नहीं हो पाता हैं। इसी कारण ये कहा जाता है, कि सरकार राजनीतिज्ञों के द्वारा नहीं बल्कि नौकरशाही के द्वारा चलती हैं। इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में सिडनी लो ने कहा है कि, ''वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए एक नौजवान को अंकगणित की प्रतियोगी परीक्षा में पास होना पड़ता हैं, किन्तु वित्त-मंत्री अधेड़ उम्र का ऐसा सांसारिक व्यक्ति भी हो सकता है, जो अंकों के विषय में उस थोड़ी

बहुत जानकारी को भी भूल चुका है, जो उसने ईटन अथवा ऑक्सफोर्ड में प्राप्त की। उस दशमलवों में खजाने का लेखा जब उसके सामने पहली बार रखा जाता है, तब वह उन छोटे-छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिये उत्सुक हो जाता है।'' लेकिन इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी आज सन्तोषजनक स्थिति उभर कर सामने आने लगी है। मंत्री-मण्डल में विशेषज्ञों को स्थान दिया जाने लगा है। प्राध्यापक को शिक्षा मंत्री, अर्थशास्त्री को वित्त-मंत्री तथा वैज्ञानिक को विज्ञान एवं तकनीकी विभाग सौंपे जाने का प्रयास किया जा रहा हैं, जो विभागीय प्रशासन पर नियंत्रण करने में सक्षम हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. कार्यपालिका द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण का साधन क्या है?
2. 'कर्मचारी निरीक्षण एकक' की स्थापना कौन से वर्ष में की गयी?
3. विधि निर्माण के कार्य को जब कार्यपालिका को सौंप दिया जाता है तो वो क्या कहलाता है?
4. संविधान के कौन से अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है?

7.6 सारांश

इस अध्याय में आपने जाना कि संसदीय नियंत्रण तथा न्यायिक नियंत्रण के साथ कार्यपालिका नियंत्रण भी लोक-प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता हैं और नीतियों का क्रियान्वयन सेवी-वर्ग द्वारा होता हैं। चूँकि कार्यपालिका अपने समस्त कार्यों के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होती है, अतः शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करने वाले सेवी वर्ग पर नियंत्रण आवश्यक होता हैं। मुख्य कार्यपालिका ही मुख्य प्रशासक होती हैं और नीति-निर्माण, सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति तथा निष्कासन, बजट प्रणाली एवं प्रदत्त व्यवस्थापन आदि तकनीकों से नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश करती हैं। परन्तु मंत्रियों के पास ज्ञान, समय, कुशलता आदि का अभाव कई ऐसे कारण होते हैं, जिनके कारण वो प्रशासन पर अपने नियंत्रण को प्रभावी नहीं बना सकते हैं। इसी कारण ऐसा भी कहा जाता है कि सरकार राजनीतिज्ञ से नहीं बल्कि नौकरशाह के द्वारा चलायी जाती हैं। सारांशतः कार्यपालिका के द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने की अनेक सीमाएँ हो सकती हैं, किन्तु निष्पक्ष एवं संवेदनशक्ति कार्यपालिका प्रभावी भूमिका निभाने में सक्षम होती हैं।

7.7 शब्दावली

संवेदनशील- भावुक या स्वीकार करने वाला, विशेषज्ञ- किसी विषय या क्षेत्र में विशेष जानकार, पेशेवर- व्यवासाय या काम, परिष्कृत- शुद्ध या सुधरा हुआ।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बजट, नियुक्ति और आचार संहिता , **2.** 1964, **3.** प्रदत्त व्यवस्थापन, **4.** अनुच्छेद- 123

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर0के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर- 2001

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2003

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिये।
2. प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकताओं और सीमाओं का वर्णन कीजिये।

इकाई- 8 प्रशासन पर संसदीय(विधायी) नियंत्रण

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 लोक प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण

8.2.1 संसद की नियमित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रण

8.2.2 संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण

8.2.2.1 लोक लेखा समिति

8.2.2.2 अनुमान समिति या प्राक्लन समिति

8.2.2.3 लोक उपक्रमों पर समिति

8.3 प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की समस्याऐं

8.4 सारांश

8.5 शब्दावली

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र में लोक प्रशासन विधायिका के प्रति अनिवार्य रूप से उत्तर दायी होता है। जनता के प्रतिनिधि ही व्यवस्थापिका में होते हैं, वे जनता की इच्छा और आवश्यकता को ध्यान में रखकर नीतियों को निर्धारित करते हैं और व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन कार्यपालिका के द्वारा किया जाता है। अतएव विधायिक के लिये ये अनिवार्य हो जाता है, कि वह लोक प्रशासन को नियंत्रित कर यह सुनिश्चित करें कि वह सार्वजनिक नीतियों को भली-भाँति सम्पादित करे। अपने इसी उत्तर दायित्व की पूर्ति हेतु संसदात्मक शासन प्रणाली में संसद को निषेधात्मक एवं विधेयात्मक दोनों ही प्रकार के कदम उठाने होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के उपकरणों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का उध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता के महत्व को समझ पायेंगे।
- संसदीय नियंत्रण कितने प्रकार का होता है? इस संबंध में जान पायेंगे।
- संसदीय नियंत्रण की सीमाओं का विस्तृत अध्ययन कर पायेंगे।

8.2 लोक प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण

संसद या विधायिका जन प्रतिनिधि संस्था होती है, जो जनता की इच्छाओं को कानून के रूप में व्यक्त करती है। संसदीय शासन-प्रणाली में तो कार्यपालिका सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तर दायी होती है। विधायिका विधि का निर्माण करती है, विचार-विमर्श करती है और साथ ही साथ प्रशासन पर नियंत्रण रखने का काम भी करती है। जनता के प्रतिनिधि व्यवस्थापिका में होते हैं, वे जनता की इच्छा और आवश्यकता को ध्यान में रखकर नीतियों को निर्धारित करते हैं और व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन मंत्रियों के माध्यम से प्रशासन ही करता है। प्रशासन की किसी असफलता, अकार्यकुशलता, विलम्ब अथवा अनियमितता के लिये अन्ततोगत्वा मंत्री-परिषद ही उत्तर दायी होती है। इन सब आरोपों को उन्हें अपने ऊपर ही लेना पड़ता है, जिसका दण्ड साधारण भी हो सकता है। जैसे- अप्रसन्नता व्यक्त करना और कठोर भी हो सकता है जिसमें मंत्री-परिषद को हटाया भी जा सकता है। अतः प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता का पहला महत्वपूर्ण कारण प्रशासन की जागरूकता, ईमानदारी, कार्यकुशलता आदि को बनाये रखना होता है और इसके लिये मंत्री-परिषद को स्वयं को सतर्क रहना पड़ता है। अतएव दूसरे शब्दों में विधायिका के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि वह देखे कि लोक प्रशासन सार्वजनिक नीतियों को ढंग से क्रियान्वित कर पा रहे हैं अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता का दूसरा महत्वपूर्ण कारक शासकीय क्रियाओं में उचित समन्वय नहीं रह पाना है। एक ही कार्य के विभिन्न पहलुओं से जब अनेक विभाग सम्बन्धित हो जाते हैं तो नौकरशाही का विकृत रूप सामने आता है, जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता को कठिनाईयों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अतः प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण अपरिहार्य है। संसद के द्वारा यह नियंत्रण प्रायः मुख्य कार्यपालिका के माध्यम से रखा जाता है। इसकी प्रकृति राजनीतिक होती है। इस कार्य में संसद की विभिन्न समितियाँ भी योगदान करती हैं।

यहाँ हम संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायी अथवा संसदीय नियंत्रण के साधनों के बारे में विस्तृत विवेचना करेंगे।

भारत में राष्ट्रपति, लोकसभा (निम्न सदन) तथा राज्य सभा (उच्च सदन) मिलकर संसद कहलाते हैं। संसदीय नियंत्रण को विधायी नियंत्रण भी कहा जाता है, क्योंकि देश के समस्त कानूनों या विधानों को स्वीकृति संसद के द्वारा प्राप्त होती है। संसदीय नियंत्रण के दो प्रकार होते हैं- संसद की नियमित प्रक्रियाओं के द्वारा नियंत्रण और संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण।

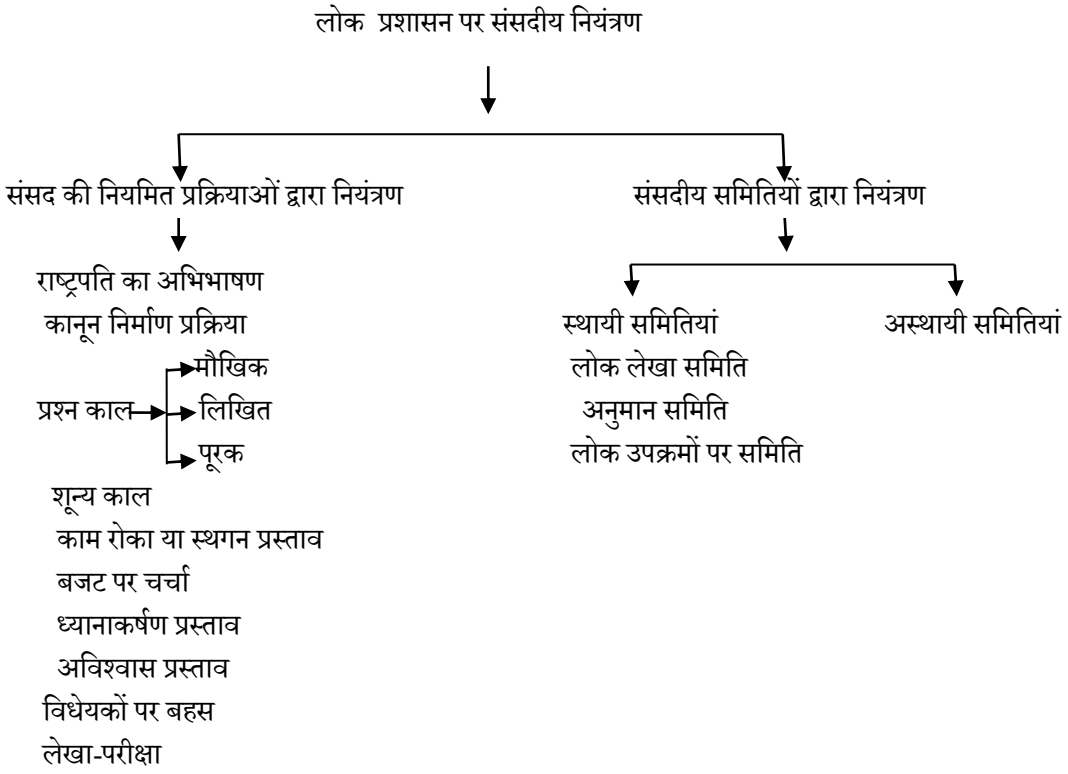

इस प्रकार ऊपर बने आरेख से आप आसानी से समझ गये होंगे कि, संसदीय शासन प्रणाली (यहाँ हम विशेष तौर पर भारतीय संदर्भ को ध्यान में रखकर चर्चा करेंगे) में, प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की स्थापना किस प्रकार की जाती है।

8.2.1 संसद की नियमित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रण

लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों में विधायी नियंत्रण एक महत्वपूर्ण साधन है, जो सरकार के कानूनों, नीतियों तथा बजट की स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य कई तरीकों से लोक प्रशासन को सजग, सक्रिय एवं जवाबदेह बनाये रखने में सहायक है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, विधायिका में बैठकर न केवल देश का भविष्य तय करते हैं, बल्कि प्रवर्तित प्रशासनिक प्रक्रियाओं की भी समीक्षा करते हैं। जन-साधारण की इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा समस्याओं को राष्ट्र के सम्मुख लाने तथा उन पर सार्थक बहस करने का एकमात्र सशक्त मंत्र विधायिका ही है। प्रत्येक देश

विशेषतः संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में विपक्षी राजनीतिक पार्टियाँ, सत्तारूढ़ सरकार को आये दिन कटघरे में खड़ा कर, सन्तोषजनक उत्तर मांगती हैं, क्योंकि वास्तविक कार्यपालिका सदन के प्रति जवाबदेह भी होती है। भारतीय संसदात्मक शासन प्रणाली में कतिपय ऐसी प्रक्रियाऐं हैं, जो लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में प्रभावी सिद्ध होती हैं, इनका वर्णन कुछ इस प्रकार है-

1. **राष्ट्रपति का अभिभाषण (President Speech)-** भारत, ब्रिटेन, कनाडा, इत्यादि संसदीय प्रणाली वाले देशों में राजाध्यक्ष के भाषण से संसद का प्रत्येक नया सत्र आरम्भ होता है। राजाध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति के इस अभिभाषण में शासन की प्रमुख नीतियों, वर्तमान एवं भावी योजनाओं, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के प्रति सरकार के दृष्टिकोणों एवं प्रशासनिक कदमों की चर्चा होती है। इस अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर वाद-विवाद करने के लिये सदन को तीन-चार दिन का समय दिया जाता है। इस दौरान विपक्षी दलों के सदस्य सरकार के कार्यकाल तथा नीतियों की आलोचना करने एवं सामयिक समस्याओं को उजागर करने में पर्याप्त रूचि प्रदर्शित करते हैं। अभिभाषण में सत्तारूढ़ दल की कार्यशैली का ही वर्णन होता है, जिसमें अनेक ऐसे बिन्दु मिल जाते हैं जिन पर पर्याप्त चर्चा हो जाती है। इस सबके फलस्वरूप जनमत जागरूक होता है और प्रशासन सतर्क होता है।
2. **कानून-निर्माण प्रक्रिया (Law Making Process)-** प्रमुख रूप से विधायिका कानून का निर्माण करती है। विधायिका द्वारा निर्मित कानून के दायरे में रहकर ही प्रशासन उसे क्रियान्वित करते हैं। विधायिका द्वारा अनेक ऐसे कानूनों का निर्माण किया जाता है, जिसमें प्रशासन के संगठन, कार्यों, नियमों तथा अधिकार-क्षेत्रों का निर्धारण कानून में ही कर दिया जाता है। नये कानूनों और नये कार्यों के आधार पर नये विभाग भी खोलने पड़ते हैं। इसके साथ ही विधायिका प्रशासकीय नीतियों का निर्धारण भी समय-समय पर करती रहती है। कुछ मामलों में प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) के द्वारा विधायिका कानून-निर्माण की शक्ति कार्यपालिका को देती अवश्य है, परन्तु कार्यपालिका व्यवस्थापिका द्वारा प्रदत्त सीमा के अन्दर ही नियम बनाती है।
3. **प्रश्न काल (Question Hour)-** संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों में मंत्री-मण्डल सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तर दायी होता है। प्रत्येक संसद सदस्य को यह अधिकार होता है कि वो किसी भी प्रकार की समस्या और अव्यवस्था के सन्दर्भ में सम्बन्धित मंत्री से प्रश्न पूछे। इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने की प्रक्रिया संसदीय नियंत्रण का सबसे लोकप्रिय माध्यम माना जाता है। संसद में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर पाने का अधिकार प्रत्येक संसद सदस्य को है। मंत्री अपने अधीनस्थों की सहायता से पूछे गये प्रश्नों का

उत्तर तैयार करता है और सदन में उसका जवाब प्रस्तुत करता है। इसी कारण जब तक संसद या राज्य विधान-मण्डलों का सत्र चल रहा होता है, तब तक कोई भी प्रशासनिक अधिकारी शिथिलता प्रदर्शित नहीं करता। यद्यपि मंत्री किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये बाध्य नहीं है, किन्तु वह अपने इस विशेषाधिकार का प्रयोग प्रायः कम या नहीं के बराबर करता है। ऐसा इसलिय, क्योंकि इससे उसकी जनता के समक्ष छवि खराब होने का भय रहता है। रॉब्सन ने प्रश्न पूछे जाने की परम्परा की महत्ता को बताते हुए कहा कि ''सदन में खुले रूप में मंत्रियों से जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण असैनिक सेवा को चौकन्ना रहना पड़ता है।'' इसी प्रकार ह्यू गैट्सकिल (Hugh Gaitskell) ने लिखा है कि ''कोई भी व्यक्ति जिसने किसी भी विभाग में कार्य किया है वह मेरी इस बात से सहमत होगा कि एक मुख्य कारण जिसकी वजह से सेवी-वर्ग अत्यन्त सतर्कता बरतता है तथा अपना समस्त विवरण सावधानी से रखता है, वह है संसद में पूछे जाने वाले प्रश्न का उसे भय।''

संसद की कार्यवाही के प्रत्येक दिन के प्रारम्भ का एक घण्टा प्रश्न पूछने के लिये ही निर्धारित किया जाता है। औसतन तीन मौखिक प्रश्न प्रतिदिन पूछे जाते हैं। जिनका उत्तर दिया जाता है। यद्यपि सभी प्रश्न गम्भीर तथा तात्कालिक महत्व के नहीं होते हैं, परन्तु सामान्यतया प्रश्न पूछने के लिये सम्बन्धित मंत्री को 10 दिन का समय देना आवश्यक है, किन्तु गम्भीर तथा तत्कालिक महत्व के प्रश्नों पर यह बाध्यता लागू नहीं होती है। संसद में सदस्य तीन प्रकार के प्रश्न पूछते हैं- मौखिक, पूरक और लिखित। कई बार इनको तीन श्रेणियों में विभक्त करके भी समझाया जाता है। जैसे- तारांकित (Starred), अतांराकित (Unstarred) तथा अल्पसूचना प्रश्न। यह सदन के अध्यक्ष या सभापति के विवेक पर निर्भर करता है कि वह किसी प्रश्न को तारांकित श्रेणी में रखें या अतारांकित श्रेणी में। तारांकित प्रश्नों पर तारा (स्टार *) अंकित होता है और ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर सदन में मौखिक रूप से दिया जाता है। समस्त सार्थक मुद्दों पर कम विस्तार वाले प्रश्नों को इसी श्रेणी में रखा जाता है। अतांराकित प्रश्नों पर 'तारा' नहीं लगा होता है और उनका उत्तर लिखित रूप से दिया जाता है। ज्यादा विस्तार और जटिल आंकड़े वाले प्रश्नों को इस श्रेणी में रखा जाता है। तारांकित और अतारांकित प्रश्नों के अलावा अल्प सूचना प्रश्न भी किये जाते हैं। ये वो प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर निर्धारित न्यूनतम अवधि से कम दिनों की सूचना पर मौखिक रूप से दिया जाता है। इन तीनों श्रेणियों के अलावा प्रश्नों की एक और श्रेणी होती है जिसे पूरक या अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्न भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में ये जान लीजिये की वैसे तो इन दो श्रेणियों में पूछे गये प्रश्नों के आधार पर मंत्री की जवाबदेयता निर्धारित हो जाती है और प्रश्न-काल के दौरान किसी प्रश्न या उत्तर

पर वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं होती। लेकिन उत्तर के सम्बन्ध में किसी तथ्य के स्पष्टीकरण की जरूरत पर अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्नों के लिये अध्यक्ष/सभापति से अनुमति ले सकते हैं। जिस सदस्य के नाम पर प्रश्न दर्ज होता है, वह दो अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है। अन्य सदस्य जिन्हें अध्यक्ष अनुमति दे, एक-एक पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं।

भारत में सन् 1891 में प्रथम बार विधायिका में प्रश्न पूछने तथा 1909 में पूरक प्रश्न पूछने की परम्परा की शुरूआत हुई, जो आज एक सशक्त संसदीय प्रक्रिया बन चुकी है। इस प्रक्रिया के द्वारा प्रशासनिक-तंत्र पर सार्थक नियंत्रण स्थापित किया जा सका है। भारत में फिरोज गांधी द्वारा पूछे गये एक प्रश्न में- मूंदड़ा कांड (1957) को उजागर कर, तत्कालीन वित्तमंत्री टी0टी0 कृष्णमूर्ति को त्यागपत्र के लिये विवश कर दिया था। इस कांड में कानपुर के उद्योगपति हरिदास मूंदड़ा ने अपनी कम्पनी के शेयरों के भाव बढ़ाने के लिये पालपुड़ (1947) के समय खरीदी गयी जीपों के घोटाले का प्रश्न 1951 में भी खूब चर्चित रहा। सन् 1947 में पांडिचेरी के एक व्यापारी द्वारा 31 सांसदों के फर्जी हस्ताक्षर का उद्योग मंत्रालय से आयात लाइसेंस का प्रकरण भी संसदीय प्रश्नों के माध्यम से जनता के समक्ष आया था। इसके अलावा 1956 में जीवन बीमा निगम से सम्बन्धित एक ऐसा प्रश्न पूछा गया, जिसके फलस्वरूप इतना विवाद बढ़ा कि तत्कालीन वित्तमंत्री को त्याग देना पड़ा था।

4. **शून्य काल (Zero Hour)-** प्रश्न काल की समाप्ति के बाद और संसदीय कार्यवाही शुरू होने से पूर्व जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वह शून्य काल कहलाता है। प्रश्न काल में सभी इच्छुक सदस्य जनहित सम्बन्धित प्रश्न हीं पूछ पाते हैं, अतः वे प्रश्न काल के पश्चात भी चर्चा करते रहते हैं। इसी कारण नवम्बर, 1966 से शून्य काल शुरू हुआ। प्रश्न काल का घण्टा समाप्त होते ही शून्यकाल शुरू हो जाता है, जिसमें संसद समसामयिक विषयों पर बिना किसी पूर्व सूचना के मंत्रियों से प्रश्न पूछते हैं। यह समय कार्यपालिका को विवादित मुद्दों पर घेरने तथा सचेत करने का होता है। चौथी लोकसभा (1967-70) के समय शून्य काल का महत्व अत्यधिक था, किन्तु आठवीं लोकसभा (1985-89) में राजीव गांधी के प्रचण्ड बहुमत के कारण गैर-कांग्रेसी दल पूर्ण विपक्ष की भूमिका निभाने में असमर्थ थे। लेकिन 1989, 1991, 1996 तथा 1998 में गठित 9वीं से 12वीं लोकसभा में अल्पमत सरकारों के समक्ष शून्य काल के प्रश्न महत्वपूर्ण हो गये।

5. **काम रोको पर स्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion)-** 'काम रोको' या 'स्थगन प्रस्ताव' प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। फाइनर के शब्दों में, ''सरकार के

प्रत्येक कार्य पर प्रश्न पूछा जा सकता है, प्रत्येक प्रश्न पर काम रोको प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रत्येक काम रोको प्रस्ताव एक व्यापक एवं विस्तृत बहस को प्रोत्साहन दे सकता है।'' इसका प्रयोग अतिआवश्यक तथा लोक महत्व की किसी विशेष समस्या के सन्दर्भ में संसद में वाद-विवाद प्रारम्भ करने के लिये किया जाता है। इस प्रस्ताव के माध्यम से संसद सदस्यों द्वारा संसद के निश्चित कार्यक्रम को रोक कर किसी अन्य महत्वपूर्ण विषय पर बहस की जा सकती है। सामान्यतः दोपहर 12 बजे से पूर्व अध्यक्ष से 'काम रोको प्रस्ताव' की अनुमति मांगी जाती है, यदि 40 या अधिक सांसद इसका समर्थन करें, तो सदन के समस्त कार्य रोक कर 'काम रोको या स्थगन प्रस्ताव' पर चर्चा की जाती है जो अधिकतम तीन घंटे की हो सकती है। इस प्रस्ताव के लिये शर्त यह होती है कि यह मुद्दा विशिष्ट, महत्वपूर्ण तथा तात्कालिक हो, तथ्यों पर आधारित हो, सार्वजनिक महत्व का हो, न्यायालयों के विचाराधीन ना हो, सरकार के प्रशासनिक दायित्वों से सम्बन्धित हो तथा ऐसा न हो कि सदन में पूर्व में उस पर चर्चा की जा चुकी हो। चर्चा के पश्चात इस प्रस्ताव पर मतदान कराया जाता है जो बहुमत से पारित होने पर सरकार को संकट में डाल सकता है। वस्तुस्थिति यह है, कि काम रोको प्रस्ताव के अधिकांश प्रकरण निष्क्रिय हो जाते हैं। तीसरी लोक सभा में 77 प्रस्तावों में से केवल 07 पर ही आगे कार्यवाही हो सकी थी।

6. **बजट पर चर्चा (Budget Discussions)-** बजट पर वाद-विवाद के साथ भी संसद शासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रखती है। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष, श्री जी0 बी0 मावलेकर के अनुसार यह एक सिद्धान्त है कि वित्त-विधेयक के किसी भी विषय पर वाद-विवाद किया जा सकता है और जनता की किसी भी कठिनाई पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसका मूलभूत सिद्धान्त ये है कि किसी भी नागरिक से तब तक कर नहीं लिया जा सकता, जब तक संसद के माध्यम से उसे अपने विचार प्रस्तुत करने तथा असन्तोष प्रकट करने का भरपूर अवसर प्राप्त ना हो जाये। विधायिका की अनुमति के बिना ना तो एक पैसा खर्च किया जा सकता है, और ना ही कोई नया कर लगाया जा सकता है। अतः ये स्पष्ट है कि बजट पर वाद-विवाद के द्वारा संसद, शासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रखती है।

वित्त-मंत्री द्वारा आम बजट को जैसे ही लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है, उस पर पर्याप्त चर्चा तथा वाद-विवाद होता है। वार्षिक व्यय का यह ब्यौरा देश के आर्थिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है। बजट के सम्बन्ध में सदस्य कटौती का प्रस्ताव पेश करते हैं और इन कटौती प्रस्तावों के माध्यम से ही सरकार की आलोचना की जाती है। अध्यक्ष एवं शासन प्रणाली में ये कटौती-प्रस्ताव कई बार स्वीकृत हो

जाते हैं। भारत में यूँ तो वित्त-विधेयक और बजट पर होने वाली आलोचनाओं की वजह से सरकार सजग रहती है, लेकिन जब तक सरकार का संसद में स्पष्ट बहुमत है, तब तक उनके द्वारा प्रस्तुत बजट अस्वीकृत नहीं होता है। वस्तुतः सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन पर विधायिका का कठोर नियंत्रण होता है। स्वीकृत अनुमानों के अतिरिक्त एक पाई भी व्यय नहीं की जा सकती है।

7. **ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Calling Attention Motion)-** संसद के सदस्य कुछ महत्वपूर्ण मामलों और प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी गम्भीर समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पेश कर सकते हैं। इसके लिये सदस्य को लिखित रूप में सूचना देनी पड़ती है। लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा ऐसे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के बाद सरकार को उस विषय पर तुरन्त उत्तर देना पड़ता है। इस प्रस्ताव में सम्बन्धित मंत्री से स्पष्टीकरण मांगा जाता है, जिसका वह तुरन्त या कुछ समय पश्चात स्पष्टीकरण देता है। रिचर्ड वार्नर (Richard Warner) का मानना है कि, ''इस प्रकार के अवसर विभागीय कार्यों एवं विभागीय क्षमता परीक्षण के लिए उपयुक्त है।''

8. **अविश्वास-प्रस्ताव (No-confidence Motion)-** अविश्वास-प्रस्ताव को 'निन्दा-प्रस्ताव' भी कहते हैं। हमारे संविधान में इस प्रकार के प्रस्ताव की व्यवस्था की गयी है। अविश्वास प्रस्ताव का तात्पर्य होता है कि, संसद के सदस्यों अर्थात् विपक्षी दल के सदस्यों द्वारा ऐसी किसी स्थिति में जब उन्हें सरकार की कोई नीति या कार्यकरण पूर्णतया या अंशतः दोषपूर्ण तथा आपत्तिजनक लगे तो वे सरकार या सत्तारूढ़ दल के खिलाफ अविश्वास-प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये कम से कम 50 सांसदों का समर्थन आवश्यक रहता है। अविश्वास-प्रस्ताव सदन के अध्यक्ष द्वारा मंजूर हो जाने पर सदन में मतदान कराया जाता हैं। अगर आवश्यक बहमुत सरकार के पक्ष में नहीं है, तो सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है और सरकार गिर जाती है। कार्यपालिका पर संसदीय नियन्त्रण का यह सबसे प्रभावशाली साधन माना जाता है, पर ये साधन संसदात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में ही सम्भव है, क्योंकि अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तर दायी नहीं होती है।

9. **विधेयकों पर बहस (Debates on Bill)-** संसद में प्रस्तुत होने वाले प्रत्येक विधेयक (बिल) को पारित करने से पूर्व उस पर कई बार वाचन या बहस होती है। इस समय सम्बन्धित विधेयक के कानूनी प्रावधानों तथा सरकार की नीति की आलोचना की जाती है। सन् 1951 में हिन्दू कोड बिल तथा 1994 में मुख्य चुनाव आयुक्त के अधिकारों में कटौती के विधेयक पर विपक्षी दलों के कठोर तेवर के कारण सरकारों द्वारा वापस ले लिये गये थे।

10. लेखा परीक्षण (Audit)- विधायिका ने प्रशासन या सरकार को जो धन खर्च करने की अनुमति दी है, उस धन का उपयोग हुआ या दुरुपयोग, कितना-कितना धन किस-किस मद में खर्च हुआ, ये सब बातें जानने का अधिकार सदन को है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक विभिन्न सरकारी विभागों के लेखों की जाँच करवाकर अनियमितताओं का पता लगाता है तथा इसकी रिपोर्ट सदन को देता है व राष्ट्रपति को भी सोंपता है।

8.2.2 संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण

जैसा कि आपने पिछले पृष्ठों में बताये गये आरेख के द्वारा जाना कि संसदीय नियंत्रण दो माध्यमों से स्थापित किया जाता है। जिसमें से दूसरा माध्यम संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण होता है। भारत सहित अधिकांश देशों की संसदों के पास कार्यों में विविधता तथा सदस्यों की राजनीतिक विवशताऐं एवं समयाभाव है। अतः बहुत से विधायी एवं गंभीर प्रकृति के कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिये अनेक प्रकार की समितियाँ गठित की जाती हैं। संसद के दोनों सदनों की समितियों की संरचना (कुछ अपवादों को छोड़कर) एक जैसी हैं। इन समितियों की नियुक्ति, कार्य संचालन की प्रक्रिया भी लगभग समान ही है, जो संविधान के अनुच्छद- 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा निर्मित नियमों की धाराओं के अनुसार अधिनियमित होती हैं।

मोटे तौर पर संसदीय समितियों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में रखा जाता है- वित्तीय समितियाँ, विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियाँ अन्य संसदीय स्थायी समितियाँ तथा तदर्थ समितियाँ।

यहाँ संसदीय नियंत्रण के सन्दर्भ में हम केवल तीन समितियों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इन समितियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिये गये चार्ट से आसानी से समझा जा सकता है-

क्र.सं.	समिति का नाम	सदस्यों की संख्या	कार्यकाल	सदस्य निर्देशित अथवा निर्वाचित
1	लोक लेखा समिति	22 (15 लोक सभा और 07 राज्य सभा)	01 वर्ष	दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित
2	प्राक्कलन या अनुमान समिति	30 (लोक सभा)	01 वर्ष	लोक सभा द्वारा निर्वाचित
3	सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति	22 (15 लोक सभा और 07 राज्य सभा)	01 वर्ष	दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित

सुविधा की दृष्टि से हम समितियों का विभाजन दो श्रेणियों में देखते हैं- स्थायी एवं अस्थायी समिति। स्थायी समितियाँ प्रतिवर्ष या समय-समय पर निर्वाचित या नियुक्त की जाती हैं तथा इनका कार्य प्रायः निरन्तर चलता रहता है, जबकि अस्थाई समितियों की नियुक्ति आवश्यकतानुसार की जाती है। ये समितियाँ अपना कार्य पूर्ण करने एवं प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देने के पश्चात स्वतः समाप्त हो जाती है।

स्थायी समितियों में जाँच समितियाँ (जनहित समिति, विशेषाधिकारी समिति), संवीक्षण समितियाँ (सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति, अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति, पटल पर रखें पत्रों सम्बन्धी समिति), सदन के दैनिक कार्य से सम्बन्धित समितियाँ (कार्य-मंत्रणा समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर प्रस्तावों सम्बन्धी समिति, नियम समिति, सदन की बैठकों में अनुपस्थित सदस्यों सम्बन्धी समिति), अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी समिति, आवास समिति), संसद सदस्यों के वेतन-भत्तों सम्बन्धी समिति, लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति, पुस्तकालय समिति, महिलाओं के अधिकार समिति प्रमुख हैं।

लोकसभा की स्थायी समितियों में तीन वित्तीय समितियाँ यथा- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति तथा लोक उपक्रमों पर समिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन तीन महत्वपूर्ण समितियों के अतिरिक्त 08 अप्रैल, 1993 से 17 विभागीय समितियाँ भी कार्यरत हैं, जो अनुदान माँगों पर विचार-विमर्श कर बजटीय प्रणाली को कुशल बनाती हैं। अस्थायी समितियाँ किसी विचाराधीन प्रस्ताव पर संसद के किसी सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा किसी विशिष्ट विषय के लिए या विशेष विधेयकों पर विचार करने एवं रिपोर्ट देने के लिए प्रवर एंव संयुक्त समितियों के रूप में बनाई जाती हैं। लोक प्रशासन पर संसदीय समितियों के माध्यम से नियंत्रण के क्रम में निम्नांकित समितियाँ महत्वपूर्ण हैं- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति और लोक उपक्रमों पर समिति।

8.2.2.1 लोक लेखा समिति

लोक लेखा समिति भारतीय संसद की सबसे पुरानी और सबसे महत्वपूर्ण समितियों में से एक है। भारतीय संसद के भी बनने से पहले 1921 में 'Central Legislative Assembly' में लोक लेखा समितियाँ होती थी। 1967 तक इसका अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से होता था। 1967 के बाद से हमेशा इसका अध्यक्ष विपक्ष से होता रहा। विपक्षी दलों की राय से लोक सभा अध्यक्ष, लोक लेखा समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति करती है। इस समिति का अध्यक्ष विपक्ष का कोई सदस्य होता है। 1967 से ही ये एक परम्परा बन चुकी है। सन् 1969 के पश्चात सामान्यतः विपक्षी दलों को अध्यक्ष पद प्रदान किया जाता रहा है। चूँकि एक वर्ष की समयावधि लोक लेखा समिति के सदस्यों के कार्यकरण की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। अतः कुछ सदस्य पुनः निर्वाचित (दो तिहाई) कर लिए जाते हैं, ताकि नये एवं

अनुभवी दोनों प्रकार के सदस्य इस समिति में बने रहें। नियमानुसार कोई मंत्री पद धारक व्यक्ति समिति का सदस्य नहीं बनाया जा सकता है। आईये लोक लेखा समिति का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर करते हैं-

1. **लोक लेखा समिति के कार्य-** इसका मुख्य कार्य सरकारी खर्चों के खातों कीर जाँच करना है। लोक लेखा समिति को प्राक्कलन समिति की 'जुड़वा बहन' भी कहा जाता है। ऐसा इसलिये, क्योंकि दोनों समितियों के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं। प्राक्कलन समिति जहाँ सार्वजनिक यानि सरकारी व्यय के अनुमानों से सम्बन्धित कार्य करती है, वहीं लोक लेखा समिति मुख्यतयाः भारत सरकार के व्यय के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई राशियों का खर्च दर्शाने वाले लेखों की जाँच करती है। इसका आधार हमेशा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट होती है। 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स' जैसे सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों को छोड़कर जहाँ भी सार्वजनिक धन का व्यय होता है, वहाँ-वहाँ ये समिति जाँच कर सकती है। इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है। ये समिति नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा दिये गये लेखा परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदनों की जाँच करती है। संक्षेप में इसके कार्यों को बिन्दुवार कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है-

    - इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि, क्या धन प्राधिकृत रूप से खर्च किया गया है और उसी प्रयोजन से खर्च किया गया है, जिसके लिए वह प्रदान किया गया।
    - जाँच करते समय यह देखना कि किसी सरकारी अभिकरण द्वारा किया गया व्यय उसी मात्रा या सीमा में है जो संसद द्वारा स्वीकृत किया गया था।
    - यह देखना कि व्यय करने की स्वीकृति देने वाला अधिकारी इस कार्य के लिए वैध सत्ता प्राप्त (प्राधिकार युक्त) हैं।
    - समिति केवल तकनीकी अनियमिताओं का पता लगाने में ही रुचि नहीं रखती, बल्कि यह राष्ट्र के विभिन्न वित्तीय मामलों के संचालन में अपव्यय, भ्रष्टाचार, अकुशलता या कार्यपालन में कमी के किसी प्रमाण को प्रकाश में लाने में भी रुचि रखती है।
    - सरकारी नियमों (लोक उपक्रमों), व्यापार, योजनाओं तथा परियोजनाओं के लेखों का परीक्षण करना तथा उनके आय-व्यय, लाभ-हानि इत्यादि विवरण पत्रों की जाँच करना भी समिति का कार्य-क्षेत्र हैं।

- यह संबंधित मंत्रालय या विभाग द्वारा की गई फिजूलखची या उचित नियंत्रण के अभाव में निरनुमोदन के रूप में अपनी राय भी व्यक्त कर सकती है, या उसकी निंदा भी कर सकती है।
- स्वायत्त या अर्ध-स्वायत्त निकायों के आय-व्यय लेखों की जाँच करना, जहाँ आवश्यक रहता हो।
- राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को सौंपे गए, कुछ विशिष्ट कार्यों के प्रतिवेदनों के आधार पर जाँच करना।
- आय-व्यय के विवरणों की जाँच के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण सुझाव भी समिति दे सकती है जो वित्तीय नियंत्रण में सहायक हो सकते हैं।

2. **लोक लेखा समिति की कार्य-प्रणाली-** लोक लेखा समिति का कार्यकरण इसके सम्पूर्ण सदस्यों के साथ मंत्रणा के पश्चात अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जाता है, जो प्रायः पूर्व के वर्षों की परम्परानुसार संचालित होता है। समिति की बैठक बुलाने के लिये गणपूर्ति (कोरम) के रूप में 04 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत विनियोग तथा वित्तीय प्रतिवेदनों के आधार पर समिति कुछ विभागों या मंत्रालयों को जाँच के लिए चुनती है। समिति की जाँच एवं कार्यों के दौरान सम्बन्धित मंत्रालय का सचिव, वित्तीय सलाहकार तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों के अतिरिक्त नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भी उपस्थित रहता है। वस्तुतः नियंत्रक एवं महालेखा एक मध्यस्थ तथा विशेषज्ञ की भूमिका निभाता है। समिति के प्रशासनिक कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिये एक सचिव होता है। समिति को लोकसभा सचिवालय से प्रशासनिक सहायता प्राप्त होती है। समिति की बैठकें प्रायः गुप्त रहती हैं।

   जाँच कार्य के दौरान समिति आवश्यकतानुसार कोई भी रिकॉर्ड, रजिस्टर या सूचना माँग सकती है तथा किसी भी सम्बन्धित व्यक्ति से वार्ता कर सकती है। जाँच के दौरान सामने आने वाली वित्तीय अनियमितताओं का समिति विस्तार से वर्णित करती है तथा आवश्यक सुरक्षा उपाय सुझाती है। विवादास्पद मुद्दों पर समिति में मतदान भी हो सकता है। सामान्यतः अध्यक्ष मतदान नहीं करता, किन्तु निर्णायक स्थिति में वह अपना मत दे सकता है। समिति की रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जाती है जिसे सरकार द्वारा प्रायः ज्यों की त्यों स्वीकार किया जाता रहा है।

यह भी महत्वपूर्ण है कि यह समिति नीतिगत मामलों पर निर्णय नहीं करती है, बल्कि सरकारी संस्थानों द्वारा किए गए व्यय का परीक्षण ही करती है। चूँकि समिति में कई राजनीतिक दलों के सदस्य सम्मिलित रहते हैं। अतः, आपसी वैमनस्य, संकीर्णता तथा असहयोग की आशंका बनी रहती है। किन्तु विगत पाँच दशकों में भारत में इस समिति का कार्यकरण राजनैतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर जनहित के पक्ष में ही नजर आया है।

3. **लोक लेखा समिति की आलोचना-** लोक सेवा समिति के कार्यकरण की प्रायः प्रशंसा ही होती है किन्तु, कतिपय प्रश्न आलोचकों द्वारा उठाये जाते रहे हैं, जैसे-

    - यह समिति स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करती है, बल्कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों को ही आधार बनाकर आगे जाँच करती है।
    - समिति के सदस्य वित्त, लेखांकन, प्रबन्ध या अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ नहीं होते हैं, बल्कि राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्हें वित्त जैसे तकनीकी विषयों में अरुचि ही होती है।
    - समिति प्रशासनिक तंत्र की आन्तरिक कार्य-प्रणाली में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।
    - लोक लेखा समिति सरकार के नीतिगत मामलों पर जाँच नहीं कर सकती है, भले ही नीतियाँ गलत क्यों न हों।
    - इस समिति के निर्माण के पश्चात संसद में वित्तीय नियंत्रण सम्बन्धित बहस कम हो जाती है, क्योंकि सदस्यों की राय में उनका कार्य समिति कर रही होती है। जबकि सरकार समिति की अनुशंसाओं पर पूर्ण ध्यान नहीं देती है।
    - समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

यद्यपि लोक लेखा समिति के सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते हैं, किन्तु कुछ सदस्य शनैः-शनैः इसके कार्यों में रुचि लेकर विशेषज्ञ बन जाते हैं। ब्रिटिश लोक लेखा समिति के कार्यों को कतिपय विद्वानों ने पोस्टमार्टम के समान माना है, जहाँ साँप के गुजरने के पश्चात केवल लीक पीटने का कार्य होता है। किन्तु सिडनी वेब का कहना है, ''निस्संदेह पोस्टमार्टम के द्वारा मृत व्यक्ति को पुनः जीवित नहीं किया जा सकता है, लेकिन भविष्य की हत्याएँ रोकी जा सकती है।'' वास्तव में लोक लेखा समिति एक महत्वपूर्ण निकाय है, जिसके भय के कारण प्रशासनिक तंत्र नियंत्रित रहता है।

8.2.2.2 अनुमान समिति या प्राक्लन समिति

अनुमान समिति या प्राक्कलन समिति एक महत्वपूर्ण संसदीय समिति है। यह समिति संसद के माध्यम से सरकार द्वारा प्राप्त किये गये धन के व्ययों के अनुमानों की जाँच-पड़ताल करती हैं। यह स्थायी मितव्ययता समिति के रूप में कार्य करती है और इसके सुझाव सरकारी फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का काम करते हैं। अर्थात्, ये आर्थिक प्रशासनिक ढाँचे में सुधार लाने के लिये सुझाव देवी है। इसे सतत् मितव्ययता समिति भी कहा जाता है। यह समिति इस बारे में ये भी सुझाव देती है कि प्राक्कलन को संसद में किस रूप में पेश किया जाये। यद्यपि अनुमान या प्राक्कलन(Estimate) समिति की स्थापना की मांग 1937 में की गयी थी, किन्तु तब इसे कार्यरूप नहीं दिया जा सका। कुछ समय तक एक स्थायी वित्तीय समिति अवश्य थी, जिसकी रचना 1921 में की गयी थी, जो भारत सरकार के वित्त विभाग से संलग्न थी। यह समिति कठोर वित्तीय सीमाओं के अधीन कार्य करती थी, परन्तु इसके अस्तित्व ने अनुमान समिति की रचना के औचित्य को समाप्त नहीं किया। अनुमान समिति सर्वप्रथम विधिवत् रूप से 10 अप्रैल 1950 से स्थापित हुई। उस समय इसमें 25 सदस्यों का निर्वाचन किया गया था। 1953 में इसके कार्यों में वृद्धि की गयी। अनुमान समिति की महत्ता को बताते हुए जी0वी0 मावलेकर ने कहा था, ''यह समिति मितव्ययता, प्रशासन में कार्यकुशलता तथा सार्वजनिक धन के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनायी गयी है। अतः समिति को यह अधिकार है कि वह ऐसी किसी नीति में संशोधन का सुझाव दे, जिसके कारण विपुल धनराशि निरर्थक व्यय हो रही है।''

आईये अनुमान या प्राक्लन समिति को निम्नाकित बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं-

1. **अनुमान समिति का संगठन-** जैसा कि आप जानते हैं कि अनुमान समिति एक स्थायी समिति है और इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है। लोक लेखा समिति से भिन्न इसमें राज्य सभा के सदस्यों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता है। इसके कार्य और नियुक्ति की रीति तथा अन्य सम्बन्धित विषय लोक सभा में प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के नियमों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। इस समिति के सदस्यों का निर्वाचन लोकसभा के सदस्यों के बीच में से अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल-संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर होता है। प्रारम्भ में इसके सदस्यों की संख्या 25 थी जो बढ़ाकर 30 कर दी गयी। प्रायः लोकसभा में राजनीति दलों के सदस्यों की संख्यानुसार ही इस समिति में भी प्रतिनिधित्व रहता है। समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि लोक सभा के उपाध्यक्ष इस समिति के सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं तो वे समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। सत्तारूढ़ दल का वरिष्ठ सदस्य प्रायः अध्यक्ष बनाया जाता है। केन्द्रीय मंत्री-परिषद का कोई भी सदस्य (मंत्री) इस

समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। प्रति वर्ष एक तिहाई नये सदस्य तथा दो तिहाई सदस्य पुनः चुन लिये जाते हैं, ताकि कार्य संचालन उपयोगी बना रह सके।

अनुमान समिति सरकार की नीतियों से सम्बन्धित मामलों में सरोकार नहीं रखती है। इसका मुख्य उद्देश्य तो इस बात से सन्तुष्ट रहना होता है कि निर्धारित रीति के अन्तर्गत अधिकतम मितव्ययता के साथ न्यूनतम व्यय किया जाये। सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं व परियोजनाओं को कार्यान्वित करते हुए व्यय में मितव्ययता को सुनिश्चित करना है।

2. **अनुमान समिति के कार्य-** अनुमान समिति द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं-

- प्रशासनिक सुधारों द्वारा मितव्ययता लाने के उचित सुझाव देती है।
- लोक प्रशासन में कार्यकुशलता तथा मितव्ययता लाने के लिये प्रचलित नीतियों के स्थान पर अन्य विकल्प सुझाना।
- बजटीय अनुमानों में वांछित तथ्यों के सही प्रस्तुतीकरण का परीक्षण करना।
- समिति इस बात को भी देखती है कि प्रशासकीय क्रियाओं में लगाया गया धन अनुमानों में निहित सीमाओं के अन्तर्गत व्यय किया गया है, या नहीं।
- संसद के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले अनुमानों के स्वरूप (ढंग) के क्रम में सुझाव।
- अनुमान समिति अपने कार्यों को पूरा करने के लिये उप-समितियों का गठन करती है। उप-समितियों को किसी भी प्रकार का कार्य सौंपा जा सकता है और उसके द्वारा प्राप्त प्रस्तुत प्रतिवेदनों का वही महत्व होता है जो अनुमान समिति के प्रतिवेदनों का होता है।
- यह समिति उन उपायों के विषय में सुझाव देती है, जिनके द्वारा अनुमानों को संसद में प्रस्तुत किया जाता है।
- समिति सरकारी अधिकारियों की सुनवाई कर सकती है और एक ऐसी प्रश्नावली तैयार करती है, जिनके प्रश्नों का उत्तर विभागाध्यक्षों को देना पड़ता हैं।

इस प्रकार यह समिति संसद के समक्ष किये जाने वाले अनुमानों में निहित नीतियों से संगति रखते हुए मितव्ययता सम्बन्धी सुझाव देती है। यह नीति सम्बन्धी प्रश्नों में हस्तक्षेप नहीं करती। प्रकटतः यह ऐसी किसी नीति की जाँच कर सकती है, जिसे सरकार ने अपने निष्पादीय कार्यों के संचालन में निर्धारित किया हो। इसके अतिरिक्त यदि

समिति को ये पता चल जाये कि संसद द्वारा निर्धारित नीति के कोई विशेष वांछित परिणाम नहीं हो रहे हैं या अपव्यय हो रहा है तो इस समिति का यह कर्तव्य है कि वह लोकसभा का ध्यान नीति में परिवर्तित करने के लिये आकर्षित करे। लोक उपक्रमों पर समिति के निर्माण से पूर्व अनुमान समिति लोक उपक्रमों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देती थी, किन्तु अब समिति का कार्य केन्द्रीय मंत्रालयों तक ही सीमित रह गया है।

3. **अनुमान समिति की कार्य-प्रणाली-** अनुमान समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है, किन्तु उन्हें पुनः निर्वाचित होने का अधिकार है। इससे समिति की सदस्यता में निरन्तरता बनी रहती है। समिति की रचना मई में किसी समय की जाती है और ये जुलाई से काम करना प्रारम्भ कर देती है। वह सालभर के लिये अनुमानों का चयन करके अपने कार्यों की योजना तैयार करती है। अनुमान समिति के सदस्य एवं अध्यक्ष मिलकर समिति के कार्यकरण को सुनिश्चित करते हैं। चूँकि भारतीय प्रशासनिक-तंत्र की विशालता एवं जटिलता को देखते हुए एक वर्ष में सभी विभागों के अनुमानों का परीक्षण करना सहज कार्य नहीं है अतः यह समिति प्रतिवर्ष तीन या चार मंत्रालय परीक्षण हेतु चुनती है तथा इन मंत्रालयों में से कुछ विशिष्ट विभागों या योजनाओं के लिये प्रस्तुत वित्तीय अनुमानों का ही गहन अध्ययन करती है। इस परीक्षण हेतु अनुमान समिति अपने साथ कतिपय उप-समितियाँ गठित कर लेती है। उप-समितियों को पृथक्-पृथक् विषयों का कार्य सौंप दिया जाता है। ये सभी उप-समितियाँ मूल अनुमान समिति की भाँति पूर्ण अधिकार प्राप्त समितियाँ होती हैं। जिस मंत्रालय से सम्बन्धित अनुमानों का परीक्षण किया जाना होता है, उससे सम्बन्धित समस्त आवश्यक सूचनाऐं समिति तथा उसकी उप-समितियाँ एकत्र करती हैं। इन प्राक्कलनों या सूचनाओं की जाँच के लिये निर्धारित प्रारुपों का उपयोग किया जाता हैं। इन प्रारुपों में सम्बन्धित मंत्रालयों से, मंत्रालयों के अधीन चल रही योजनाओं तथा परियोजनाओं, पिछले वर्ष के खर्च तथा वर्तमान अनुमानों में अन्तर आदि जैसी कई जानकारियाँ माँगी जाती हैं। समिति चाहे तो उक्त सूचना के आधार पर मंत्रालयों के कर्मचारियों व अधिकारियों को स्पष्टीकरण के लिए बाध्य कर सकती हैं। यह गैर-सरकारी लोगों को भी साक्ष्य के लिये बुला सकती है। समिति अनुमानों की जाँच के बाद अपना प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत करती है। प्रतिवेदन पर कोई नियमित वाद-विवाद नहीं होता है, फिर भी सदस्यगण बजट पर चर्चा करते समय तथा अनुदानों की माँगों के बीच प्रतिवेदन का विस्तार से उल्लेख करते हैं। सामान्यतः समिति की सिफारिशों पर सरकार अमल करती है। मतभेद की स्थिति में अन्तिम निर्णय संसद का होता है।

अनुमान समिति संसद की एक 'स्थायी बचत समिति' के रूप में कार्य करती है। अपने प्रतिवेदनों में समिति ने प्रशासकीय व वित्तीय दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण व उपयोगी सुझाव दिये हैं। 'बजटीय सुधार' तथा 'नागरिक व्यय की वृद्धि' की समस्याओं पर समिति ने विस्तृत विवेचना की है। फिर भी समिति की सफलता सरकार पर दीर्घकालीन चिन्तन तथा योजना के सम्बन्ध में पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर है।

4. **अनुमान समिति की आलोचना-** अनुमान समिति की अनेक आधारों पर आलोचना की गयी है। समिति पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि यह सरकारी अनुमानों की ब्यौरे से पड़ताल न करके, सरकारी नीतियों व विभागीय संगठन के पुनरीक्षण पर विशेष जोर देती है। इसकी आलोचना के अन्य बिन्दुओं को कुछ इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

   - अनुमान समिति द्वारा सरकारर की नीतियों व विभागीय संगठनों की समीक्षा पर जोर देने से इसके स्वरूप व उद्देश्यों में बदलाव आ गया है।
   - सदस्यता बदलते रहने के कारण समिति को प्रशासन के कार्यों का पर्याप्त ज्ञान नहीं हो पाता, अतः इसके सुझाव बहुत उपयोगी नहीं बन पाते हैं।
   - तथ्यों का अन्वेषण करने के बजाय यह छिद्रान्वेषी सन्यन्त्र बन गया है।
   - लोक लेखा समिति की भाँति इस समिति में भी वित्त एवं अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञों का अभाव है। इसे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता भी नहीं मिलती है।
   - एक विभाग या मंत्रालय का समिति द्वारा परीक्षण हो जाने के पश्चात वर्षों तक पुनः नम्बर नहीं आता है। अतः परीक्षित विभाग निष्क्रिय एवं लापरवाह हो जाते हैं।
   - अनुमान समिति, मितव्ययता सुधारों के बजाय संगठनात्मक संरचना तथा कार्मिकों की संख्या इत्यादि विषयों पर अधिक रुचि लेती है।
   - बहुधा समिति उन कर्तव्यों का निर्वहन करने लग जाती है, जो वास्तव में लोक सभा के हैं।
   - अशोक चन्दा के अनुसार, ''इस समिति का मुख्य कार्य आय-व्यय अनुमानों का परीक्षण कर यथोचित सुझाव सरकार को देना है, किन्तु यह समिति कई बार 'सुधारक' की भूमिका में आकर सरकार की नीतियों (संसद द्वारा स्वीकृत) एवं विभागों के गठन पर प्रश्न-चिह्न लगाने लग जाती है।''

समिति की सिफारिशें परामर्शदात्री होती हैं और उसकी सिफारिशों को मानना या न मानना सरकार पर निर्भर करता है। यह सत्य है कि समिति का कार्यकाल एक वर्ष का है अतः इसकी सदस्यता अस्थायी है, फिर भी प्रतिवर्ष एक-तिहाई सदस्यों द्वारा अवकाश ग्रहण करने की प्रथा के कारण इसकी सदस्यता में निरन्तरता बनी रहती है। वास्तव में, समिति अधिकाधिक सदस्यों को प्रशिक्षण देने का एक शक्तिशाली एवं प्रबल साधन है। प्रशिक्षण में केवल प्रशासन के संचालन सम्बन्धी तरीकों पर ही बल नहीं दिया जाता बल्कि संसार के सामने नित्यप्रति आने वाली समस्याओं से भी उन्हें परिचित कराया जाता है। अनुमान समिति विशेषज्ञों की सहायता से ही कार्य करती है।

लेकिन अनुमान समिति के सम्बन्ध में की गयी उपर्युक्त आलोचनाओं से इसकी उपयोगिता समाप्त नहीं होती, क्योंकि समिति ने सरकारी भूल-चूक के अनेक कार्यों को प्रकाश में लाकर बहुत ही उपयोगी कार्य किया है। साथ ही समिति भारत में प्रशासन की योग्यता तथा उसके स्तर को उन्नत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

8.2.2.3 लोक उपक्रमों पर समिति

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया, जिसमें निजी उद्यमों की स्थापना के बाद सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना की ओर भी ध्यान दिया गया। ऐसी स्थिति में लोक उपक्रमों की संख्या का निरन्तर बढ़ना भी स्वाभाविक था। काफी समय से लोक उद्यमों के कार्यचालन के लिये निरीक्षण तथा समय-समय पर उनके विषय में संसद को प्रतिवेदन देने के लिये एक संसदीय समिति की रचना करने की माँग की जाती रही थी। इस माँग के पीछे भावना ये रही थी कि अपने प्रति उत्तर दायी उद्यमों को नियंत्रित करने के अनेक अवसर पाते हुए भी संसद किसी प्रभावशाली तथा अर्थपूर्ण ढंग से उनके ऊपर नियंत्रण रखने में सफल नहीं रही हैं, बल्कि इसका नियंत्रण अव्यवस्थापूर्ण, गतिहीन तथा अपर्याप्त होने के साथ-साथ तारतम्यहीन भी रहा है। ऐसी स्थिति में लोक उपक्रमों के कार्यकरण तथा वित्तीय प्रक्रियाओं पर संसदीय नियंत्रण स्थापित करने के लिये एक समिति की आवश्यकता महसूस की गयी। सर्वप्रथम, दिसम्बर, 1953 में एक निर्दलीय सदस्य डॉ0 लंका सुन्दरम ने लोकसभा में यह माँग उठायी कि लोक उपक्रमों पर नियंत्रण के लिये एक समिति का गठन किया जाना चाहिये ताकि लोक उपक्रमों पर मंत्रियों के नियंत्रण, संसद के अधिकार तथा आम व्यक्ति (करदाता) के धन के समुचित उपयोग को सुनिश्चित किया जा सके। वी0 के0 कृष्णमेनन समिति ने लोक उपक्रमों पर समिति के गठन की अनुशंसा के साथ ही ये भी सुझाया था कि यह समिति लोक उपक्रमों पर सर्वोच्च प्रबन्ध मंडल या छिद्रान्वेषक के तौर पर कार्य ना करे। इसके उपरान्त सन् 1956 में जीवन बीमा विधेयक पर चर्चा के दौरान भी अशोक मेहता ने पुनः इस समिति के गठन का प्रश्न उठाया। ऐसी ही कुछ सिफारिश योजना आयोग ने की थी। अतः इन सब तरह की सिफारिशों के बाद लोकसभा ने नवम्बर 1963 में लोक उपक्रमों पर समिति से सम्बन्धित एक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा

01 मई, 1964 को लोक उपक्रमों पर समिति अस्तित्व में आयी। प्रारम्भ में इस समिति में 15 सदस्य थे जिनमें से 10 लोकसभा से व 05 राज्यसभा से लिये गये थे। जिनकी संख्या 1974-1975 में बढ़ा दी गई।

लोक उपक्रमों पर समिति (कमेटी ऑन पब्लिक अण्डरटेकिंग्स) जिसे कोपू (सी0ओ0पी0यू0) भी कहा जाता है, में अब 22 सदस्य होते हैं। लोकसभा से 15 सदस्य तथा राज्यसभा से 07 सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। लोक लेखा तथा अनुमान समिति की भाँति इस समिति में भी एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष नये सम्मिलित हो जाते हैं। समिति में कोई भी मंत्री सदस्य नहीं बनता है तथा इसके अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा के द्वारा की जाती है।

1. **लोक उपक्रमों पर समिति के कार्य-** लोक उपक्रमों पर समिति को अनेक महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये हैं, जो केन्द्र सरकार के अधीन कार्यरत सार्वजनिक निगमों, कम्पनियों से सम्बन्धित हैं। ये हैं-
    - निर्धारित अनुसूची में वर्णित लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा लेखाओं का परीक्षण करना।
    - नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लोक उपक्रमों से सम्बन्धित रिपोर्टों का परीक्षण करना।
    - लोक उपक्रमों की स्वायत्ता तथा कार्यदक्षता के सन्दर्भ में इनके प्रबंधकीय, व्यवहारों का स्वस्थ व्यापारिक तथा वाणिज्यिक सिद्धान्तों के क्रम में परीक्षण करना।
    - लोक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के उन कार्यों का परीक्षण करना जो लोक उपक्रमों से सम्बन्धित हैं, अथवा लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा इस समिति को सौंपे गये हैं।

    इसके अतिरिक्त लोक उपक्रमों पर समिति की कतिपय सीमा भी निर्धारित की हुई हैं-
    - यह समिति सरकार की प्रमुख नीतियों से सम्बन्धित प्रकरणों पर जाँच नहीं कर सकती है।
    - लोक उपक्रमों के दैनिक प्रशासन पर टिप्पणी नहीं कर सकती है।
    - किसी विशिष्ट निकाय की स्थिति प्राप्त लोक उपक्रमों के कतिपय प्रकरणों की जाँच भी नहीं कर सकती है।
2. **लोक उपक्रमों पर समिति की कार्य-प्रणाली-** लोक उपक्रमों पर समिति का मुख्य दायित्व केन्द्र सरकार के उद्यमों के लेखाओं तथा प्रतिवेदनों की जाँच करना है। समिति अपनी पूर्ण बैठक में कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। प्रतिवर्ष सभी लोक उपक्रमों की जाँच के बजाय कुछ उपक्रमों को ही चुना जाता है। यह चुनाव लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर

ही होता है। समिति के सदस्य सम्बन्धित उपक्रम के कार्यकरण तथा लेखा से सम्बन्धित समस्त रिकॉड देखते हैं। अंत में तीन प्रकार की रिपोर्टें प्रस्तुत की जाती हैं- प्रथम रिपोर्ट में, व्यक्तिगत उपक्रम, दूसरी में उपक्रम के विभिन्न कार्यों जैसे-वित्त, प्रबन्ध कार्मिक, उत्पादन, सामग्री विपणन इत्यादि का वर्णन होता है जबकि तीसरी रिपोर्ट सरकार द्वारा की गई कार्यवाहियों से सम्बन्धित होती है।

3. **लोक उपक्रमों पर समिति आलोचना-** लोक उपक्रमों पर समिति को लोक लेखा समिति तथा अनुदान समिति की भाँति पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं है। यह प्रश्न इस समिति की स्थापना के समय भी उठाया गया था। उदाहरण के लिए यह समिति लोक उपक्रमों से सम्बन्धित सरकार की मूल्य नीति एवं श्रमिक-प्रबन्ध के क्रम में जाँच नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त भी समिति में कुछ अन्य कमियाँ पायी जाती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-

    - बहुत से (जैसे रक्षा क्षेत्र के लोक उपक्रम) सरकारी उपक्रम इस समिति के जाँच के दायरे से ही बाहर रखे गये हैं।
    - समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर संसद में चर्चा नहीं होती है और न ही संसद सदस्य इसकी रिपार्टों को पढ़ने में रुचि लेते हैं।
    - सरकार द्वारा इसकी (लोक उपक्रमों पर समिति) अनुशंसाओं पर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया गया है।
    - इस समिति के सदस्य भी राजनीतिज्ञ ही होते हैं, जिन्हें वित्त, लेखा, वाणिज्य, व्यापार तथा उद्योगों की तकनीकी एवं जटिल कार्य-प्रणाली का विशेष ध्यान नहीं रहता है।

इस प्रकार संसदीय नियंत्रण की पूरी प्रक्रिया को देखने के बाद ये कहा जा सकता है कि संसदीय नियंत्रण लोक प्रशासन पर नियंत्रण का एक लोकप्रिय तथा महत्वपूर्ण साधन है जो सम्पूर्ण लोक प्रशासन को सजक तथा सक्रिय रखता है। चूँकि समस्त प्रशासनिक कार्यों की अन्तिम जिम्मेदारी सम्बन्धित मंत्रालय के मंत्री तथा अन्ततः सम्पूर्ण मंत्री-परिषद की ही रहती है। अतः राजनीतिक कार्यपालिका, प्रशासनिक तंत्र पर प्रभावकारी नियंत्रण रखना चाहती तो है, लेकिन यह नियंत्रण मात्र सिद्धान्त रूप में ही प्रभावी प्रतीत होता है, व्यवहारतः संसद अनेक सीमाओं में बंधी हुई रहती है। संसदीय नियंत्रण के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह सोचना है कि संसद के पास समय तथा कुशल कर्मचारियों का अभाव है, वहीं दूसरी ओर सत्ताधारी दल के स्पष्ट बहुमत में होने के कारण भी प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण शिथिल रहता है। प्रशासन पर नियंत्रण के सम्बन्ध में एक नाजुक समस्या यह भी है कि विधायिका

किस सीमा तक प्रशासकों पर नियंत्रण रखे अर्थात् नियंत्रण की सीमा क्या हो? इसी प्रकार एक विकट समस्या यह भी रहती है कि इस सीमा का निर्धारण किस मानदण्ड को रखकर किया जाय। यह तथ्य भी सही है कि अनेक बार संसद का हस्तक्षेप प्रशासन के दैनिक कार्यों में आवश्यकता से अधिक हो जाता है। प्रशासकों के कार्यों पर अधिक प्रतिबन्ध लग जाने से उनके लिये ठीक से कार्य कर पाना कठिन होता है।

8.3 प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की समस्याऐं

भारत में प्रशासन पर विधायिका के नियंत्रण की समस्या को विस्तृत रूप में निम्न बिन्दुओं में भली-भाँति समझा जा सकता है।

1. विधायकों के पास कार्यों का बोझ आवश्यकता से अधिक होता है, जिसके कारण वे नियंत्रण से सम्बन्धित गतिविधियों को पूरा करने हेतु उचित समय नहीं दे पाते हैं।
2. सभी संसद सदस्य आवश्यक रूप से संसद की कार्यवाहियों में रुचि प्रकट नहीं करते है, बल्कि सभी दलों में मात्र दो-चार सदस्य ही ऐसे होते हैं जो पूर्णरूप से मुखर एवं सक्रिय नजर आते हैं।
3. संसद सदस्य की अधिकांश आलाचनाऐं दलीय भावनाओं पर आधारित होती हैं।
4. भारतीय प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण वास्तव में मंत्रियों को उत्तर दायित्वों से मुक्ति का एक बहाना होता है, अपने इस कार्य से बचने के लिये वो स्वयं बचकर उत्तर दायित्व, स्वयं न लेते हुए प्रशासनिक अधिकारियों पर थोप देते हैं।
5. संसद सदस्यों के लिये न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी निर्धारित नहीं होती है, जिसके कारण सभी सदस्य विधायिका तथा कार्यपालिका की तकनीकी शब्दावली एवं प्रक्रियाओं से पूर्णरूप से परिचित नहीं होते, अतः कई बार उनमें स्वतः ही अपने इस कार्य के लिये अरूचि पैदा हो जाती है।
6. सांसदों के पास किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान नहीं होता, या यूँ कहें कि वे विषय के विशेषज्ञ नहीं होते ऐसे में विषयों की बारीकियों को समझे बिना वे रचनात्मक और प्रभावकारी नियंत्रण स्थापित नहीं कर पाते हैं।
7. संसदीय नियंत्रण के सम्बन्ध में एक समस्या ये भी होती है कि, संसद द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों की आलोचना एकपक्षीय होती है। संसद प्रशासनिक अधिकारियों की तो आलोचना करता है, पर सम्बन्धित अधिकारियों को अपना पक्ष रखने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है। यही कारण है कि अधिकांशतः प्रशासनिक अधिकारी भयभीत रहते हैं और वे प्रभावशाली सदस्यों को येन-केन प्रकारेन प्रसन्न रखने की

कोशिश करते हैं। फलस्वरूप इससे प्रशासन की कार्यकुशलता, निष्पक्षता, मनोबल आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।

8. इस नियंत्रण के सन्दर्भ में एक अन्य समस्या ये भी आती है कि, विधायिका के सदस्यों में स्व-प्रचार (Self-Advertisement) की भावना ज्यादा पायी जाती है। अतः वे सरकार और प्रशासन की आलोचना प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिये नहीं करते, बल्कि इसलिये करते हैं कि अखबारों, टी0वी0 आदि में उनका नाम आये व उनको ख्याति मिले।
9. प्रचण्ड बहुमत भी एक कारण है, जब विपक्षी दलों की स्थिति सदन में कमजोर रहती है और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव नियंत्रण पर पड़ता है।
10. भारतीय विधान मण्डलों में विगत कई वर्षों से आ रही नैतिक गिरावट के कारण जनप्रतिनिधियों का व्यवहार नितान्त गैर-जिम्मेदाराना तथा अलोकतांत्रिक हो गया है। ऐसे में जब संसद स्वयं नियंत्रित नहीं है तो वो प्रशासन को कैसे नियंत्रित करेगी।

अतः निष्कर्ष तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक नियंत्रण की सीमाएँ स्पष्ट एवं उचित रूप से निर्धारित करके यह देखे जाने की आवश्यकता है कि, संसदीय नियंत्रण की गरिमामय स्थिति बनी रहे। अधिकारी अपनी सत्ता का दुरुपयोग ना करें। इसके अतिरिक्त सांसदों द्वारा की जाने वाली आलोचना सार्वजनिक हित में हो, ना कि व्यक्तिगत प्रसिद्धि या लाभ के लिये। विधायिका सूक्ष्म परीक्षण के द्वारा प्रशासन पर कड़ी नजर रखें और अप्रमाणिक, निराधार एवं बेबुनियादी बातों को लेकर प्रशासकों की कटु आलोचना ना करें। सच्चाई हालांकि यह है कि विधायी नियंत्रण उपयुक्त नहीं है। अतः उसमें सुधार की अत्यधिक आवश्यकता है। परन्तु फिर भी पॉल एपलबी ने, भारत के सन्दर्भ में कहा है कि, ''संसद, सरकार द्वारा कानून बनाने के लिये प्रस्तुत प्रस्तावों के नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर वाद-विवाद करने का कार्य बड़े प्रशंसनीय ढंग से करती है।'' अतः कहा जा सकता है कि ''कुछ समस्याएँ और सीमाएँ विधायी नियंत्रण के मार्ग में अवश्य ही अवरोधक है, लेकिन इसके बावजूद भी संसदीय शासन वाले देशों में विधायिका के नियंत्रण की स्थिति प्रभावशाली एवं काफी सन्तोषजनक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संसदीय नियंत्रण का दूसरा नाम क्या है?
2. लोक लेखा समिति की स्थापना कब हुई?
3. संसदीय समितियों के सदस्य कितने वर्ष के लिये चुने जाते हैं?
4. अनुमान समिति का दूसरा नाम क्या है?

8.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप को ज्ञात हो गया होगा कि, प्रशासन और सेवी वर्ग अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करें, निरंकुश और अनुत्तरदायी ना बने, इसके लिये आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित कर उन्हें उत्तर दायी बनाया जाये।

प्रशासनिक पदाधिकारियों पर विधायिका मंत्रियों के माध्यम से नियंत्रण रखती है, क्योंकि संसद द्वारा अनुमोदित नीतियों का क्रियान्वयन मंत्रियों के माध्यम से प्रशासन करता है और प्रशासनिक असफलता, अकार्यकुशलत, अनियमितता के लिये अन्ततः मंत्रिपरिषद ही उत्तर दायी है। प्रशासनिक जागरूकता, ईमानदारी, कार्यकुशलता के लिये मंत्रिपरिषद की जागरूकता आवश्यक है। अतः संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायी अथवा संसदीय नियंत्रण के अनेक साधनों को अपनाते हुए स्थापित किया जाता है।

8.5 शब्दावली

विकासोन्मुख- विकास की ओर बढ़ने वाला, नियोजन- योजना, निष्पादन- क्रियान्वयन, तर्कसंगत- तर्क सहित, विलम्ब- देरी, अपरिहार्य- जिसके बिना काम ना चल सके, शिथिलता- ढीलापन, प्राधिकृत- जिसे विधिवत अधिकार प्राप्त हों, वैध- जो विधि के अनुसार हो, कायदे-कानून के अनुसार, स्वायत्त- स्वतंत्र, वैमनस्य- वैर, तारतम्यहीन- जिसमें तालमेल ना हो

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विधायी नियंत्रण, **2.** 1954, **3.** एक वर्ष, **4.** प्राक्लन समिति

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002-2003
2. आर0के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 बी0एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा- 2015

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्य में प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की विधियों को समझाइये।
2. भारतीय प्रशासन पर संसद किस प्रकार नियंत्रण रखती है? विस्तृत विवेचना कीजिये।
3. भारतीय संसद किस प्रकार देश के लोक प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखती है? व्याख्या करें।

इकाई- 9 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 न्यायिक नियंत्रण से अभिप्राय

9.3 न्यायिक नियंत्रण का क्षेत्र

9.4 न्यायिक नियंत्रण की प्रणालियाँ

9.4.1 सामान्य साधन

9.4.2 विशेष साधन या संवैधानिक उपचार

9.5 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षक होती हैं। न्यायपालिका इस बात पर भी नजर रखती है कि प्रशासनिक अधिकारी अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करें। आधुनिक प्रशासकीय राज्य और जनकल्याण की भावना ने, राज्य के कार्यों और अधिकारों का क्षेत्र, व्यापक बना दिया है। जिस अनुपात में उनके कार्यों में वृद्धि हुई है, उसी अनुपात से राज्य की शक्तियाँ भी बढ़ी हैं। अतः स्वभाविक है कि, यदि उनकी शक्तियों पर नियंत्रण ना रखा गया, तो प्रशासन निरंकुश और तानाशाह बन जायेगा। लोक प्रशासन पर इस नियंत्रण की धारणा को सबसे अच्छे ढंग से न्यायापालिका का नियंत्रण ही पूरा करता है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- न्यायिक नियंत्रण से क्या आशय है तथा ये कब स्थापित किया जाता है? इस संबंध में जान पायेंगे।
- ये जान जायेंगे कि, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने के प्रकार क्या-क्या हैं? अर्थात् नियंत्रण स्थापित कैसे किया जाता है?
- न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं के बारे में भी आप जान पायेंगे।

9.2 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

सभी प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका, नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षक होती हैं। न्यायपालिका इस बात पर पूरी नजर रखती है, कि प्रशासकीय अधिकारी अपनी सीमाओं में रह कर कार्य करें। प्रशासन पर बाहरी नियंत्रण के ये दो ही साधन होते हैं- प्रथम विधायी और दूसरा न्यायिक। पिछले अध्याय में आपने विधायी नियंत्रण के बारे में विस्तार से पढ़ा। आपको ज्ञात हो गया होगा कि वैधानिक नियंत्रण कार्यपालिका शाखा की नीति तथा व्यय को क्रियान्वित करता है और न्यायपालिका का नियंत्रण कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता है या उसकी जाँच करता है। इस प्रकार जब भी कोई सरकारी अधिकारी नागरिकों के संवैधानिक या मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं, तो न्यायपालिका उनकी रक्षा करती हैं। अर्थात् भारत में न्यायपालिका ना केवल सर्वोच्च है, बल्कि मौलिक अधिकार एवं संविधान की संरक्षक भी है। अर्नेस्ट फ्रायड (Ernest Freud) ने कहा कि कि, ''बढ़ती हुई प्रशासकीय शक्तियाँ यह माँग करती हैं कि उनकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था जरूरी है, जिसमें उसका दुरूपयोग नहीं किया जा सके। जब तक सरकारी कर्मचारियों में पक्षपात करने, भूल करने या अति-उत्साह प्रदर्शित करने की संभावना है, तब तक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना उतना ही आवश्यक है, जितना किसी सरकारी नीति का प्रभावशाली होना।''

संक्षेप में कहा जाये तो जब भी सरकारी अधिकारी अनाचार करता है, या अपने अधिकारों का दुरूपयोग करता है, तो ऐसी स्थिति में कोई भी नागरिक न्यायालयों में उसके विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है और न्याय पा सकता है। ऐसे में न्यायालय नागरिकों की स्वतंत्रताओं तथा मौलिक अधिकारों का संरक्षण करते हुए प्रशासन को नियंत्रित करने हेतु जो भी कार्य करती है, वह न्यायिक नियंत्रण कहलाता है। न्यायपालिका का कार्य देश के कानूनों की व्यवस्था करना और उन्हें भंग करने वालों के लिये दण्ड की व्यवस्था करना है।

9.3 न्यायिक नियंत्रण का क्षेत्र

लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के सन्दर्भ में सबसे प्रमुख बात यह है, कि भारत में न्याय व्यवस्था में न्याय पुनरीक्षा या पुनरावलोकन को अपनाया गया है और साथ ही न्यायपालिका को स्वतंत्र रखा गया है। यहीं आपको यह बता दें, कि न्यायिक पुनरावलोकन जिसे कई बार न्यायिक पुनरीक्षा भी कहा जाता है, उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके अन्तर्गत कार्यकारिणी के कार्यों (तथा कभी-कभी विधायिका के कार्यों) की न्यायपालिका द्वारा पुनरीक्षा (Review) का प्रावधान हो। दूसरे शब्दों में, न्यायिक पुनरावलोकन से तात्पर्य न्यायालय की उस शक्ति से है, जिस शक्ति के बल पर वह विधायिका द्वारा बनाये कानूनों, कार्यपालिका द्वारा जारी किये गये आदेशों तथा प्रशासन द्वारा किये गये कार्यों की जाँच करती है कि वह मूल ढाँचे के अनुरूप है या नहीं। मूल ढाँचे के प्रतिकूल होने पर न्यायालय उसे अवैध घोषित करता है। परन्तु इस स्वंत्रता के उपरान्त भी भारत में न्यायालय अपने आप किसी भी प्रशासकीय अधिकारी या प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है। न्यायालय लोक प्रशासकों की स्वेच्छाधारिता पर अपना अंकुश और नियंत्रण कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार कुछ निश्चित सीमाओं, परिस्थतियों तथा शर्तों में ही रख सकते हैं। इसकी एक बड़ी शर्त ये है कि न्यायालय प्रशासन के कार्यों में तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकते, जब तक की कोई व्यक्ति, समूह या संस्था न्यायालय में आवेदन-पत्र देकर उससे इस आधार पर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना न करे, कि सरकारी अधिकारियों के किसी कार्य से उसके अधिकारों का अतिक्रमण या हनन हुआ है अथवा ऐसा होने की सम्भावना है। अतः लोक प्रशासन पर न्यायपालिका अपना नियंत्रण, कुछ विशेष परिस्थितियों, सीमाओं और निर्धारित अवसरों पर ही कर सकती है। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट ने पाँच ऐसे अवसरों का उल्लेख किया, जिनमें न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है, ये हैं- अधिकार क्षेत्र का अभाव, अधिकारों के विवेक का दुरूपयोग या सत्ता का दुरूपयोग, वैधानिक त्रुटियाँ, तथ्य की प्राप्ति में त्रुटि, और समुचित प्रक्रिया की गलती। आइये इन बिन्दुओं को थोड़ा विस्तार से जानते हैं।

1. **अधिकार क्षेत्र का अभाव (Lack of Justification)-** प्रत्येक नागरिक संगठन अथवा अधिकारी के कार्यक्षेत्र को, नियमानुसार निर्धारित किया जाता है। ऐसी किसी भी परिस्थितियों में जब कोई प्रशासक अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र या सीमा के बाहर कोई कार्य करता है और उसके ऐसा करने से यदि किसी नागरिक के अधिकार को हानि पहुँचती है, तो वह व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय की शरण ले सकता है। यदि न्यायालय में प्रस्तुत किये गये प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है, कि वह कार्य प्रशासनिक अधिकारी के क्षेत्र में नहीं था तो न्यायालय उस कार्य की अधिकारिता (Ultra Vires) होने,

अर्थात् अधिकारी के कार्यक्षेत्र से बाहर होने के कारण अवैध घोषित कर सकता हैं। इसे न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) का अधिकार ही कहा जाता है। यह सिद्धान्त उन देशों में प्रचलित है, जहाँ संविधान को सर्वोच्च माना जाता है और इसी कारण इन देशों में यह आवश्यक हो जाता है, कि सरकारी अधिकारियों के सारे कार्य संविधान के अनुकूल ही हो। अमेरिका और भारत में न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त हैं।

2. **सत्ता का दुरूपयोग (Abuse of Authority)-** प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिये प्रत्येक अधिकारी के पास सत्ता होती है तथा कतिपय मामलों में वह स्व-विवेक से निर्णय लेने की शक्ति भी रखता है। जब लोक-सेवा के अधिकारी अपने सत्ता और पद (Authority and Post) का प्रयोग अपने विरोधी को जान-बूझकर हानि पहुँचाने या किसी के प्रति बदले की भावना से करें, तो प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण में जा सकता है।
3. **वैधानिक त्रुटियाँ (Error of Law)-** इस बात की पूरी सम्भावना रहती है कि सरकारी अधिकारी कानून की गलत व्याख्या करें और नागरिकों को कानून का गलत ढंग से प्रयोग कर हानि पहुँचाऐं, ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों की रक्षा हेतु, उन कार्यवाहियों की जाँच की माँग कर सकता है, जो वैधानिक दृष्टि से गलत हो। जाँच के उपरान्त यदि न्यायालय ऐसा समझता है कि अधिकारी ने कानून की गलत व्याख्या की है, तो उन कार्यों को न्यायालय में करने असंवैधानिक घोषित कर सकती हैं।
4. **तथ्यों की प्राप्ति में त्रुटि (Error of Fact Finding)-** प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा जारी किये जाने वाले आदेश पूर्णतया तथ्यों पर आधारित होने चाहिये। लोक-सेवा में अधिकारी कभी-कभी किसी मामले की जाँच करने में या तथ्यों का पता लगाने में त्रुटि कर सकते हैं या कभी किसी नागरिक को नुकसान पहुँचाने की नीयत से कोई आदेश प्रसारित करता है। ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय जा सकता है।
5. **समुचित प्रक्रिया की गलती (Error of Procedure)-** लोक-सेवा के प्रायः सभी विभागों के कार्य संचालन के लिये विधि द्वारा प्रक्रिया का निर्धारण कर दिया जाता है। उन निर्धारित प्रक्रियाओं के अन्दर रहकर ही सभी विभाग और उसके अधिकारी कार्य करते हैं। जब अधिकारी या विभाग कोई ऐसा कार्य करते हैं, जिसमें निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, तो प्रभावित नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय की शरण ले सकता है। उदाहरण स्वरूप, यदि किसी कर्मचारी को भ्रष्टाचार के

किसी मामले में बर्खास्त कर दिया गया हो, तो उसे सबसे पहले 'कारण बताओ' सूचना दी जाती है। किसी कर्मचारी को कारण बताओ नोटिस दिये बिना ही बर्खास्त कर दिया जाये, तो इसे प्रक्रिया की गलती कहेंगे तथा ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण में जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के द्वारा आपने एल0डी0 व्हाइट द्वारा बताये गये उन अवसरों के बारे में विस्तार से जाना, जिसमें न्यायपालिका, लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित कर सकती है।

9.4 न्यायिक नियंत्रण की प्रणालियाँ

न्यायिक नियंत्रण के अवसरों को जानने के बाद, यह जानना आवश्यक हो जाता है कि ये नियंत्रण किस प्रकार स्थापित किया जाये? या इसका रूप क्या हो? प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण कई रूपों में स्थापित किया जाता है, क्योंकि न्यायपालिका को प्रशासन पर नियंत्रण का अधिकार भी कई स्त्रोतों से प्राप्त होता है। सामान्य कानून तो, उन्हें यह अधिकार प्रदान करते ही हैं, संविधान और संसद द्वारा निर्मित अधिनियम भी उनके नियंत्रण के अधिकार को शक्ति प्रदान करते हैं। अर्थात् लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने हेतु प्रयुक्त साधनों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता हैं- सामान्य साधन और विशेष साधन या संविधान उपचार।

न्यायपालिका के द्वारा इन दोनों श्रेणियों के अन्तर्गत अनेक साधनों को अपनाते हुए प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। इन सब साधनों को एक आरेख के द्वारा समझा जा सकता है-

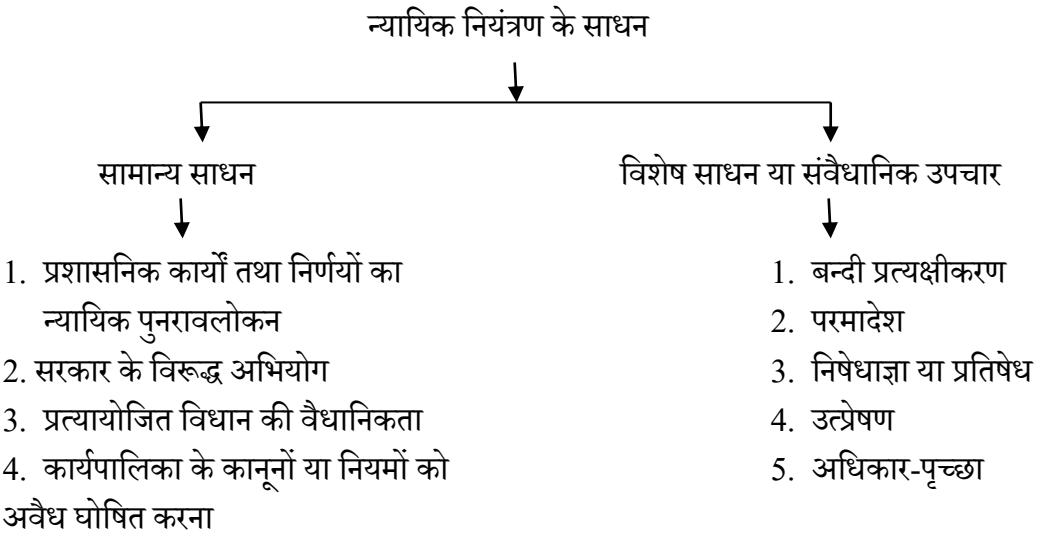

आइये अब न्यायिक नियंत्रण के इन सभी साधनों का विस्तृत रूप से विवेचन करते हैं-

9.4.1 सामान्य साधन

आइये सामान्य साधन के अन्तर्गत निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **प्रशासनिक कार्यों के निर्णयों का न्यायिक पुनर्रावलोकन-** भारत और अमेरिका में न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है, कि वो समय-समय पर प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करती रहे, यदि कोई प्रशासनिक निर्णय संविधान के विरूद्ध है, तो उसे पुनर्रीक्षित कर असंवैधानिक घोषित करें। परन्तु न्यायालय ऐसा तभी कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति न्यायालय का दरवाजा खटखटाये। भारत में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के कार्यों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति कम ही रही है। ऐसा इसलिए क्योंकि, हमारा संविधान न्यायिक समीक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की मर्यादाऐं स्थापित करता है। किन्तु फिर भी नागरिकों के हितों की रक्षा तथा कानूनी प्रक्रियाओं में आस्था प्रकट करने के लिये न्यायपालिका द्वारा कई बार प्रशासनिक कार्यों एवं निर्णयों की समीक्षा की गयी हैं। यद्यपि न्यायिक समीक्षा का क्षेत्र संसद द्वारा सीमित किया हुआ है, फिर भी अनेक अवसरों पर न्यायालयों ने प्रशासनिक कृत्यों की समीक्षा कर उनके गुण-दोष वर्णित किये हैं। उच्चतम न्यायालय ने कई बार अपने ही निर्णयों की भी पुनःसमीक्षा की है। लगभग इसी प्रकार की स्थिति ब्रिटेन में है। वहाँ न्यायिक पुनरावलोकन ज्यादा प्रभावी नहीं हो सकता है और संसदीय कानून ने अनेक प्रशासकीय कार्यों को न्यायिक पुनरावलोकन के क्षेत्र से बाहर भी रखा है, लेकिन अमेरिका में किसी भी प्रशासकीय कार्य और निर्णय को न्यायिक पुनरावलोकन के क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है।
2. **सरकार के विरूद्ध अभियोग-** भारत के राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के अतिरिक्त अन्य लोक-सेवकों को भी अवैधानिक कार्यों के लिये आम व्यक्ति की भाँति अभियोगों का सामना करना पड़ता हैं। पद पर रहते हुए अपेक्षित दायित्वों की पूर्ति तथा शक्तियों के उपयोग के क्रम में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के अतिरिक्त अन्य सभी मंत्री अधिकारी कानून के प्रति उत्तर दायी हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद- 300 में ये कहा गया है कि, ''भारत सरकार के विरूद्ध या उसके द्वारा भारतीय संघ के नाम से अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किसी राज्य की सरकार के विरूद्ध या उसके द्वारा उस राज्य के नाम से भी अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं।'' इसका आशय यह है, कि सिर्फ केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा ही मुकदमा दायर नहीं किया जाता है, बल्कि केन्द्र और राज्य सरकार के विरूद्ध भी मुकदमा दायर किया जाता है और सरकार को एक विरोधी पक्ष के रूप में न्यायालय ले जाया जा सकता हैं। भारत में सरकार के विरूद्ध संविदा और उपकार-कृत्य सम्बन्धी मुकदमें दायर किये जाते हैं। लेकिन प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा किये गये पदों के दुरूपयोग के मामले या अन्य भ्रष्टाचार सम्बन्धी मामलें में अधिकारी के विरूद्ध व्यक्तिगत रूप से मुकदमा चलता है। सरकार के कर्मचारी होने के नाते सरकार उसमें पार्टी नहीं रहती है।

इंग्लैण्ड में तो यह कहावत प्रचलित है कि ''सम्राट को कोई भूल नहीं करता।'' अतः 1947 के पहले सम्राट पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। अब 1947 के 'कानूनी कार्यवाही अधिनियम' (Crown Proceeding Act) द्वारा ब्रिटेन में राज्य की उन्मुक्ति को समाप्त कर दिया गया है। अमेरिका में भी कुछ परिस्थितियों में सरकार के विरूद्ध मुकदमा किया जा सकता है।

3. **प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता-** किसी उच्च सत्ता प्राप्त अधिकारी के द्वारा, निम्न अधिकारी को, नियम एवं विधि निर्माण की शक्तियों का जब भी प्रत्यायोजन किया जाता है, तो इस सन्दर्भ में न्यायालयों को ये शक्ति प्राप्त होती हैं, कि वे इस प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता को उचित करार दें या नहीं। इस सन्दर्भ में सदा नियमों एवं विधानों का पालन किया जाना चाहिये। उचित मापदण्ड़ों पर खरे ना उतरने वाले प्रत्यायोजित विधायनों का न्यायालय द्वारा परीक्षण हो सकता है।
4. **कार्यपालिका के कानूनों या नियमों को अवैध घोषित करना-** कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानूनों या अध्यादेशों को भी, न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में की जाने वाली अपीलों के सन्दर्भ में ये देखना आवश्यक होता है, कि जिस प्रशासकीय कानून के सन्दर्भ में अपील की जा रही है, उसमें प्रभावित पक्ष के द्वारा न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था प्रदान की गयी है, अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति तथा राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेशों पर भी न्यायालय विचार कर सकते हैं। यदि ऐसे अध्यादेश, संविधान के किसी उपबन्ध का उल्लंघन करते हैं तो उन्हें न्यायालय द्वारा असंवैधानिक करार दिया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त साधन कुछ ऐसे साधन हैं, जिनको अपनाते हुये न्यायपालिका प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करती है।

9.4.2 विशेष साधन या संवैधानिक उपचार (Special or Extraordinary Judicial Remedies)

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने के लिये न्यायपालिका को उपर्युक्त साधारण अधिकारों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट साधन भी प्राप्त हैं। इन विशिष्ट साधनों को ही असंवैधानिक उपचार कहा जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 32 में सर्वोच्च न्यायालय को तथा अनुच्छेद- 226 के अन्तर्गत, उच्च न्यायालयों को कुछ विशिष्ट प्रकार के लेख या आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद- 32 के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के हनन के मामलों की सुनवाई का अधिकार है। इस क्रम में सर्वोच्च न्यायालय रिट निकाल सकता है। अनुच्छेद- 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों सहित संविधान द्वारा

अधिरोपित किसी अन्य मर्यादा के उल्लंघन पर भी सुनवाई करने तथा रिट निकालने का अधिकार है। इस सम्बन्ध में उच्च न्यायालयों का क्षेत्र, सर्वोच्च न्यायालय से व्यापक है।

इन असाधारण उपचारों का इतिहास काफी लम्बा है तथा ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास में देखा जा सकता है। वहाँ इनको न्याय के मूल स्त्रोत, राजा के नाम पर प्रचारित विशेषाधिकार लेख कहा जाता हैं। इन उपचारों को असाधारण इसलिये कहा जाता है, क्योंकि बन्दी प्रत्यक्षीकरण को छोड़कर अन्य सभी लेख, न्यायालयों द्वारा किसी के अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि उसकी स्वेच्छा से प्रसारित किये जाते हैं और केवल वहीं प्रसारित किये जाते हैं, जहाँ कि अन्य साधन अपर्याप्त हों। प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के विभिन्न लेखों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. **बन्दी प्रत्यक्षीकरण (The Writ of Habeas Corpus)-** इस याचिका को अंग्रेजी में 'हेबियस कॉर्पस' कहा जाता है। 'हेबियस कॉर्पस' एक लेटिन शब्द है और इसका शाब्दिक अर्थ है- शरीर प्राप्त करना। बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट एक आदेश के समान होती है। इस रिट में उस व्यक्ति को, जिसने किसी अन्य व्यक्ति को बन्दी बना रखा है, न्यायालय आदेश देता है कि, बन्दी बनाये गये व्यक्ति को अविलम्ब सशरीर न्यायालय में प्रस्तुत करे, जिससे न्यायालय उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के कारणों तथा औचित्यता की वैधानिकता की जाँच कर सके, जिनके द्वारा उस व्यक्ति को बन्दी बनाया गया है। यदि उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के पर्याप्त कारण उपलब्ध ना हों, तो बन्दी बनाये गये व्यक्ति को न्यायालय मुक्त भी कर सकता हैं। इस रिट में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की भावना तो काम करती ही है, साथ ही इसका उद्देश्य यह भी है कि बिना पर्याप्त कारण के मनमानी ढंग से किसी भी व्यक्ति को बन्दी नहीं बनाया जाये। परन्तु मीसा (MISA), डी0आई0आर0 (D.I.R.) तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (National Security Act) ने न्यायालय के बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिकार पर प्रहार किया है। एल0डी0 व्हाइट का भी यह मानना है कि, ''इस लेख का प्रभाव हर हालत में यह होता है कि, बन्दी बनाये गये व्यक्ति को उसके बन्दी बनाये जाने की वैधानिकता की जाँच करने के लिये न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।'' इस अधिकार पर सबसे बड़ी बांधा तब आती है, जब संसद या राज्य विधानमण्डल कानून पास करके, ऐसा प्रावधान कर दे कि किसी भी व्यक्ति को बिना कोई कारण बताये, अमुक एक्ट के अनुसार नजरबन्द किया जा सकता है। वास्तव में इस प्रकार के कानून नागरिकों की स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों पर घातक हमले हैं।

2. **परमादेश (The Writ of Mandamus)-** परमादेश को अंग्रेजी 'मैनडेमस' (Mandamus) कहा जाता है। मैनडेमस भी एक लेटिन शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- समादेश अथवा किसी को आज्ञा देना। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट ने कहा है कि, ''यह लेख न्यायालय द्वारा सामान्य रूप से किसी व्यक्ति की याचिका पर जारी किया जाता हैं, जिससे सम्बद्ध अधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन करें।'' परमादेश लेख द्वारा न्यायालय सार्वजनिक निकास, सार्वजनिक कर्मचारी, निगम या संस्था को आदेश दे सकता है, कि कर्तव्यों का पालन कानून के अनुसार करें। यह लेख लोक-कर्मचारियों को उनके उन कर्तव्यों को भी याद दिलाता है, जिन्हें करने के लिये वह कर्मचारी कानून के द्वारा बाध्य हो। यह लेख किसी निगम या अधिकारी के अलावा अधीनस्थ न्यायालयों को भी जारी किया जा सकता हैं। यह आदेश राष्ट्रपति, राज्यपाल तथा किसी निकायों के विरूद्ध प्राप्त नहीं किया जा सकता हैं।

3. **निषेधाज्ञा या प्रतिषेध (The Writ of Prohibition)-** निषेधाज्ञा या प्रतिषेध, एक ऐसा लेख है जो उच्च-स्तरीय न्यायालय द्वारा, अधीनस्थ न्यायालयों को जारी किया जाता हैं। इस लेख का उद्देश्य, नीचे के या अधीनस्थ न्यायालयों को उन कार्यों से रोकना है, जिन्हें करने की अनुमति उन्हें कानून द्वारा नहीं मिली है। सरल शब्दों में कहें तो यह लेख उस समय जारी किया जाता है, जब कोई अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जा रहे हो। यह लेख अधीनस्थ न्यायालयों को विवादपूर्ण विषयों पर विचार करने से टोकने के लिये प्रसारित किया जाता है। इस लेख की विशेषता ये है, कि इसे केवल न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक न्याधिकरणों के विरूद्ध ही जारी किया जा सकता हैं। यह रिट ऐसे किसी प्रशासनिक अधिकारी के विरूद्ध नहीं दी जा सकती हैं जो न्यायिक कार्य नहीं करता हैं। यह रिट कार्यवाही लम्बित रहने या आदेश निकासी से पूर्व भी जारी हो सकती हैं।

4. **उत्प्रेषण (The Writ of Certiorari)-** उत्प्रेषण के लिये अंग्रेजी में 'सरटिओरेरी' शब्द प्रयुक्त होता है। लेटिन शब्द ''सरटिओरेरी''(Certiorari) का शाब्दिक अर्थ है, 'प्रमाणित होना' या 'निश्चित होना'। उत्प्रेषण उस लेख का नाम है, जो किसी उच्च स्तरीय न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को, उस समय जारी किया जाता है, जब वह किसी मुकदमें की कार्यवाही से, असंतुष्ट हो। इसके अन्तर्गत उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय से सभी प्रकार के रिकॉर्ड इस बात की जाँच-पड़ताल के लिये मंगवा सकता हैं कि कहीं अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर तो नहीं गया है। इस लेख की माँग उन विवादों के सम्बन्ध में की जाती है, जिनकी प्रक्रिया सामान्य विधि के अनुरूप नहीं होती है। यह लेख प्रायः न्यायिक कार्य के विरूद्ध ही प्रसारित किया जाता है। इस आधार पर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय

रूक जाता है। यह लेख परमादेश और निषेधाज्ञा दोनों के गुणों का मिश्रण होता हैं, क्योंकि इसके अनुसार, कुछ करने के लिये और कुछ ना करने की आज्ञाऐं दी जाती हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रतिषेध कार्यवाही के दौरान जारी किया जा सकता है, जबकि उत्प्रेषण निम्न श्रेणी के न्यायालयों द्वारा आदेश दे चुकने के पश्चात जारी होता है।

5. **अधिकार-पृच्छा (The Writ of Quo-Warranto)-** अधिकार-पृच्छा को अंग्रेजी में 'को-वारण्टो' कहते हैं। लेटिन शब्द 'को-वारण्टो' (Quo-Warranto) का शाब्दिक अर्थ है- किसी अधिकार या प्राधिकार द्वारा। अधिकार-पृच्छा को, लोक-सत्ता के अधिकारियों पर न्यायिक नियंत्रण रखने की एक प्रत्यक्ष विधि के तौर पर जाना जाता है। अधिकार-पृच्छा वह लेख या न्यायिक अधिकार है, जिसके द्वारा न्यायालय, किसी व्यक्ति की याचिका पर किसी पद के ऊपर किये गये दावे के औचित्य की जाँच करता हैं अर्थात्, सरल शब्दों में, जब कोई व्यक्ति न्यायालय में यह याचिका प्रस्तुत करता है, कि उसका पद किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा लिया गया है, तो न्यायालय उस पद के औचित्य की जाँच करवा सकता है। यदि उस पद पर आसीन व्यक्ति का दावा वैधानिक रूप से सही नहीं है, तो सम्बन्धित व्यक्ति को पद से हटाया जा सकता है। यह कार्यवाही केवल लोक-पदों, स्थायी-पदों तथा ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है, जिनकी नियुक्ति संविधान या कानून के किसी नियम का उल्लंघन करती हों। यह कार्यवाही सम्बन्धित व्यक्ति से यह जानना चाहती है कि, उसने किस आधार पर यह पद धारण कर रखा हैं। दूसरे शब्दो में, यह रिट अवैध दावेदारी समाप्त करके लोकहित को महत्व देती हैं। यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि परमादेश, लोक-सेवकों तथा न्यायालयों दोनों के विरूद्ध जारी हो सकता है, जबकि निषेधाज्ञा एवं उत्प्रेषण दोनों रिटें एक साथ भी जारी की जा सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त साधनों, उपायों एवं असाधारण उपचारों के द्वारा न्यायपालिका, प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करती हैं। भारत, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन तथा अन्य प्रजातान्त्रित देशों की न्यायपालिकाओं ने अपने नियंत्रण के द्वारा प्रशासन को अपनी सीमा में रहने के लिये अनेक बार बाध्य किया हैं। उन देशों में जहाँ न्यायपालिका को सर्वोच्च संरक्षण(Supreme Guardian) की स्थिति प्राप्त हैं, प्रजातंत्र ज्यादा सफल हुआ है और न्यायपालिकाओं ने अपने न्यायिक पुनर्रावलोकन (Judicial Review) तथा अन्य महत्वपूर्ण लेखों के द्वारा शक्तिशाली सरकारों के भी अवैध फैसलों को निरस्त किया है और नियंत्रण में रहने को बाध्य किया है।

9.5 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं

न्यायिक नियंत्रण की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके माध्यम से आम नागरिक के अधिकार एवं स्वतंत्रता सुनिश्चित होती हैं, लेकिन फिर भी लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की अपनी कुछ सीमाऐं या समस्याऐं हैं, जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. हेरिस तथा वार्ड (Hariss and Ward) का मत है कि ''पूर्व न्यायिक नियंत्रण शासन की नियामकता एवं कुशल संचालन को रोक सकता हैं।'' अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये तो न्यायपालिका बेशक आवश्यक है, परन्तु प्रशासकीय क्षेत्र में इसका अत्यधिक प्रयोग करने से प्रशासन अपंग (Handicapped) हो जाता हैं।
2. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण न्यायपालिका स्वयं नहीं करती, नियंत्रण के लिये इसके पास आरम्भिक शक्ति नहीं हैं। यह तभी हस्तक्षेप कर सकती है, जब कोई व्यक्ति आवेदन देकर इससे अनुरोध करता है। अतः न्यायालय स्वयं हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति या समूह उनके समक्ष प्रार्थना करता है, तभी वे हस्तक्षेप करते हैं।
3. न्यायिक प्रक्रिया अत्यनत जटिल एवं उलझी हुई प्रक्रिया है। इसमें नियमों, कानूनों, तथ्यों, प्रमाणों और गवाहों इत्यादि की कार्यवाहियों की इतनी उलझनें हैं, कि प्रशासकीय अन्याय का शिकार व्यक्ति न्यायालय में जाने की अपेक्षा चुप रहना ज्यादा बेहतर समझता है।
4. न्यायिक प्रक्रिया अत्यन्त ही विलम्बकारी प्रक्रिया (Time Taking Process) होती हैं। कई बार निर्णय में इतनी देरी हो जाती है, कि उस समय तक नागरिक को बहुत अधिक मात्रा में, ऐसी होनि पहुँच चुकी होती है, जिसकी भरपाई असम्भव होती है।
5. न्यायिक प्रक्रिया, न सिर्फ सुस्त और जटिल है, बल्कि यह प्रक्रिया बहुत अधिक खर्चीली है। न्यायिक कार्यवाही करने और अदालत में मुकदमा चलाने के लिए अत्यधिक व्यय करना पड़ता है। ये खर्च लम्बे समय तक बर्दाश्त कर पाना आम व निर्धन व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं हो पाता है। अतः यह सबके लिये सुलभ नहीं है।
6. अनेक प्रशासकीय कार्य ऐसे होते हैं, जिन्हें न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाता है। ऐसे प्रशासकीय कार्यों का न्यायिक पुनरावलोकन या न्यायिक समीक्षा नहीं की जाती हैं।

7. न्यायिक नियंत्रण घटना के बाद की प्रक्रिया है। जब कोई घटना घट जाती है, तब उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और तभी न्यायिक नियंत्रण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।
8. आजकल प्रशासन का कार्य अत्यधिक तकनीकों तथा विशेषकृत होता जा रहा हैं। न्यायालयों के न्यायाधीश, विशेष तकनीकी योग्यता के अभाव में समुचित निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होते हैं।
9. कोई एक मुदकमा या वाद, जब विभिन्न न्यायालयों में पृथक-पृथक निर्णय प्राप्त करता है, तो न्याय-प्रणाली पर आस्था कम होती है। यही कारण है कि न्यायालयों में अपीलें बहुत कम होती हैं।

वस्तुतः स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका किसी भी व्यवस्था का मुख्य आधार होती हैं। लार्ड ब्राइस का कथन है- ''कानून का सम्मान तभी होता है, जब वह निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा के लिये ढाल बन जाता है और प्रत्येक नागरिक के निजी अधिकारों का संरक्षण करता हैं। यदि अंधेरे में न्याय का दीपक बुझ जाये तो उस गहन अंधकार का अनुमान लगना कठिन है।'' उपर्युक्त सीमाओं और समस्याओं ने प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के समक्ष अवश्य ही प्रश्न-चिन्ह खड़े कर दिये हैं और इसकी उपयोगिता को कुछ कम कर दिया हैं। लेकिन इन बांधाओं और सीमाओं के बाद भी प्रजातांत्रिक, संसदात्मक, अध्यक्षात्मक तथा विश्व की समस्त शासन-प्रणालियों में कमोबेश न्यायपालिका के नियंत्रण को आवश्यक माना गया हैं। भारत के सन्दर्भ में तो निश्चय ही सर्वोच्च न्यायालय नागरिक स्वतंत्रता एवं मौलिक अधिकारों की संरक्षक और रक्षक दोनों ही हैं। अतः स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका सफल और कुशल प्रजातंत्र की पहली आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में प्रशासन पर नियंत्रण का क्या साधन हैं?
2. बड़े न्यायालयों को छोटे न्यायालयों से रिकॉर्ड मंगवाने की शक्ति प्रदान करने वाला लेख या साधन का क्या नाम है?
3. किस लेख के द्वारा न्यायालय, सरकारी अधिकारों को किसी ना किसी प्रकार से कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता हैं?
4. 'हैबियस कॉर्पस' का शाब्दिक अर्थ क्या है?

9.6 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात आप अवगत हो गये होंगे, कि प्रशासन पर बाह्य नियंत्रण विधायी और न्यायिक साधनों द्वारा होता हैं। विधायी नियंत्रण कार्यपालिका शाखा की नीति तथा व्यय को नियोजित करता हैं और

न्यायिक नियंत्रण प्रशासकीय कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता हैं। किसी भी सरकारी अधिकारी द्वारा नागरिकों के संवैधानिक या मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण होने पर न्यायपालिका उनकी रक्षा करता हैं और दोषियों को दण्डित करता हैं। ब्रिटेन की भाँति भारत में भी कानून के शासन की व्यवस्था की गयी हैं। भारत में न्यायपालिका को प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु कुछ विशेष साधन भी प्रदान किये हैं, जिनका समुचित उपयोग करते हुए न्यायपालिका लोक-प्रशासन को नियंत्रित करती हैं। परन्तु न्यायपालिका द्वारा लोक-प्रशासन पर नियंत्रण कुछ विशिष्ट परिस्थितियों, सीमाओं और निर्धारित अवसरों पर ही किया जा सकता हैं।

9.7 शब्दावली

अधिकारातित- अधिकार-क्षेत्र से बाहर का, पुनरावलोकन- दोहराना, किसी किये हुये कार्य को फिर से देखना या करना, अवैधानिक- विधि विरूद्ध या कानून के खिलाफ, अभियोग- किसी पर लगाया गया आरोप, आक्षेप, दोषारोपण, अपकार-कृत्य- अनुचित आचरण या व्यवहार, उन्मुक्ति- छुटकारा या बंधनहीनता, अध्यादेश-किसी विशेष स्थिति से निपटने के लिये राज्य के प्रधान शासक द्वारा जारी किया गया आदेश या आज्ञा, प्रत्यायोजन- अपने अधिकार या शक्तियाँ किसी अन्य व्यक्ति को सौंपना या प्रदान करना, विधान- नियम या कायदा या बतलाया हुआ ढंग या प्रणाली या रीति, अविलम्ब- बिना विलम्ब के या तुरन्त या शीघ्र।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. न्यायिक पुनरीक्षण, **2.** उत्प्रेषण, **3.** परमादेश, **4.** शरीर प्राप्त करना

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002-03

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर- 2001
2. डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की प्रकृति, साधन और सीमाओं की विवेचना कीजिये।
2. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के विभिन्न प्रकार क्या हैं? लोक-प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के गुण और सीमाओं का उल्लेख कीजिये।
3. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का विस्तार से वर्णन करिये।

इकाई- 10 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान (मॉडल), मैक्स वेबर का नौकरशाही मॉडल

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ

10.3 मैक्स वेबर- एक परिचय

10.4 नौकरशाही का अर्थ

10.5 वेबर की नौकरशाही की अवधारणा

10.6 मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल

10.7 वेबेरियन मॉडल के मुख्य तत्व

- 10.7.1 निर्वेण्यक्तिक व्यवस्था
- 10.7.2 नियमों की सर्वोच्चता
- 10.7.3 निपुणता अथवा कौशल
- 10.7.4 पदसोपानियता
- 10.7.5 लोक हित और निजी हितों में टकराव
- 10.7.6 लिखित दस्तावेजों की मौजूदगी

10.8 वेबेरियन नौकरशाही मॉडल की आलोचना

10.9 वेबर की प्रतिमान अवधारणा का मूल्यांकन

10.10 सारांश

10.11 शब्दावली

10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.14 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री

10.15 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

मैक्स वेबर प्रशासनिक जगत का एक महानतम् प्रशासनिक चिन्तक है। वह नौकरशाही के प्रतिमान का अद्वितीय सिद्धांतकार है। उसको नौकरशाही (Bureaucracy) का पर्यायवाची कहा जा सकता है, लेकिन यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि मैक्स वेबर से पूर्व अनेक चिन्तकों ने नौकरशाही को अपने अपने नजरिये से देखा और परखा है। कुछ विचारकों ने नौकरशाही की प्रशंसा की है तो कुछ ने उसकी निन्दा। इसके पक्ष में तर्क भी दिए गए हैं और इस पर हमला भी किया गया है। यह निश्चित तौर से कहा जा सकता है कि नौकरशाही के विचार अथवा अवधारणा से सम्बन्धित तीन धाराऐं अस्तित्व में हैं। पहली धारा का निर्माता कार्ल मार्क्स (1818-1883) है। यह नौकरशाही को एक अभिशाप मानता है। उसके अनुसार नौकरशाही शोषणपरक समाज व्यवस्था का अभिन्न अंग है। उसने नौकरशाही की बुराईयों पर खुलकर लिखा है। दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व राबट मर्टन और पीटर ब्लाउ जैसे अमरीकी चिन्तक करते हैं। इनका दृष्टिकोण सुधारवादी है। यह नौकरशाही की बुराईयों-जैसे मानवीय क्षमता को कम आंकना या कार्यक्षेत्र के माहौल को गन्दा करना-की ओर इशारा करके नौकरशाही में सुधार लाना चाहते हैं। तीसरा वह समूह है जो नौकरशाही को आधुनिक समाज के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानता है। इस समूह का प्रतिनिधित्व मैक्स वेबर करता है। वह नौकरशाही को किस रूप में लेता है और उसका कोन सा प्रतिमान (मॉडल) तैयार करता है, इसकी चर्चा हम अगले पन्नों में खुलकर करेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ और उसका महत्व समझ पायेंगे।
- मैक्स वैबर के जीवन-वृत के साथ उसके प्रशासनिक चिन्तन के लक्ष्य को समझने में आपको आसानी होगी।
- वेबर द्वारा तैयार किये गये नौकरशाही के प्रतिमान (मॉडल) को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- वेबर द्वारा प्रस्तुत की गई विधिक और तार्किक(Legal Rational) अवधारणा से परिचित होंगे।
- नौकरशाही के प्रतिमान के वेबरवादी प्रतिमान की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- वेबर के नौकरशाही के प्रतिमान को जानकर नौकरशाही की अनिवार्यता को स्वीकार कर सकेंगे।

10.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ (Meaning of Comparative Public Adiministration)

राजनीतिक विज्ञान में राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए प्लेटों से लेकर मार्क्स तक अध्ययन के अनेक तरीकों (Methods) को अपनाया गया है। इनमें आगमनात्मक (Inductive), निगमनात्मक (Deductive), पर्यावेक्षगात्मक (Observational) अनुभावात्मक (Empirical), तुलनात्मक, दार्शनिक और ऐतिहासिक तरीकों का समय- समय पर प्रयोग हुआ है। हालांकि लोक प्रशासन एक बहुत पुराना विषय है, लेकिन एक शास्त्रीय या सैद्धांतिक हैसियत से यह विषय बीसवीं सदी की देन है। परम्परागत-दार्शनिक तरीका बीसवीं सदी के शुरू में अपनाया जाता रहा, लेकिन बाद में यह स्वीकार किया गया कि परम्परागत दार्शनिक तरीका न तो वैज्ञानिक है और न तथ्यपरक है। इसलिए लोक प्रशासन में ऐतिहासिक और तुलनात्मक तरीके को ज्यादा तर्कसंगत समझा गया। इस नज़रिये का हामी वुड्रो विल्सन (1856-1924) है।

वुड्रो विल्सन ने प्रशासन के व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन के लिये दार्शनिक तरीके (Method) को खारिज करते हुये ऐतिहासिक और तुलनात्मक तरीके पर जोर दिया। उसका कहना था कि प्रशासनिक क्षेत्र में तुलनात्मक तरीके का सबसे सफ़ल और सुरक्षित ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। विल्सन के अनुसार इतिहास एक माध्यम है प्रशासनिक अवस्थाओं को आँकने का, उन व्यवस्थाओं का अध्ययन करके तथा वर्तमान के विभिन्न समाजों या राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अवलोकन और आयात करके उनका तुलनात्मक अध्ययन ही, तुलनात्मक प्रशासन कहलाता है। सरल शब्दों में यदि किसी शिक्षार्थी को किसी सरकार के प्रशासन तन्त्र को समझना है तो उसकी तुलना दूसरी सरकारों के प्रशासन तंत्र से करना होगी चाहे उन सरकारों का स्वरूप जनतन्त्रीय हो, अधिनायकवादी या राजतंत्रीय। उसके अनुसार तथ्यात्मक अध्ययन के लिये तरह-तरह के राज्यों में प्रशासन के आधारों को समझना होगा; विभिन्न व्यवस्थाओं की कमजोरियों, बुराईयों, उनकी विशेषताओं और गुणों को समझना होगा और यह तभी सम्भव है, जब उनकी तुलना विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं से की जाये। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के अनेक फायदे समाने आयेंगे-

- यह पता लेगा कि दूसरी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अराजकता, अस्थिरता, भ्रान्तियाँ क्यों पैदा हुई और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में इन बुराईयों को कैसे रोका जा सकता है।
- प्रशासन के क्षेत्र में आत्मालोचन के दरवाजे खुलेंगे।
- तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर लोक प्रशासन के सिद्धान्त निर्मित होंगे।
- नई प्रशासनिक तकनीकों का आयात भी होगा और नई तकनीकें विकसित होंगी।

- तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही लोक प्रशासन के प्रतिमान विकसित होंगे।

10.3 मैक्स वेबर- एक परिचय (Max Weber : An Introduction)

मैक्स वेबर और नौकरशाही (Bureaucracy) पढ़ने में यह दो अलग नाम हैं लेकिन वास्तव में यह एक दूसरे के पूरक हैं। नौकरशाही को समझना है तो मैक्स वेबर को पढ़ना होगा। पहले लिखा जा चुका है कि कार्ल मार्क्स नौकरशाही का कटु आलोचक था, इसलिये अगर नौकरशाही के नकारात्मक पहलू को समझना है तो मार्क्स का अध्ययन जरूरी है, लेकिन यदि नौकरशाही के सकारात्मक स्वरूप को देखना है तो मैक्स वेबर का अध्ययन अनिवार्य है। वेबर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नौकरशाही के सही अर्थ को समझाने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधियों का बखूबी प्रयोग किया है। इसलिये उनके द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही सम्बन्धी विवेचना तथ्यपरक भी है और वैज्ञानिक भी।

मैक्स वेबर का जन्म 1864 में जर्मनी में हुआ। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद हायडलर्बग के विधि विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। 1889 में उन्होंने मध्ययुगीन व्यापार संगठनों पर विधिक और ऐतिहासिक उपागम (Approach) के माध्यम से अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसपर उनको डॉक्टरेट की उपाधि मिली। उन्होंने अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर विस्तार से बहस की। लेकिन मौलिक रूप से वेबर एक अर्थशस्त्री थे और इसीलिये वह 1894 में फीडेलर्बग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बनाये गये। वेबर के बारे में दो बातें याद रखना जरूरी हैं। पहली यह कि वेबर व्यवस्थित और विश्लेषणात्मक (Systematic and Analytical) अध्ययन में विश्वास रखते थे। दूसरी बात यह कि वह पुस्तकालयों से निकलकर यर्थात के संसार में अनुभव (Empirical) के आधार पर ज्ञान हासिल करना चाहते थे। उनका ग्रन्थ ''The Theory of Social and Economic Organisation'' वेबर विचारों की अभिव्यक्ति है। उनकी आस्था लोकतन्त्र तथा उदारवाद में थी और वह यह मानते थे कि तत्कालीन समाज (जर्मनी का) जिस प्रकार प्रशासन-तंत्र में फंसा हुआ है वह केवल अधिनायकवादी शासन-तंत्र को मजबूत करेगा जो उदारवाद के लिये खतरे की घंटी थी। वेबर को इन अवधारणाओं की रौशनी में अब हम आगे नौकरशाही से सम्बन्धित उनके योगदान का अध्ययन करेंगे।

10.4 नौकरशाही का अर्थ (Meaning of Bureaucracy)

नौकरशाही के सन्दर्भ में मैक्स बेबर को समझने से पहले हमें नौकरशाही को एक प्रशासन-तंत्र के रूप में और शास्त्रीय (Academic) अध्यन की हैसियत से उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझना होगा। जब से सभ्य समाज का उदय हुआ है लोक सेवा और उससे सम्बन्धित सेवी-वर्ग किसी न किसी रूप में व्यवस्थित सरकारों का एक

महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। प्रत्येक संगठित समाज में रोमन साम्राज्य से लेकर चीनी राजनीतिक व्यवस्था तक यहाँ तक की कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्रशासन-तंत्र या नौकरशाही के महत्व को स्वीकार किया गया है। नौकरशाही एक संस्था तो है ही उससे अधिक वह एक मनोवृत्ति है और इतिहास ऐसी मिसालों से भरा पड़ा है, जो यह सिद्ध करता है कि प्रशासकीय पदों पर जो व्यक्ति तैनात रहते हैं वे एक विशिष्ट प्रवृत्ति को अपने काम काज से दर्शाते हैं। कालान्तर में यही विशिष्ट प्रवृत्तियाँ सार्वभौमिक रूप ले लेती हैं जिनसे नौकरशाही पचिहानी जाती है।

नौकरशाही (Bureaucracy) शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रंच अर्थशास्त्री एम0 डे0 गूरने ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में किया। धीरे-धीरे यह शब्द फ्रांस में बहुत प्रचलित हो गया। बाद में इस शब्द का आयात ब्रिटेन में समाजशास्त्रीयों ने 19वीं सदी में करना आरम्भ कर यिा। अनेक ब्रिटिश चिन्तक जिनमें जे0एस0 मिल बहुत आगे थे नौकरशाही विषय से अछूते नहीं रहे। मिल ने तो नौकरशाही को अपनी विश्लेषण श्रृंखला का एक हिस्सा ही बनालिया। मोसका और मिशेल ने इस विषय पर खुलकर लिखा। राबर्ट के0 मर्टन ने नौकरशाही की प्रवृत्ति को बड़े सुन्दर शब्दों में इस तरह लिखा है। ''एक युवा और ऊर्जस्वी नया स्नातक बड़े जोशों-खरोश के साथ नौकरशाही में दाखिल होता है, लेकिन हम उसे 'नौकरशाह' बनते हुये पाते हैं: अर्थात् निष्क्रिय, उदासीन, लकीर का फ़कीर, विलम्बकारी और या तो गैर जिम्मेदार या फिर अत्यन्त सर्तक। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसके यह लक्षण दिखाई देने लगते हैं उसकी प्रशिक्षित अयोग्यता प्रकट होने लगती है। नौकरशाही अपने पद धारकों का इस प्रकार से समाजीकरण करती है कि वे किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिये अयोग्य और लापरवाह हो जाते हैं। यह (नौकरशाही) 'अयोग्यता' के लिये एक प्रशिक्षण स्थल मोहय्या करती है।'' इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद नौकरशाही का स्वरूप और नौकरशाहों की मनोवृत्ति बड़ी आसानी से समझ में आ जाती है।

लेकिन नौकरशाही के बारे में मर्टन का विश्लेषण एक तरफा है। अतः नौकरशाही को विस्तार से समझने का एक और केवल एक माध्यम है और वह है मैक्स वेबर जिसने प्रशासन-तंत्र का व्यवस्थित और अनुभवात्मक ढंग से अध्ययन किया है। उसने नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया जिससे प्रशासन-तंत्र का कोई भी सिद्धान्तकार अछूता नहीं रहा। उसके द्वारा निर्मित मॉडल प्रशासन-तंत्र की आत्मा माना जाता है, जिसने नौकरशाही को एक नया आयाम दिया है।

10.5 मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा (Bureaucracy and Max Weber's Concept)

नौकरशाही की चर्चा पर मैक्स वेबर का नाम न आये यह सम्भव नहीं है। वह एक ऐसा चिन्तक है जिसने नौकरशाही के चरित्र का बड़े विस्तार से और व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण से अन्य

चिन्तकों का नौकरशाही के प्रति नज़रिया बदला है और यह स्वीकार किया जाने लगा है कि मौजूदा राजनीतिक व्यवस्थाओं में नौकरशाही एक अपरिहार्य भूमिका अदा करती है। प्रशासन-तंत्र या नौकरशाही क्या है इस सवाल का उत्तर वेबर नहीं देता। वह नौकरशाही को परिभाषा के दायरे में भी सीमित करना नहीं चाहता। वह केवल नौकरशाही के चरित्र को समझाने का प्रयास करता हैं। जहाँ तक विश्लेषण का सवाल है, वह चयनित अधिकारियों के प्रशासनिक ढाँचे'' को प्रशासन-तंत्र की इकाई मानकर उसका विश्लेषणकरता नजर आता हैं ''चयनित अधिकारियों'' से उसका अभिप्राय ''नियुक्त अधिकारियों'' से है। प्रभुत्व और सत्ता वेबर के अनुसार नौकरशाही का आधार भी है और ध्येय भी, इस दृष्टि से वेबर ने नौकरशाही को आनुवंशिक और कानूनी-तार्किक (Legal-Rational) दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है। पारम्परिक (Traditional) और करिश्माई (Charismatic) या चमत्कारी नौकरशाही आनुवंशिक वर्ग के अन्तर्गत आती है, जहाँ पैतृक नौकरशाही का चलन हो, जबकि कानूनी-तार्किक वर्ग में कानूनी तरीके से चयनित नौकरशाही आती है। दोनों ही प्रकार की नौकरशाही में अधिकांश प्रवृत्तियाँ सामान्य होती हैं जबकि कुछ में भिन्नता होती है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है वेबर ने नौकरशाही के अध्ययन में अनेक उपागमों का सहारा लिया है। इस कारण वह सटीक निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। उदाहरण के लिये-

- ऐतिहासिक उपागम के माध्यम से उसने पश्चिमी समाजों में मौजूद तकनीकी और प्रशासनिक कारणों की खोज करके नौकरशाही के निर्माण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया और इसी ज्ञान के आधार पर उसने नौकरशाही के मॉडल की रूपरेखा तैयार की।
- वेबर ने कानून के महत्व को इतना अधिक स्वीकार किया कि नौकरशाही संरचना में वह कानून को निर्णायक तत्व मानने लगा।
- नौकरशाही के चरित्र-निर्माण का एक बड़ा कारण उसने उसका अभिजात्य-वर्ग (Elite Class) से सम्बन्धित होना बताया।
- अनुभावात्मक उपागम के माध्यम से वह नौकरशाही के गुणों एवं अवगुणों की खोज कर पाया।

मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा के सन्दर्भ में अध्ययनकर्ता को पाँच बातों पर जरूर ध्यान देना चाहिये- (1) वैधता; (2) सत्ता जिसकी वैधता हो; (3) एक कानूनी संहिता; (4) प्रशासकीय संगठनों की कानूनी हैसियत तथा (5) लोगों द्वारा कानूनों का पालन करने में अभ्यस्त होना।

सार यह है कि मैक्स वेबर नौकरशाही की वैधता और व्यक्ति निरपेक्ष व्यवस्था पर बल देता है और इसी नजरिये से उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया है जिसकी विस्तृत विवेचना आगे की जायेगी।

10.6 मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल (Max Weber's Model of Bureaucracy)

प्रशासन-तंत्र की अवधारणा को समझने के लिये वेबर का नौकरशाही का प्रतिमान अथवा मॉडल, मील का एक पत्थर है। ''सत्ता, 'वैधता' और 'तार्किकता' यह तीन ऐसी अवधारणाऐं हैं जिनके इर्द-गिर्द वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त घूमता है। उसने वैधानिक-तार्किक सत्ता या प्रभुत्व को नौकरशाही का आधार माना है और इसी आधार पर उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया है। इस प्रतिमान की निम्न विशेषताऐं हैं, जो उसके ग्रंथ 'दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनॉमिक आर्गानाइजेशन' के अध्ययन से स्पष्ट होता है-

1. सरकारी प्रशासनिक इकाईयों का संचालन निश्चित नियमों के अनुसार होता है।
2. प्रशासनिक संरचना में चयनित अधिकारी होते हैं जिनकी निम्न विशेषताऐं होती हैं, पहला- प्रत्येक अधिकारी को कुछ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो कानून के परिप्रेक्ष में परिभाषित भी होती हैं और उनका सीमांकन भी होता है; दूसरा- अधिकारियों को जो अधिकार दिये जाते हैं वे उनकी जिम्मेदारियों के अनुसार होते हैं। यह अधिकार व्यक्ति निरपेक्ष होते हैं; तथा तीसरा- प्रदत्त किये गये कार्यों को पूरा करने के लिए अधिकारियों को सीमित साधनों का इस तरह से प्रयोग करना होता है कि निम्नतम साधनों से अधिकतम कार्यों को निबटारा हो सके।
3. प्रशासनिक संरचना में सत्ता के क्रमिक स्तर या पद सोपान होते हैं। प्रत्येक स्तर का एक पद होता है जिस पर अधिकारी पदासीन होता है। संरचना में सत्ता ऊपर से नीचे आती है अर्थात् प्रधान अधिकारी उच्चतम पद पर होता है और इसके मातहत निचले पदों पर अर्थात् आदेश ऊपर से आता है और क्रमिक रूप से निचले स्तर तक जाता है। निम्न कर्मचारियों के भी कुछ सीमित अधिकार होते हैं। वे प्रधान अधिकारी को सुझाव दे सकते हैं और अपील भी कर सकते हैं।
4. जिम्मेदारियों को निभाने के लिये आवश्यक साधनों की जरूरत होती है जिन पर अधिकारियों का सीमित अधिकार होता है और वे उन साधनों के उपयोग के लिये उत्तर दायी भी होते हैं। यह नियम अधिकारियों पर एक बड़ा अंकुश होते हैं जिनसे कार्यों के निष्पादन में विलम्ब भी होता है। लेकिन साधनों के दुरुपयोग को रोकने के लिये यह जरूरी भी है।
5. प्रशासनिक संरचना में पद अव्यक्तिक (Impersonal) हैं। यह अधिकारियों की निजी धरोहर नहीं है जिन्हें बेचा जा सके या प्रदत्त किया जा सके।

6. पदाधिकारी लिखित दस्तावेजों (विधिक नियमों) के अनुसार काम करते हैं यद्यपि वे अनौपचारिक तरीके भी अपनाते हैं।

वेबर के अनुसार नौकरशाही एक संस्था भी है और व्यक्तियों का एक समूह भी जिन्हें अधिकारी वर्ग कहा जाता है। इन प्रशासनिक अधिकारियों की पहचान कुछ निश्चित लक्षणों से होती है जिनकी ओर वेबर ने अपने मॉडल में इशारा किया है। यह लक्षणात्मक विशेषताऐं निम्न हैं-

1. अनुबन्ध के आधार पर किसी योग्य व्यक्ति की कार्यालय के किसी विशिष्ट पद पर नियुक्ति;
2. नियुक्त अधिकारी का निरपेक्ष नियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों को पूरा करना;
3. कार्यों को इमानदारी के साथ निष्पादन करने पर अधिकारी की वफादारी को आंकना तथा इस वफ़ादारी के अनुसार उसे पुरस्कृत (पदोन्नत) करना;
4. प्रशासनिक कार्य एक तकनीक है। यह तकनीकि महारत ही व्यक्ति को अधिकारी की कुर्सी पर पदासीन करती है;
5. अधिकारी एक प्रशासन है और उसका काम उसका व्यवसाय है; तथा
6. निश्चित नियमों या मानकों के अनुसार अधिकारी को वेतन मिलता है और उन्नति के अवसर मिलते हैं।

10.7 वेबेरियन मॉडल के मुख्य तत्व (Main elements of Weberian Model)

नौकरशाही का वेबेरियन मॉडल बहुत ही विस्तृत और स्पष्ट है। वेबर ने इस मॉडल के छः तत्व निश्चित किये हैं जिनसे यह पहिचाना जा सकता है। यह तत्व इस प्रकार हैं:

10.7.1 निर्वैयक्तिक व्यवस्था (Impersonal System)

प्रशासनिक व्यवस्था व्यक्तिक विहीन (Impersonal) होती है अर्थात् ऐसी व्यवस्था जिसमें मित्रवत् मानवीय भावनायें न हों। वेबर की नज़र में नौकरशाही का यह एक अनिवार्य लेकिन नकारात्मक पहलू है। निर्वैयक्तिक व्यवस्था नौकरशाही के चरित्र को दर्शाती है। सार यह है कि नौकरशाह अपने मातहतों को आदेश देता है और मातहत इन आदेशों का अनुपालन करते हैं। यहाँ नौकरशाह और मातहत भावनायुक्त व्यक्तियों की तरह आचरण नहीं करते हैं बल्कि उनका पद उनसे ऐसा करने के लिए बाध्य करता है अर्थात् सत्ता और उसका अनुपालन पद में निहित होता है न कि पदासीन व्यक्ति में। नौकरशाही की यही व्यवस्था निर्वैयक्तिक कहलाती है। यह व्यवस्था नकारात्मक इसीलिए है कि इसमें नौकरशाहों की अक्षमता को बढ़ावा मिलता है।

10.7.2 नियमों की सर्वोच्चता (Superemacy of Rules)

नियमों की सर्वोच्चता को वेबर नौकरशाही व्यवस्था का आधार मानता है। नियम कानूनी-तार्किक सत्ता का सार हैं। कार्यालयों को संगठित करने और कार्यों को निष्पादित करने का माध्यम नियम ही होते हैं। नियम कार्यालय के आचरण को नियंत्रित करते हैं और व्यवस्था को निर्वैयक्तिक बनाते हैं। जो नौकरशाही के लिये जरूरी है। नियम तरह-तरह के हो सकते हैं-तकनीकी नियम, आदेशीय नियम जो अधिनियम का रूप ले लेते हैं। वेबर का मानना यह है कि नियमों का तार्किक इस्तेमाल हो इसलिये अधिकारी को एक कठोर प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजरना चाहिये और नौकरशाही में ऐसा होता है। नतीजा यह होता है कि नौकरशाह नियमों का गुलाम बन जाता है। नियम उसके लिये साधन ही नहीं साध्य भी बन जाते हैं। लक्ष्य उतना महत्वपूर्ण नहीं रहता जितना नियम अपरिहार्य बन जाता है। नकारात्मक पहलू यह है कि नियमों से चिपके रहने से 'विलम्ब' की स्थिति पैदा होती है; प्रशासन में जटिलता आती है; लाल फीताशाही को बढ़ावा मिलता है और प्रशासनिक जड़ता का ख़तरा बढ़ता है।

10.7.3 निपुणता अथवा कौशल (Efficiency)

वेबोरियन मॉडल का तीसरा तत्व निपुणता या कौशल है जो विशेष ज्ञान या दक्षता से प्राप्त होती है। वेबर ने इस निपुणता या दक्षता की परिधियों की ओर इशारा किया है अर्थात वह यह मानता है कि दक्षता या कौशल का एक वृत्त बनता है। इस वृत्त में तीन तत्व आते हैं (अ) कार्यों के संचालन का दायित्व जिसका आधार श्रम विभाजन है; (ब) अधिकारों से लैस एक प्रशिक्षित अधिकारी की नियुक्ति जो अन्ततः एक नौकरशाह का रूप लेता है; और (स) ऐसे दबाव के साधन जो परिभाषित हों और जिनके माध्यम से कार्यों का निष्पादन तार्किक रूप से किया जा सके।

10.7.4 पदसोपानियता (Hierarchy)

पदसोपानियता प्रशासनिक संरचना की चौथी विशेषता है। इसका अर्थ यह है कि किसी विभाग या विभागीय संगठन की बनावट श्रेणियों या पद सोपानों के रूप में होती है। संगठन में ऊपर से नीचे तक श्रेणीबद्धता होती है। आदेश उच्चतम पद से निचले पद तक आता है और निचला पद उच्च पद के आदेश या निर्देश का पालन करता है। उच्च पद का कार्य नियमानुसार आदेश देना, नियन्त्रण रखना तथा देख-रेख करना होता है। वेबर के अनुसार श्रेणीबद्धता संगठन को जोड़े रहती है और अनुशासित रखती है। यह सिद्धान्त सम्बधात्मकता को दर्शाता है जो प्रशासनिक संरचना के ध्येय को प्राप्त करने के लिये जरूरी है।

10.7.5 लोक हित और निजी हितों में टकराव (Conflict of Public interest and Self-interest)

यह एक स्वाभाविक स्थिति है जिसकी ओर वेबर इशारा करता है। प्रशासन का उद्देश्य लोकहित है, लेकिन अक्सर यह देखा गया है कि प्रशासन में कार्यरत लोग (विशेष रूप से अधिकारी) सत्ता का दुरुपयोग करके अपने निजी

हितों की पूर्ति करते हैं। वे साधनों का निजी हितों की पूर्ति के लिये दुरुपयोग करते हैं। वेबर इस स्थिति को प्रशासनिक व्यवस्था के लिये एक खतरा मानता है। वह कर्मचारियों अथवा अधिकारियों को निष्पादन के साधनों के स्वामित्व से अलग करने की सिफ़ारिश करता है। उसका तर्क है कि नौकरशाही की संरचना में उपयोग्यता (Utility) और प्रासंगिकता का होना प्रशासन की सफलता के लिये अनिवार्य है।

10.7.6 लिखित दस्तावेज़ों की मौजूदगी (Written Documents)

नौकरशाही की छटी पहिचान है लिखित दस्तावेज। यह नौकरशाही के क्रियाकलाप का आधार हैं। इसका अर्थ यह कि प्रशासनिक कार्यवाहियों, नियमों और फैसलों को एक सूत्र में बाँधकर लिखित रूप में सुरक्षित रखा जाता है। यही लेखन संग्रह एक दस्तावेज़ का रूप ले लेता है। इस व्यवस्था के अनेक लाभ हैं-भावी निर्णयों के लिये इसकी उपयोगिता; भावी नियम या अधिनियम बनाने में इसकी सार्थकता; लोगों के प्रति उत्तर दायित्व दर्शाने में इसका योगदान; तथा प्रशासन को अधिक गतिशील, सतर्क, नियोजित तथा नियंत्रित करने में सहायक यह होता है।

इस तरह हमने देखा कि वेबेरियन मॉडल की छः विशेषताऐं हैं, छः लक्षणात्मक विशेषताऐं और छः मुख्य तत्व हैं। इनको समझकर वेबेरियन नौकरशाही के प्रतिमान की संरचना कार्यविधि और ध्येय को पूरी तरह समझा जा सकता है। वेबर का यह निहायत आकर्षक मॉडल है: प्रशासकों का चयन तकनीकी योग्यता और उनके कौशल के आधार पर होता है; अधिकारियों को एक निश्चित आकर्षक वेतन मिलता है; उनको पदोन्नति के अवसर पुरस्कार के रूप में मिलते हैं; आफिस में काम और काम के अतिरिक्त कुछ नहीं एक अनुशासित व्यवस्था स्थापित करता है; यहाँ योग्यता होती है, कार्यक्षमता होती है, कर्मठता होती है, वफ़ादारी या कर्तव्यनिष्ठा होती है। इस स्थिति का नाम नौकरशाही है और योग्यता, तकनीकी ज्ञान, अधिकार, सत्ता और साधन एक ऐसी मानसिकता पैदा करते हैं जो नौकरशाही की विशेषता भी है, सद्-गुण भी और दुरगुर्ण भी।

10.8 वेबेरियन नौकरशाही मॉडल की आलोचना (Criticism of Weberian Model)

यद्यपि वैबेरियन मॉडल की प्रशंसा लगभग सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने की है लेकिन मॉडल से सम्बन्धित कुछ बातों पर उनको संदेह भी है। उदाहरण के लिये (1) मॉडल कितना तर्कशील है; (2) विभिन्न परिस्थितियों से यह कितना सामन्जस्य स्थापित करता है, तथा (3) क्या यह मॉडल अधिकतम कार्यक्षमता के लक्ष्य को पा सकता है। ऐसे संदेह करने वालों या आलोचकों में राबर्ट मर्टन, फ़िलिप सेल्ज़निक, टॉलकॉट पारसंस, पीटर ब्लोंउ, राबर्ट प्रंस्थस, एच0सी0 क्रील इत्यादि प्रमुख हैं। राबर्ट मर्टन ने वेबर की कानूनी-तार्किक मॉडल की सार्थकता पर संदेह व्यक्त किया है।

उसके अनुसार वेबर का यह दावा कि प्रशासनिक संरचना में पदसोपानीयता और नियम तर्कसंगत हैं, सही नहीं है। ऐसी संरचना से भ्रान्तियाँ पैदा हो सकती हैं, टकराव हो सकता है और अप्रत्याशित परिणाम निकल सकते हैं, जिससे संगठन के लक्ष्यों को नुकसान पहुँच सकता है। दूसरी ओर फिलिप सेल्जनिक भी वैबेरियन मॉडल की संरचना की तार्किकता पर संदेह करता है। वेबर के अनुसार संगठन की संरचना में श्रेणीबद्धता होती है अर्थात् अनेक उपइकाईयाँ होती हैं। सेल्ज़निक का दावा है कि उप-इकाईयों के निजी लक्ष्य हो सकते हैं जो संगठन के सामान्य लक्ष्य के वितरित जा सकते हैं। मर्टन और सेल्जनिक दोनों का तर्क है कि वेबर की संगठनात्मक संरचना में मानवीय स्वभाव की अनदेखी की गई है। इनके अनुसार वास्तविकता यह है कि प्रशासनिक संगठन मानवों (अधिकारियों) का समूह है, जिनके आचरण को ध्यान में रखना अनिवार्य है अर्थात् वेबर ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाने में कंजूसी की है, जबकि प्रशासन के लक्ष्य, संचालन तथा दक्षता को हासिल करने के लिये मानव व्यवहार का अध्ययन जरूरी है।

टॉलकॉट पारसंस वेबर के मॉडल का तीसरा बड़ा आलोचक है। वेबर ने आदर्शवादी नौकरशाही का विचार रखा है। उसमें उसने आन्तरिक निरन्तरता का दावा किया है। वह यह मानता है कि एक नौकरशाह तकनीकी रूप से जितना दक्ष होगा उतना ही अधिक उसे आदेश देने का अधिकार होगा। पारसंस ने इस दावे को खोखला बताया है, क्योंकि इसमें विरोधाभास की संभावना है। अधिकारियों में कौशल सम्बन्धी पारस्परिक अन्तर होता है। अधिकारी एक जड़ मशीन नहीं है; वे मनुष्य हैं विभिन्न विशिष्ट स्वाभावों वाले मनुष्य। पीटर ब्लोंउ वेबेरियन, मॉडल का चौथा आलोचक है। उसके अनुसार यह मॉडल सार्वभौमिक नहीं हो सकता। परिस्थितियों की मांग अलग-अलग हो सकती है। वेबर का प्रतिमान परिवर्तन के महत्व को स्वीकार नहीं करता है। कट्टर निमय प्रशासकों को अपंग बना देते हैं जिससे प्रशासन-तंत्र निष्ठुर हो जाता है। दक्षता का अर्थ लकीर का फकीर नहीं है। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार दक्षता के लाभ हो सकते हैं। ब्लोउ के अनुसार अधिकारी को औचित्य का अधिकार मिलना चाहिये। वह बदले हुये हालात के अनुसार निर्णय ले। वेबर के प्रतिमान में इस तथ्य का अभाव है।

संक्षेप में वेबैरियन मॉडल के आलोचकों की आलोचना का सार यह है कि-

- वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की तार्किकता संदेहास्पद है;
- इसमें आन्तरिक सुसंगता नहीं है;
- वेबर के अनुसार नौकरशाही परिस्थितियों पर निर्भर है, यह धारणा गलत है; तथा

- वेबर ने 'आदर्श प्रकार' को नौकरशाही का आधार बनाया, लेकिन यह आधार अवैध हैं जो 'आदर्श' है, वह 'प्रकार' नहीं हो सकता।

10.9 वेबर की प्रतिमान अवधारणा का मूल्यांकन (Evaluation of Weber's Model)

वेबर की आलोचनाओं में यद्यपि कुछ दम है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका मॉडल अर्थहीन और अप्रासंगिक है। आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में विकसित प्रशासन के सन्दर्भ में उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उसने जो कुछ तैयार किया, वह तत्कालीन जर्मनी के हालात के सन्दर्भ में था। आलोचकों को वेबेरियन मॉडल को आधुनिक परिस्थितियों के प्रसंग में देखना चाहिये। वेबर यह दावा कि कानूनी-तार्किक मॉडल सर्वोत्तम और टिकाऊ है तो इसका कारण उनके द्वारा किया गया तुलनात्मक अध्ययन है। तत्कालीन दूसरे प्रशासनिक संगठनों से तुलना करके ही वे इस नतीजे पर पहुँचे होंगे कि उनका मॉडल सर्वश्रेष्ठ है।

दूसरे, 'कुशलता' और 'तार्किकता' बहुत भ्रमित या उल्लंघन में डालने वाले शब्द हैं। इन शब्दों से वेबर का अर्थ क्या था और उसके आलोचकों ने इनको किस अर्थ में लिया यह एक विवादित विषय है। वेबर कानून के विद्यार्थी रहे थे इसीलिये वह 'कुशलता' को भी शायद कानूनी अर्थ में ढालकर तार्किक बनाना चाहते थे। 'कानूनी-तार्किक' उनके इसी दिमाग़ की उपज है। जब उन्होंने कहा कि उनका मॉडल स्थायी है तो शायद उनका सोचना यह था कि तार्किकता प्रत्येक समाज की तथा प्रत्येक समय की माँग होती है।

तीसरे, आलोचकों को वेबर के 'औपचारिकतावाद'' (Formalism) पर बहुत आपत्ति है। वेबर नौकरशाही के व्यवहार में औपचारिकता पर बहुत बल देता है। यहाँ उसका दृष्टिकोण तथ्यात्मक है। एलब्रो का मानना है कि 'आज' के प्रशासन में प्रबन्ध तकनीकों का विकास हुआ है जिसके कारण औपचारिक तार्किकता भी बढ़ी है। जैसे-जैसे प्रबन्धकीय तकनीकें विकसित होंगी वेबर के मॉडल की प्रासंगिकता भी बढ़ेगी।

चौथे, वेबर नौकरशाही की सार्थकता की अनिवार्यता पर जोर देता है। वह नौकरशाही को समाज का अविभाज्य अंग मानता है। उसका यह दावा आज के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक बैठता है। स्वयं भारत आजाद हो गया लेकिन ब्रिटेन नौकरशाही की जो व्यवस्था छोड़ गया भारत उससे आजाद नहीं हो सकता। यह नौकरशाही की खूबी है कि जहाँ उसने पैर जमा लिये वहाँ उससे पीछा छुड़ाना असंभव हो गया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वेबोरियन मॉडल के सकारात्मक पहलू भी है और नकारात्मक थी। अधिकारियों का श्रेष्ठता के आधार पर चयन, योग्यता के आधार पर नियुक्ति और दक्षता, कर्मठता तथा निष्ठा के आधार पर प्रोन्नति यह मॉडल के सकारात्मक पहलू हैं। जबकि दूसरी ओर अव्यक्तिक प्रशासनिक ढाँचा, संवेदन

विहीनता, कड़े नियम, दक्षता के मापदण्ड, तकनीकी रुजहान तथा हद से बढ़कर औपचारिकता जैसे नकारात्मक पहलू हैं। सच यह है कि वेबर के आलोचकों ने वर्तमान नौकरशाही के स्वरूप, प्रवृत्ति और व्यवहार का अध्ययन करके वेबर के मॉडल की आलोचना की है, जो उचित नहीं है। हमें वेबर के मॉडल को बेबर के समय से आँकना चाहिये न कि अपने समय से। सच यह भी है कि आजका प्रशासनिक चिन्तक नौकरशाही का विश्लेषण करते समय वेबेरियन मॉडल से अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता और न ही आज का समाज उस नौकरशाही की अवहेलना कर सकता है जिसकी रूप-रेखा वेबर ने तैयार की है। वेबर के मॉडल में भले ही कुछ नकारात्मक बाते हों लेकिन नौकरशाही पर आज के शोधकर्ता या सिद्धान्तकार के लिये वेबर का मॉडल अर्थपूर्ण, प्रासंगिक और तार्किक बना रहेगा।

10.10 सारांश

वेबर और वेबेरियन मॉडल के अध्ययन से आप इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि-

1. नौकरशाही और मैक्स वेबर एक दूसरे के पर्यायवाची हैं, क्योंकि वह पहला चिन्तक है जिसने नौकरशाही पर सार्थक ढंग से ऐतिहासिक और तुलनात्मक उपागमों के आधार पर अपना शोध प्रस्तुत प्रबन्ध किया।
2. वेबर वह पहला चिन्तक है जिसने 'सत्ता' को प्रशासन तन्त्र को आधार बनाया; सत्ता का तार्किक ढंग से विश्लेषण किया तथा सत्ता और प्रभुत्व को एक दूसरे का पूरक बताया।
3. वेबर ने मॉडल के रूप में प्रसिद्ध कानूनी-तार्किक नौकरशाही का बड़े तर्कपूर्ण ढंग से विचार रखा। सत्ता की वैधता को महत्व दिया और उसका छः अंगों के रूप में विश्लेषण किया।
4. नौकरशाही के कानूनी-तार्किक मॉडल की उसने छः विशेष्ताऐं बतायी हैं- कार्यालयों के संचालन का नियमित आधार; नियमों के आधार पर काम; सत्ता की पदसोपानीय संरचना; दायित्वों को निभाने के साधनों पर अधिकारियों का स्वामित्व न होना; पदों का अधिकारियों की निजी सम्पत्ति न होना; तथा प्रशासन का लिखित दस्तावेजों के आधार पर परिचालित होना।
5. वेबर ने अपने मॉडल के छः मुख्य तत्व निर्धारित किये, जिनमें- निर्वैयक्तिक प्रशासनिक व्यवस्था; नियमों की सर्वोच्चता; दक्षता के वृत्त; पदसोपानियता; निजी और लोकहित का प्रथक्कीकरण ताकि प्रशासन की उपयोगिता और प्रासंगिकता बनी रहे; और लिखित दस्तावेज।
6. वेबर अपने मॉडल में ऐसे लोगों के चयन की वकालत करता है जो तकनीकी योग्यता में दक्ष हों।

7. वह ऐसे अधिकारियों को निश्चित और नियमित वेतन देने तथा प्रोन्नति के अवसर प्रदान करने की सिफारिश करता है।
8. वेबर की नजर में एकतंत्रीय शासन व्यवस्था में उच्च स्तरीय नौकरशाही (तकनीकी दृष्टिकोण से) को विकसित होने का मौका मिलता है। ऐसी नौकरशाही कर्मठ, अनुशासित और निष्ठावान होती है।
9. वेबर के मॉडल की आलोचनाऐं भी हुई हैं, विशेष रूप से उसके मॉडल की तर्कशीलता, प्रासंगिकता और कार्यदक्षता पर आलोचकों ने सवाल उठाये हैं और उसकी सफलता और सार्वभौमिकता पर संदेह व्यक्त किया है।
10. लेकिन अधिकाँश लेखकों ने आधुनिक प्रसंग में भी वेबर के नौकरशाही मण्डल की प्रशंसा की है। उनके अनुसार नौकरशाही का जो विचार वेबर ने रखा वह आधुनिक समाज में भी अपरिहार्य है।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर की शिक्षा किस विश्वविद्यालय में हुई?
2. नौकरशाही शब्द का प्रयोग सबसे पहले किस विचारक ने किया?
3. वेबर ने नौकरशाही को किन अर्थों में लिया?
4. नौकरशाही के वेबेरियन मॉडल के कितने तत्व हैं?
5. वेबर के मॉडल का सबसे प्रमुख आलोचक कौन है?

10.11 शब्दावली

तार्किक (Rational)- बुद्धिसंगत अर्थात् वह बात जिसको बुद्धि स्वीकार करे; जिसका आधार वैज्ञानिक हो और जो आस्थाओं, अन्धविश्वासों और परिकल्पनाओं पर आधारित न हो।

पदसोपानियता (Hierarchical)- पदानुक्रमिक अर्थात् संगठन की ऐसी व्यवस्था जिसमें निचले तल से ऊपर तक अनेक स्तर (पद) हों और उनमें श्रेणीबद्धता हो। ऊपरी स्तर से आदेश आये और निम्न स्तर उसका पालन करे।

निर्वैक्तिक (Imprersonal)- जिसमें मित्रवत मानवीय भावनाऐं न हों अथवा जो व्यक्ति के रूप में अवस्थित न हो।

वैधता (Legitimate)- वह बात, घटना या संस्था जो विधि के अनुसार हो अर्थात् विधि सम्मत हो। जिस बात को वैधता प्राप्त होगी वह तर्कसंगत होगी तथा उसका अनुपालन करना होगा।

सत्ता (Authority)- प्राधिकार अर्थात् वह शक्ति जिसके माध्यम से आदेश दिया जा सके और नियंत्रण किया जा सके। यहाँ यह याद रखना है कि सत्ता को वैद्य होना चाहिये।

10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय, **2.** एम0डे0 गूरने ने, **3.** कानूनी-तार्किक अर्थ और अनुवंशिक अर्थ में, **4.** छः, **5.** राबर्ट मर्टन

10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0एस0 प्रसाद, पी0 सत्यनारायण (सम्पादक) प्रशासनिक चिन्तक।
2. सी0 लक्षमन्ता, सत्यनारायण राओ: लेख, मैक्स वेबर: ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिन्कर्स, सम्पादन, डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0ए0 प्रसाद।
3. मैक्स वेबर: दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनामिक आर्गेनाइजेशन।
4. पीटर एम0 ब्लो: ब्योरियोकरेसी इन मार्डन सोसायटी।
5. एस0पी0 वर्मा: मार्डन पॉलिटिकल थ्योरी।

10.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त।
2. डॉ0 अशोक कुमार: प्रशासनिक चिन्तक।

10.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नौकरशाही के वेबेरियन मॉडल की क्या विशेषताऐं हैं?
2. वेबर के नौकरशाही के मॉडल के कौन-कौन से तत्व हैं?
3. वेबर के नौकरशाही के मॉडल की किस आधार पर आलोचना की गई है?

इकाई- 11 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 परिस्थितिकी का अर्थ

11.3 फ्रेड0 डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय

11.4 रिग्स का सैद्धान्तिक नजरिया

11.5 रिग्स का प्रतिमान निर्माण

11.6 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण और रिग्स

11.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

- 11.7.1 प्रकार्यात्मकतावाद का अर्थ
- 11.7.2 प्रकार्यात्मकतावाद के प्रकार
- 11.7.3 संरचना का अर्थ

11.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और राबर्ट मर्टन

- 11.8.1 मर्टन का प्रकार्यों से अभिप्राय
- 11.8.2 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान
- 11.8.3 राबर्ट मर्टन और लोक प्रशासन

11.9 फ्रेड0डब्ल्यू रिग्स और संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

11.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तथा गैब्रील आमण्ड

- 11.10.1 राजनितिक व्यवस्था और आमण्ड का दृष्टिकोण
- 11.10.2 आमण्ड और प्रशासन व्यवस्था

11.11 परिस्थितिकीय तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का मूल्यांकन

- 11.11.1 राबर्ट मर्टन की आलोचना
- 11.11.2 गैब्रील आमण्ड की समालोचना

11.12 सारांश

11.13 शब्दावली

11.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

11.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.17 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन नई परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन की नई अवधारणाओं के अस्तित्व में आने और विकसित होने का परिणाम है। अंतरसांस्कृतिक और अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन के रूप में प्रकट हुआ है। इस क्षेत्र में जिस चिन्तक ने सब से अधिक योगदान किया है वह फ्रेड0डब्ल्यू0 रिग्स थे। वह प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को सर्वश्रेष्ठ उपागम मानते थे। इसलिए उन्होंने तुलनात्मक सन्दर्भ में लोक प्रशासन के विश्लेषण के लिए अनेक प्रतिमान और पद्धतियां विकसित की, जो इस प्रकार है- परिस्थितिकीय पद्धति, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति और आदर्श मॉडल परिस्थिति।

रिग्स का कहना था कि प्रशासन अन्य व्यवस्थाओं की तरह अपने आस-पास के पर्यावरण या परिस्थितियों से प्रभावित होकर संचालित होता है। इसी तरह स्वंय प्रशासन भी अपने पर्यावरण को प्रभावित करता है। यह अन्तरक्रिया एक-दूसरे को प्रभावित करती है। इसी प्रक्रिया को समझाने के लिए रिग्स ने परिस्थितिकीय (Ecological) पद्धति की अवधारणा रखी तथा उसके आधार पर उसने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति और अनेक प्रकार के आदर्श मॉडलों की रचना की। इसलिए रिग्स की परिस्थितिकीय पद्धति को समझने के लिए हमे उसके अन्य आदर्श मॉडलों को भी समझना होगा। आगे चलकर एक और बात समझनी होगी, वह यह कि विकास आधुनिक समाज का सबसे बड़ा मुद्दा है इसलिए जरूरी है कि प्रशासन का भी विकास हो जिसे नये नजरिये और नये आयाम की जरूरत होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उसने प्रशासन तथा पर्यावरण को नये सन्दर्भों में परिभाषित करने का प्रयास किया है। रिग्स के निष्कर्ष बड़े आकृषक और दिलचस्प हैं जिनका अध्ययन जरूरी है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन की अनिवार्यता को समझ पायेंगे।

- तुलनात्मक लोक प्रशासन के सन्दर्भ में रिग्स जैसे चिन्तक से परिचित होंगे।
- रिग्स ने लोक प्रशासन के विश्लषण के लिए जो पद्धतियां विकसित की, उनको समझ पायेंगे।
- यहाँ परिस्थितिकीय पद्धति तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धतियों का अध्ययन करेंगे।
- यह जान पायेंगे कि विकास की दृष्टि से रिग्स की पद्धतियां तथा आदर्श मॉडल कितने जरूरी हैं, तथा
- पर्यावरण और प्रशासन के पारस्परिक रिश्तों को समझ सकेंगे।

11.2 परिस्थितिकी का अर्थ (The Meaning of Ecology)

परिस्थितिकी ''Ecology'' का अनुवाद है। परिस्थितिकी को पर्यावरण कहा जा सकता है लेकिन परिस्थितिकी या एकोलॉजी एक विज्ञान है या वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके माध्यम से यह जाना जा सकता है कि किस तरह से सावयवों अथवा जीवों (organism) में पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया चलती है अथवा किस तरह वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। प्रशासन स्वयं में एक सावयव तो नहीं है लेकिन वह मानव जीवों का एक समूह अवश्य है। इसलिए प्रशासन का अपने पर्यावरण को प्रभावित करना स्वाभाविक है। प्रभावित करने की इस अन्तःप्रक्रिया को समझाने का काम रिग्स ने किया है। रिग्स इस परिकल्पना के साथ एक सिद्धान्तकार बना कि प्रशासन परिस्थितिकी के अनुसार स्वयं को ढालता है तथा परिस्थितिकी या पर्यावरण को अपने अनुसार ढलने के लिये मजबूर करता है। परिस्थितिकीय दृष्टिकोण में आस-पास के पर्यावरण (Environ) का अध्ययन किया जाता है। लोक प्रशासन उसमें लगे मानव-व्यवहार का एक संग्रह है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह व्यवहार अपने आस-पास के पर्यावरण से प्रभावित हो तथा उस पर्यावरण के अनुसार उसकी कार्यविधि संचालित हो और प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था अपने पर्यावरण को भी प्रभावित करे। यहाँ पर्यावरण से अभिप्राय सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वातावरण से लिया गया है और विकास के सन्दर्भ में प्रक्रिया तथा अन्तःप्रक्रिया परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

11.3 फ्रेड डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय (Fred W. Riggs : An Introduction)

फ्रेड0डब्ल्यू0 रिग्स मूल रूप से अमरीकी-चीनी थे। उनका जन्म 1917 में चीन के कुलिंग नगर में हुआ था, जहाँ उनके अमरीकी माता-पिता रहते थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा न्यूयार्क के एक कस्बे स्कोटिया में हुई। अन्ततः रिग्स ने राजनीति विज्ञान को अपनी उच्च शिक्षा का विषय बना लिया। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में ''Repeal of Chines Exclusion Act.'' पर डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इस उपलब्धि के

बाद तो रिग्स अपनी शिक्षा-सम्बन्धी जिन्दगी में इतने व्यस्त हो गये कि उन्होने जीव न के दूसरे सारे सुख त्याग दिये। कहीं उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्यापन कार्य शुरू किया (City University of New York) तो कहीं वह अनुसंधान कर्मिक बन कर वैदेशिक नीति संघ में अपना शोध करते रहे। वह लोक प्रशासन विषय से भी जुड़े और न्यूयार्क लोक प्रशासन निपटान कार्यालय में एक शोधकर्ता के रूप में कार्य करने लगे (1991-1955)। वह इंडियाना विश्वविद्यालय के सरकार सम्बन्धी विभाग से भी सम्बद्ध रहे (1956-1967)। अन्त में रिग्स हवाई विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर (1967 के बाद से) रहे तथा इसी विश्वविद्यालय के पूर्व-पश्चिम अध्ययन केन्द्र के वरिष्ठ विशेषज्ञ तथा स्टेनफोर्ड स्थित व्यवहार विज्ञान के अध्येता भी रहे। वह तुलनात्मक प्रशासन संगठन के पहले अध्यक्ष चुने गये।

रिग्स एक महान शोधकर्ता, लेखक और अध्यापक थे। उनका रुजहान अन्तर-अनुशासनीय था। वह एक साथ राजनीतिशास्त्र, लोक प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और व्यवहारवाद जैसे विषयों में महारत रखते थे। तुलनात्मक अध्ययन में उनकी विशेष रूचि थी और इसीलिए उन्होंने तुलनात्मक प्रशासन पर अनेक शोध प्रस्तुत किये तथा पुस्तकों की रचना की। चहुमुखी विकास उनके अध्ययन का लक्ष्य था, इसलिये जरूरत थी एक ऐसे मॉडल के तैयार करने की जो विकास के अतीत और वर्तमान मॉडलों की तुलना में अधिक तार्किक और प्रासंगिक हो। इसलिए रिग्स ने तुलनात्मक प्रशासन का चयन किया तथा अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन और विश्लेषण पर जोर दिया। उनके द्वारा रचित पुस्तकों में ''The Ecology of Public Administration, Administration in Developing Countries: The Theory of Prismatic Society'' बहुत महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर उन्होंने ग्यारह पुस्तकें तथा 300 शोधपत्र लिखे।

11.4 रिग्स का सैद्धान्तिक नजरिया (Theoretical Aspect of Riggs)

रिग्स के सैद्धान्तिक नजरिये को समझने के लिए हमे दो बातों को समझना होगा। पहला- रिग्स मूल रूप से लोक प्रशासन के विद्यार्थी नहीं रहे थे, लेकिन वह यह मानते थे कि समग्र विकास की अवधारणा प्रशासनिक अध्ययन के बिना अधूरी है, दूसरा- लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टिकोण से होना चाहिए, तथा इस अध्ययन के लिए वृहत्तर धाराओं की पहचान होनी चाहिए तथा इन धाराओं (सिद्धान्तों) को समझाने के लिए महत्वपूर्ण साधनों का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा रिग्स ने किस तरह किया यह हमारा अगला विषय है।

तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन के लिए रिग्स ने तीन अवस्थाओं की पहचान की-

- प्रतिमानात्मक (Normative) से अनुभावात्मक (Empirical)

- भावनात्मक (Ideographic) से तथ्यात्मक (Factual)
- गैर-परिस्थितिकीय (Non-ecological) से परिस्थितिकीय (Ecological)

रिग्स इन तीन रुझानों (Trends) से यह स्पष्ट करना चाहता है कि यदि हम बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नये दृष्टिकोण अपनाये, नये उपकरणों का इस्तेमाल करें तथा नये आयाम तलाशें तो हम प्रशासन के सन्दर्भ में विकास की प्रक्रिया को तेज कर पायेंगे। उदाहरण के लिए अनुभावात्मक अध्ययन के माध्यम से हम मैदान में जाकर हालात की वास्तविकता का पता लगा सकते हैं, जबकि प्रतिमानात्मक वर्णन से हम ऐसा नहीं कर सकते। इसी तरह तथ्यात्मक दृष्टिकोण के अपनाने से हम सामान्यीकरण तथा नियमीकरण की परिकल्पनाओं को गहराईयों तक पहुँचाते हैं और यह देखते हैं कि व्यवहार और उसके अन्तरसम्बन्धों को परिवर्तनशील तत्वों के साथ नियमितता (Regularity) कैसे मिलती है। जहाँ तक परिस्थितिकीय अध्ययन का प्रश्न है, रिग्स का मानना है कि परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष में अध्ययन करने से प्रशासन की गतिशीलता की व्यापक समझ विकसित की जा सकती है।

11.5 रिग्स का प्रतिमान निर्माण (Rigg's Model Building)

1945 के बाद से लगभग 45 देशों को पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के चुंगल से आजादी मिली और वे सम्प्रभुतासम्पन्न देश बन गये, क्योंकि यह सभी नये देश पहले लगभग सामान्य शासकीय और प्रशासनिक व्यवस्था का अनुभव कर चुके थे इसलिए नये हालात में इनकी समस्याऐं, आवश्यकताऐं, उम्मीदें और मांगें भी एक जैसी थीं। कुल मिलाकर इन देशों में एक सामान्य घनाटनाक्रम घटित हो रहा था। वे आधुनिकता और गतिशीलता की ओर बढ़ने का रुझान रखते थे। क्योंकि साम्राज्यवादी देशों के प्रशासनिक सिद्धान्त और मॉडल औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम थे। वे यूरोप और अमरीका में तो सफल हुये थे लेकिन ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में नई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में इन मॉडलों को सफलता नहीं मिल सकती थी। ऐसी स्थिति में पश्चिमी और अमरीकी समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों तथा प्रशासनिक चिन्तकों ने नवोदित राज्यों की संरचनात्मक आवश्यकताओं को महसूस करते हुए इन राज्यों के वृहत अध्ययन का बीड़ा उठाया, क्योंकि इन देशों की अवहेलना पूरी मानवता की अवहेलना थी। इनका विकास पूरे विश्व का विकास था। यह तभी सम्भव था जब नवोदित राज्यों का स्वंय वहाँ जाकर घटनाक्रम का तथ्यात्मक अध्ययन किया जाता और वहाँ के लोगों को यह संदेश दिया जाता कि वे (चिन्तक) स्थानीय लोगों का विकास और उसमें उनकी भागीदारी चाहते थे, जो तथ्यपरक अध्ययन और परिणाम स्वरूप नये माडलों की रचना और क्रियान्वयन से सम्भव है।

पश्चिमी तथा अमरीकी चिन्तकों की यह सोच प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में प्रकट हुई है। रिग्स का भी यही दावा था कि एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के नवोदित राज्यों को नये मॉडलों, नये सिद्धान्तों तथा नई तकनीकों और उपकरणों की आवश्यकता है। इसलिए उसने समाजशास्त, भौतिकी और जीव विज्ञान से अवधारणाऐं ग्रहण करके लोक प्रशासन के लिए नये सिद्धान्तों और नये मॉडलों के निर्माण का प्रस्ताव रखा। उसने उधार लेने में कोई कंजूसी नहीं दिखाई: दूसरे विषयों से उसने नये-नये शब्द लेकर उन्हें अपने नजरिये से अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए भी ढाला। और इन शब्दों को इस तरह ढाला कि वे पूरी तरह रिग्सवादी लगने लगे। नतीजा यह हुआ कि रिग्स ने अपने प्रशासकीय सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए तीन विश्लेषणात्मक उपकरणों का प्रयोग किया जो इस प्रकार है-परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और आदर्श मॉडल्स। आगे रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण को विस्तार से समझाने का प्रयास किया जाएगा।

11.6 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण और रिग्स (Ecological Approach and Rigs)

पहले लिखा जा चुका है कि 'Ecology' परिस्थिति या पर्यावरण को कहा जाता है। यह प्राकृतिक विज्ञान का शब्द है। इसके अन्तर्गत जीवों और उनके पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। परिस्थितिकी के लिए अंग्रेजी का दूसरा शब्द 'Environ' है, अर्थात किसी संस्था या संरचना के आस-पास या इर्द-गिर्द का पर्यावरण या परिस्थिति, क्योंकि लोक प्रशासन मानवों और उनके व्यवहार का एक समुच्य है जो किसी जीव की तरह संगठित है और व्यवहार करता है। अतः प्रशासन का अपने इर्द-गिर्द में पर्यावरण से प्रभावित होना और प्रतिक्रिया में पर्यावरण को प्रभावित करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिए प्रशासन तथा पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन जरूरी है। इसी अध्ययन के आधार पर प्रशासन के नये मॉडलों की रचना की जरूरत महसूस की गई।

सार यह है कि परिस्थितिकीय दृष्टिकोण अपनाकर यह देखा जाता है कि किस तरह जीव सावयव(Living Organisms) और उनका भौतिक और सामाजिक पर्यावरण प्रतिक्रिया करते हैं और किस तरह अपने अस्तित्व और अन्य उद्देश्यों को सन्तुलन में बनाये रखने के लिए सावयव और पर्यावरण परस्पर व्यवहार करते हैं। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी (Ecology) जो प्रशासन और उसके पर्यावरण की एक अन्तरक्रिया या परिणाम है समाज और उन तत्वों के गहन अध्ययन की जरूरत महसूस करती है जो उसकी (परिस्थितिकी) प्रक्रिया को संचालित करती है। रिग्स परिस्थितिकीय उपागम की वकालत करने वाला पहला चिन्तक नहीं है। सर्वप्रथम

जॉन0एम0गॉस ने अपने ग्रंथ 'Reflections on Public Administration' में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की लोक प्रशासन के अध्ययन में वकालत की। उस के अनुसार: ''लोक प्रशासन की परिस्थितिकी (Ecology) लोग, क्षेत्र या सम्पत्ति, भौतिक और सामाजिक प्रौद्योगिकी, जन आवश्यकताओं, विचारों, व्यक्तिशता (Individuality) और संकटकालीन हालात का अध्ययन करती है। दूसरी ओर राबर्ट ढल ने अपनी पुस्तक ''The Science of Public Administration : Three Problems'' में लिखा कि लोक प्रशासन अपने पर्यावरण का दर्पण भी है और अपने पर्यावरण की दिशाओं को निश्चित भी करता है। लेकिन यह रिग्स ही है जिसने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा की तथा अपने ग्रंथ ''The Ecology of Public Administration'' की रचना करके इस दिशा में एक महत्वपूर्ण योदान किया। परिस्थितिकी की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए रिग्स ने प्रशासन और आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक और संचार कारकों के सम्बन्धों का वृहत परिप्रेक्ष में विश्लेषण किया। उसने उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया कि किस तरह पर्यावरणात्मक परिस्थितियां प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। ऐसा उसने तुलनात्मक उपागम के माध्यम से थाईलैण्ड और फिलिपाइन्स का अध्ययन करके अपने सिद्धान्तों की सार्थकता के लिए निष्कर्ष निकाले।

11.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural-Functional Approach)

संरचनात्मक-कार्यात्मक उपाग्म राजनीति विज्ञान का विषय है जिसका अध्ययन इस विषय में लगभग आठ दशक पहले हुआ था। इसका आरम्भ गणित में लीब्रिज ने किया जिसे बाद में समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानव विज्ञानियों (Anthropologists) ने किया। 1922 में यह राजनीति विज्ञान का विषय बना। लेकिन सच यह है कि यह उपागम राजनीति विज्ञान में समाजशास्त्रियों का ऋणी है। टेलकॉट पारसंस ने 'The Social System' मोरिसन लेवी ने 'The Structure of Society' और आर0 के0 मर्टन ने 'Theory and Social Structure' जैसी रचनाऐं प्रस्तुत करके समाज के वैज्ञानिक अध्ययन में एक क्रान्ति ला दी। पारसंस और शिल्ज ने तो 'Towards a General Theory of Action' में यह सिद्ध किया कि सामाजिक विज्ञानों का घटनाक्रम तब बेहतर तरीके से समझा जा सकता है जब सामाजिक संरचनाओं और संस्थाओं को समाज में कार्यों को अदा करने की वास्तविकता को स्वीकार किया जाये। यहाँ एक बात और याद रखना चाहिए कि राजनीतिशास्त्रियों ने संरचनात्मक-कार्यात्मक विश्लेषण के माध्यम को राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अधिक उपयोगी समझा।

संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम के सही अध्ययन के लिए सबसे पहले संरचना ओर कार्य और इन के आपसी सम्बन्धों को समझना होगा। जहाँ तक प्रकार्यों (Functions) का सम्बन्ध है इस बारे में तीन मूल प्रश्न सामने आते हैं, पहला- किसी व्यवस्था में कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं, दूसरे- किन संरचनाओं के द्वारा यह सम्पन्न होते हैं और किसी व्यवस्था में कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं, और तीसरे- किन परिस्थितियों में यह सम्पन्न होते हैं। ओरान यंग के अनुसार कार्य का सम्बन्ध क्रिया की रीति या प्रतिमान से है। दूसरे शब्दों में कार्य का सम्बन्ध व्यवस्था से है।

11.7.1 प्रकार्यात्मकतावाद का अर्थ (Meaning of Functionalism)

रजनीति विज्ञान में 'कार्यात्मकतावाद' यूनानी राजनीतिक चिन्तकों की देन है। बाद में इस शब्दावली का प्रयोग मान्टेस्क्यू, कांट, स्पिेन्सर आदि ने किया। आधुनिक समय में राबर्ट मर्टन और मैरियन लेवी ने कार्यात्मकता की अवधारणा का खुलकर समर्थन किया। ऐडविन फोगेमैन के अनुसार जब राजनीतिशास्त्री किसी घटनाचक्र का विश्लेषण उन कार्यों के सन्दर्भ में करते हैं जो घटनाक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति करते हों तो इसे कार्यात्मकतावाद दृष्टिकोण कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में कार्यात्मकतावाद के तीन मूल सिद्धान्त हैं-

- एक तथ्य या घटना जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो;
- वह घटना जिसमें तथ्य नजर आये; तथा
- पूरी घटना से तथ्य का सम्बन्ध।

कार्यात्मक विश्लेषणकर्ता प्रत्येक राजनीतिक या प्रशासनिक घटना को एक पद्धति(System) के रूप में देखते हैं और उसे बनाये रखना चाहते हैं।

11.7.2 कार्यात्मकतावाद के प्रकार (Kinds of Functionalism)

कार्यात्मकतावाद के अनेक प्रकार हैं, लेकिन दो प्रकारों को अधिक मान्यता मिली है। इनमें पहला चयनित या चयनशील (Eclectic) है। यहाँ प्रकार्य को एक रूप या सार में लिया जाता है। विश्लेषणकर्ता प्रकार्य के अतिरिक्त संरचना, इतिहास, विचारधारा और घटनाक्रम के अन्य पहलुओं पर भी नजर रखता है। चयनित कार्यात्मकता का अध्ययनकर्ता यह मानकर चलता कि कार्यात्मक पहलू वृहत घटनाक्रम मात्र का एक हिस्सा है, इसलिए विश्लेषण करते समय अध्ययनकर्ता को राजनीतिक और सामाजिक घटनाक्रम के अन्य पहलुओं पर भी नजर डालना चाहिए।

कार्यात्मकतावाद का दूसरा प्रकार अनुभावात्मक प्रकार्यात्मकतावाद (Empirical Functionalism) है। इस दृष्टिकोण का विकास राबर्ट के0 मर्टन ने अपनी रचना 'Social Theory and Social Structure' में किया है।

उसके अनुसार प्रकार्य बहुत महत्वपूर्ण अवधारणा है। वह यह नहीं मानता कि प्रकार्य मात्र एक सामान्य विचार है। प्रत्येक समाज में विभिन्न मांगे पैदा होती हैं और इन मांगों को पूरा करने के लिए कार्य किये जाते हैं। वे प्रक्रिया जो इन मांगों को पूरा करने के लिए कार्य किये जाते हैं। वह प्रक्रिया जो इन मांगों की पूर्ति करके संतोष प्रदान करती है कार्य का उद्देश्य पूरा करती है। अतः किसी एक व्यवस्था में चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक, अगर गतिशील कार्यों का विश्लेषण अनुभावात्मक आधार पर किया जाये तो यह अनुभावात्मक कार्यात्मकतावादी दृष्टिकोण होगा।

11.7.3 संरचना का अर्थ (Meaning of Structure)

यहाँ मान्यता या परिकल्पना यह है कि प्रत्येक व्यवस्था का आधार संरचनाऐं होती हैं, जो मूर्त होती हैं और जो विशिष्ट पद्धतियों या उपकरणों के माध्यम से समाज के महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करती हैं। दूसरे शब्दों में संरचना का अर्थ है- प्रशासनिक अथवा किसी अन्य तरह की एक ऐसी यांत्रिकी(Mechanism) जिसके माध्यम से प्रकार्यों को सम्पन्न किया जा सके। यदि गहराई से देखा जाये तो स्वयं समाज संरचनाओं की एक व्यवस्था है। राजनीतिक व्यवस्था भी संरचनाओं से मिलकर बनी है। यही स्थिति प्रशासनिक व्यवस्था की है।

11.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और मर्टन (Structural-FunctionalApproach & Merton)

वैसे टेलकॉट पारसंस और मैरियन लेवी ने संरचनात्मक-कार्यात्मक ढ़ाँचे की नींव डाली, क्योंकि वे राजनीतिक व्यवस्था का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त विकसित करना चाहते थे, लेकिन राबर्ट मर्टन का इस क्षेत्र में काफी योदान है। मर्टन एक समाजशास्त्री थे, इसलिए उनका दृष्टिकोण पूरी तरह समाजशास्त्रीय था। राजनीति, अर्थव्यवस्था और प्रशासन को वह समाज के महत्वपूर्ण घटक मानते थे और उनका विश्वास था कि यह घटक सामाजिक घटनाओं से प्रभावित भी होते हैं तथा उनको प्रभावित भी करते हैं। वह समाज का विश्लेषण सामाजिक संरचनाओं के सन्दर्भ में करने के हामी थे। मर्टन की परिकल्पना थी कि समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। यही समाज का वास्तविक लक्ष्य है। इसके लिए समाज अनुकूलन की प्रक्रिया से गुजरते हैं और प्रकार्यों की मदद लेते हैं। मर्टन कार्यों (works) और प्रकार्यों (functions) में अन्तर करता है।

प्रकार्यावाद समाज की व्याख्या की एक पद्धति है। उसे मानव शास्त्रीय संदर्भ में लिया गया है। लेकिन मर्टन ने इस धारणा में संशोधन किया है। उसने अपनी रचना ‘‘Social Theory and Social Structure’’ में प्रकार्यावादी दृष्टिकोण को विस्तार देते हुए एक त्रिकोणात्मक रूप प्रदान किया है अर्थात सिद्धान्त, पद्धति और आकड़ों को एक व्यवस्था के रूप में लिया है। प्रकार्यवाद इन्हीं घटकों पर टिका हुआ है।

11.8.1 मर्टन की प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणा (Merton and his concept of Function)

जैसा कि बताया जा चुका है कि मर्टन कार्य और प्रकार्य में अन्तर करता है। प्रकार्य एक उपागम है। प्रकार्य एक कार्य-पद्धति है। यह एक अवधारणा है जिसका आधार जीव विज्ञान है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा कोई सावयवी (Organism) शरीर की प्राणजी को बनाये रखने में अपनी भूमिका अदा करे, मर्टन इसी सावयवी अवधारणा को समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में स्वीकृति प्रदान करता है। तर्क यह है कि समाज अपनी व्यवस्था को उसी तरह बनाये रखना चाहता है, जिस तरह शरीर अपनी प्रणाली को बनाये रखना चाहता है। वह कहता है कि प्रकार्य वे देखे जा सकने वाले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन अथवा सामंजस्य को सम्भव बनाते हैं। मर्टन ने कार्य-पद्धति (सावयवी) के सन्दर्भ में तथा समाज के अनुकूलन के अर्थ में प्रकार्य को लिया है।

11.8.2 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान (Model of Functional Analysis)

मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण का एक असाधारण प्रतिमान तैयार किया है। यह प्रतिमान मर्टन के वैज्ञानिक नजरिये और तकनीक के प्रयोग का परिणाम है। इस प्रतिमान में उसने जिन अवधारणाओं को शामिल किया है वे इस प्रकार है-

1. **विषय-** सामाजिक तथ्यों के अध्ययन को मर्टन विषय कहता है। सामाजिक भूमिका, समूह संगठन, सामाजिक संरचना तथा सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक प्रक्रिया, सांस्कृतिक स्वरूप, संवेग, सामाजिक व्यवहार-यह सब विषय हैं, जिनका विश्लेषण प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत आता है।
2. **व्यक्तिनिष्ट व्यवस्थाऐं-** यह वास्तव में प्रेरणाऐं हैं, जिनका अध्ययन जरूरी है। ऐसा वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जा सकता है। प्राकर्यात्मक विश्लेषण बहुत कुछ हद तक इन मानवीय प्रेणाओं का सहारा लेता है, जो यथार्त हैं।
3. **उद्देश्य परिणाम-** मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण में दो समस्याओं की ओर इशारा करता है। प्रथम, सामाजिक तथ्यों के योगदान को किस तरह मालूम किया जाये। दूसरे, क्योंकि प्रत्येक तथ्य की एक विषयगत प्रेरणा होती है, तब इस प्रेरणा को उद्देश्यपूर्ण परिणामों से पृथक करके किस तरह समझा जाये। इसी घटनाक्रम को मर्टन उद्देश्यपूर्ण परिणाम कहता है।
4. **प्रकार्य इकाई-** प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत जिस विषय का प्रकार्य के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, वह विषय इकाई कहलायी जायेगी। धारणा यह भी है एक विषय प्रकार्य की इकाई हो सकता है, लेकिन यही विषय दूसरे के लिए अप्रकार्य की इकाई हो सकता है। मनोवैज्ञानिक उपागम

प्रयोग करते हुए मर्टन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रकार्य जब क्रियाशील होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक प्रकार्य, समूह प्रकार्य, सामाजिक प्रकार्य तथा सांस्कृतिक प्रकार्य के रूप में हो सकती है।

5. **यांत्रिकीकरण की अवधारणा-** मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए जिस अवधारणा को चुनता है, वह यांत्रिकी है। यह यांत्रिकी शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की यांत्रिकी से मेल खाती है। जिस तरह शरीर और मस्तिष्क की यांत्रिकी व्यवहार करती है, लगभग वैसा ही कुछ हमें समाज के अन्तर्गत होने वाले प्रकार्यात्मकता के व्यवहार में देखने को मिलता है।
6. **प्रकार्यवाद की मान्यताऐं-** प्रकार्यात्मकतावाद की तीन मान्यताऐं प्रचलित थीं। प्रथम, सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक इकाईयां करती हैं जो प्रकार्य करती हैं। दूसरे, सामाजिक इकाईयों के यह प्रकार्य ही एक सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को बनाये रखते हैं और तीसरे, प्रकार्य प्रत्येक इकाई के अपरिहार्य नतीजे होते हैं। मर्टन इन मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता है। वह किसी भी प्रकार्य की प्रकृति की सार्वभौमिकता से इन्कार करता है।

11.8.3 राबर्ट मर्टन और लोक प्रशासन (Robert Merton and Public Administration)

प्रश्न यह पैदा होता है कि राबर्ट मर्टन ने प्रकार्यत्मकतावाद को समाज या सामाजिक व्यवस्था से जोड़ा तो आखिर प्रशासनिक व्यवस्था के सन्दर्भ में उसे अध्ययन का विषय कैसे बनाया जाये? या उसको एक प्रशासनिक चिन्तक क्यों माना जाये? इन सवालों का उत्तर हमें मर्टन की नौकरशाही की अवधारणा में मिलेगा। मर्टन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ''Social Theory and Social Structure'' है, जिसमें उसने प्रशासकीय संगठन की विवेचना की है। इस रचना में उसने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रशासनिक मसलों को हल करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में उसका विशेष ध्यान नौकरशाही की ओर जाता है। यहाँ वह नौकरशाही को प्रकार्यों से न जोड़कर अकार्यों (Dys Functions) को प्रकार्यों से जोड़ता है। मर्टन की नजर में नौकरशाही का अकार्य सिद्धान्त यह समझाता है कि प्रशासकीय संगठन नौकरशाही का एक ऐसा प्रतिमान या मॉडल है, जिसका अस्तित्व मानव सभ्यता के इतिहास में मिलता है। इतिहास में नौकरशाही की सक्रियता का महत्व भी है और इतिहास इसके बदलते स्वरूपों का गवाह भी है। इसके रूप कभी तर्कसंगत (Reasonable) रहे हैं, तो कभी अतार्किक। नौकरशाही का दुर्भाग्य यह है कि उसके द्वारा निष्पादित अच्छे कार्यों को भी अक्सर लोग पसंद नहीं करते रहे हैं। यह नापसंद अक्सर अवांछनीय परिणामों में सामने आती है।

आप यहाँ देखेंगे कि नौकरशाही की अकार्य अवधारणा मर्टन को कार्ल मार्क्स के नजदीक पहुँचा देती है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन के साधनों और उत्पादन के सम्बन्धों से व्यक्ति (मजदूर) नियंत्रित होता है और प्रशासन का

नौकरशाहीकरण व्यक्तियों को उत्पादन के साधनों से अलग कर देता है। मर्टन, मार्क्स के इस विचार से पूरी तरह सहमत है। वह नौकशाही को एक ऐसा प्रशासनिकतंत्र मानता है जो एकाधिकारिक प्रवृति अपनाकर और अपनी चालाकी का प्रयोग करके यथास्थिति को बनाये रखता है। नौकरशाही का लक्ष्य अपनी स्थिति को मजबूत करना होता है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रशासनिक व्यवस्था में प्रकार्यात्मक सिद्धान्त के माध्यम से मर्टन नौकरशाही के अकार्य कारकों के आधार पर नौकरशाही की आलोचना करतता है। इस आलोचना का कारण हैं- पहला, नौकरशाही मनोवृत्ति जो जन समाज के विरूद्ध प्रकट होती है। दूसरा, नौकरशाही का नियमों से चिपके रहना वास्तविक उद्देश्यों को नकारना होता है तथा तीसरा, नौकरशाही का निर्वैयक्तिक (Impersonal) होना जो मित्रवत मानवीय भावनाओं को कुचल देती है। मर्टन के अनुसार नौकरशाही के यह दुष्प्रभाव अकार्यत्मकता के कारण होते हैं।

11.9 रिग्स और संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण (Riggs and Structural-Functional Approach)

रिग्स परिस्थितिकीय (Ecological) सिद्धान्त का प्रतिपादक है। उसने अपने इस अध्ययन में जिस उपागम का प्रयोग किया वह संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक है। इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि प्रत्येक प्रणाली या व्यवस्था (System) का निर्माण विभिन्न संरचनाओं (Structures) से होता है और इन संरचनाओं के द्वारा विशिष्ट कार्य या प्रकार्य किये जाते हैं। यहाँ यह याद रखना होगा कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का आधार व्यवस्था विश्लेषण (System Analysis) है। इस विश्लेषण से ही पूर्ववर्ती संरचनात्मक उपागम तथा प्रकार्यात्मक उपागम का मिलकर विकास हुआ। संरचनाऐं मूर्त भी होती हैं, जैसे विभाग तथा अमूर्त भी, जैसे प्राधिकार या सत्ता। प्रत्येक संरचना में प्रकार्य तथा अकार्य गतिशील रहते हैं।

रिग्स संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को उपागम न कहकर 'ढाँचा' (Frame work) कहता है। उसका मानना है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक ढांचा उन प्रकार्यों को जो एक समाज में निष्पादित होते हैं (उनके) विश्लेषण करने की एक पद्धति है। संरचनाऐं प्रकार्यों को निष्पादित करने के लिए उत्तर दायी होती हैं और पद्धतियों के द्वारा प्रकार्यों को पूरा किया जाता है। रिग्स के अनुसार प्रत्येक समाज में पांच महत्वपूर्ण प्रकार्यों का निर्वाह होता है। उसने अपनी पुस्तक ''Administration in Developing Countries The Theory of Primatic Societies'' में लिखा कि ''इसी प्रकार के प्रकार्य प्रशासनिक उप-व्यवस्था में पूरे किये जाते हैं, जहाँ विभिन्न संरचनाऐं एक विशिष्ट रूप में अनेक प्रकार्यों को अंजाम देती है।'' रिग्स के अनुसार इन संरचनाओं, प्रकार्यों और पद्धतियों के घटनाक्रम को समझना ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण है।

11.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तथा गेब्रिल ऑमण्ड(Structural-Functional Analysis and Almond)

गेब्रील ऑमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण से गहरा सम्बन्ध है। उसकी नजर में प्रशासनिक व्यवस्था या लोग प्रशासन राजनीतिक व्यवस्था का एक हिस्सा है, इसलिए राजनीतिक विश्लेषण के अन्तर्गत प्रशासनिक विश्लेषण का अध्ययन स्वतः ही हो जायेगा जहाँ तक राजनीतिक विश्लेषण का सवाल है, आमण्ड के अनुसार पांच राजनीतिक प्रकार्य होते हैं- राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित अभिव्यक्ति (Articlation), हित संकलन (Aggregation) तथा राजनीतिक संचार। जहाँ तक प्रशासनिक व्यवस्था का सवाल है तो ऑमण्ड यह मानता है कि प्रशासनिक व्यवस्था सरकारी प्रकार्यों के अन्तर्गत आती है। यह सरकारी प्रकार्य हैं- नियम-निमार्ण और नियमों का निर्गितीकरण (Adjudication) करना। आमण्ड के अनुसार सारी राजनीतिक व्यवस्थाऐं किसी न किसी रूप में इन प्रकार्यों को पूरा करती हैं। उसका कहना है कि चाहे वे राजनीति शास्त्री हों या प्रशासनिक सिद्धान्तकार उनको इन प्रकार्यात्मक गति विधियों को सम्भालना होगा, यदि राजनीति अथवा प्रशासन को वे समझना चाहते हैं विशेष रूप से तब जहाँ सरकारें अधिक विकसित न हुई हों।

ऑमण्ड वास्तव में राजनीतिक इकाई (राज्य) के प्रकार्यात्मक सिद्धान्त को समझना चाहता था। वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्थाऐं परम्परागत से आधुनिक में परिवर्तित होती हैं। उसका दार्शनिक नजरिया यह था कि व्यवस्था एक जीवित इकाई है और वह सामाजिक व्यवस्था का एक अंग है, जिसकी अपनी विशेषताऐं हैं। इस व्यवस्था पर पर्यावरर्णात्मक दबाव पड़ते हैं, इसलिए इसमें हल्के या तीव्र बदलाव आते रहते हैं।

11.10.1 राजनीतिक व्यवस्था और ऑमण्ड का दृष्टिकोण (Political System and Almon'ds Approach)

यह पहले बताया जा चुका है कि प्रशासनिक व्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, इसलिए जब ऑमण्ड राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण करता है तो उसे प्रशासकीय व्यवस्था का भी अध्ययन समझना चाहिए। अपनी रचना ''Politics of Developing Areas'' में आमण्ड और कोलमैन ने लिखा कि राजनीतिक व्यवस्था अन्त:क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है, जो तमाम स्वतंत्र समाजों में पायी जाती है और जो एकीकृत करने और अनुकूलित (Adaptation) करने का काम कम या अधिक वैधानिक शारिरीक बाध्यता के माध्यम से पूरा करती है। इस परिभाषा में चार तथ्य सामने आते हैं। पहला, राजनीतिक व्यवस्था अन्तः क्रियाओं का एक समुच्च है, दूसरे यह व्यवस्था अनुकूलित तथा एकीकृत करने का काम करती है, तीसरे, काम या उद्देश्य की पूर्ति वैधानिक तौर से की जाती है, तथा चौथे, जोर जबरदस्ती से काम लिया जाता है। इस तरह ऑमण्ड की

नजर में राजनीतिक व्यवस्था एक ठोस इकाई है। इसका पर्यावरण को प्रभावित करना तथा उससे प्रभावित होना जरूरी है। वैधानिक शारीरिक बल व्यवस्था को बांधे रखता है। इस व्यवस्था में अन्तरक्रियाऐं घटित होती हैं, लेकिन यह व्यक्तियों के मध्य नहीं होती हैं, बल्कि उन भूमिकाओं के मध्य होती हैं जो व्यक्ति अदा करते हैं। आमण्ड राजनीतिक व्यवस्था को खुली व्यवस्था मानता है जो, सदा दूसरी व्यवस्थाओं के सम्पर्क में रहती है। ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की कुछ विशेषताऐं बताई हैं, जो इस प्रकार हैं- राजनीतिक संरचना की सार्वभौमिकता, राजनीतिक प्रकार्यों की सार्वभौमिकता, राजनीतिक प्रकार्यों की बहुप्रकार्यात्मकता तथा, सांस्कृतिक रूप से मिश्रित स्वाभाव।

ऑमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण बहुत विस्तृत और अलझा हुआ है। जैसा कि बताया जा चुका है आमण्ड ने सरकारी प्रकार्यों में नियम निर्माणों, नियम क्रयान्ववन तथा नीति या न्याय निर्णीत को शामिल किया है। इनमें नियम क्रयान्वन का सम्बन्ध प्रशासन से है।

11.10.2 आमण्ड और प्रशासनिक व्यवस्था (Almond and Administrative System)

आमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक के नजरिये से प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन किया है। इस सन्दर्भ में उसका विषय नौकरशाही है। इस सम्बन्ध में वह मैक्स वेबर, कार्ल फ्रीडरिच, फेनरनॉड इत्यादि से प्रभावित नजर आता है जिनके अनुसार नौकरशाही नियम क्रियान्वयन में एक अहम भूमिका अदा करती है और जो नौकरशाही को आधुनिक शासन का मगज मानते हैं। ऑमण्ड नौकरशाही को आधुनिक समाज के लिये अपरिहार्य मानता है। उसके अनुसार राजनीतिक नेताओं या जजों के निर्णय नौकरशाहों और अधिकारीगण के द्वारा ही क्रियान्वित किये जाते हैं। उसने लिखा, आधुनिक काल में अधिकतर कानून बहुत सामान्य प्रकार के होते हैं, ताकि उनको प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके। प्रशासनिक अधिकारियों का काम है कि वे ऐसे विनियम या विनियामक संहिता तैयार करें, जिससे उस नीति का स्पष्टीकरण हो जो शासन की राजनीतिक शाखाओं ने अपनाई है। आम तौर से जिस सीमा तक एक सामान्य नीति लागू की जाती है वह उन व्याख्याओं पर निर्भर करती है जो नौकरशाहों द्वारा की जाती है।

आमण्ड के अनुसार नौकरशाह हितों के व्याख्याकारों और एकीकरणताओं की हैसियत से अहम भूमिका अदा करते हैं। नौकरशाही किसी राजनीतिक व्यवस्था के संचार प्रकार्य को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संस्था राजनीतिक मुद्दों और राजनीतिक दृष्टि से अहम घटनाओं की सूचना का एक स्रोत भी बनती है। लेकिन नौकरशाही एक प्रभावशाली भूमिका अदा कर सके, इसके लिए जरूरी है कि वह एक योग्य शासकीय और निर्देशक समूह से निर्देशित तथा नियंत्रित हो। उसको एक केन्द्रीय नीति निर्माण अभिकरण (Agency) की

आवश्यकता होती है। ऑमण्ड ने लिखा, ''एक ऐसी केन्द्रीय, निर्देशक नीति निर्माण अभिकरण के अभाव में ऊर्जाहीनता और विकेन्द्रीकरण की ओर रुख़ अपरिहार्य हो जाता है, क्योंकि अपनी प्रकृति और प्रवृति से नौकरशाही दैत्य एक तकनीकी उपकरणीय दैत्य हो जाता है।'' नौकरशाही के बारे में आमण्ड का उक्त विश्लेषण प्रशासनिक दृष्टि से बहुत महत्पवूर्ण है।

11.11 परिस्थितिकीय तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का मूल्यांकन (Evaluation of Ecological and Structural and Functional Approach)

रिग्स ने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण का विचार रखा और यह समझाने का प्रयास किया कि प्रशासन और उसका पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता या गतिशील विज्ञान को समझना प्रशासन के समझने के लिए अनिवार्य है। रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण को प्रशासकीय चिन्तकों ने प्रशासन के सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण माना है, लेकिन साथ में यह भी तर्क दिया है कि उसने नई-नई शब्दावली का प्रयोग करके तथा दूसरे विज्ञानों से उनकी विशिष्ट अवधारणाऐं लेकर अपने दृष्टिकोण को उलझा दिया है। समालोचकों के इस तर्क में काफी दम है कि रिग्स के दृष्टिकोण को समझने के लिए पहले उसकी भाषा को समझना पड़ता है, फिर उसकी अवधारणा को और अन्त में उसके दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को समझना पड़ता है। जैसे-जैसे रिग्स प्रशासन के प्रतिमानों के निर्माण की ओर बढ़ता जाता है वह अस्पष्ट और कठिन होता जाता है, लेकिन सच यह भी है कि रिग्स को प्रशासनिक प्रतिमान के सृजनकर्ता की हैसियत से बड़ी ख्याति मिली है। उसका तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन के क्षेत्र में बड़ा योगदान है। प्रशासन के सन्दर्भ में उसने अनेक मॉडलों, जैसे- आदर्शात्मक, अनुभावात्क, संरचनात्मक, प्रकार्यात्मक का सृजन किया लेकिन वह लोक प्रशासन के अध्ययन में सबसे अधिक परिस्थितिकीय उपागम को पसंद करता है।

11.11.1 रार्बट मर्टन की आलोचना (Criticism of Robert-Merton)

जहाँ तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्क उपागम का प्रश्न है, समाचोलना के रूप में सर्वप्रथम रार्बट मर्टन के दृष्टिकोण को लिया जा सकता है। उसका कहना है कि सरकार को कुछ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए। वह मूल्यों की बात करता है लेकिन यह नहीं बताता कि सामाजिक मूल्य क्या हैं।

दूसरे उसने राजनीतिक और सामाजिक उपागमों और प्रकार्यों के मध्य स्पष्ट समबद्ध भी स्थापित किये हैं। तीसरे, मर्टन ने शासकीय और राजनीतिक उपागमों में अन्तर तो किया है लेकिन उनका पारस्परिक सम्बद्ध किया है इसका

उत्तर नहीं दिया है। वह सामाजिक गतिविधियों तथा कल्याणकारी गतिविधि में अन्तर तो करता है, लेकिन यह नहीं समझा सका कि राज्य का क्या काम होगा और प्रशासन क्या काम करेगा।

चौथे, मर्टन का दृष्टिकोण सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखता है। वह केवल सरकार और राजनीति जैसे दो तत्वों को अध्ययन का विषय बनाता है। लेकिन वह यह नहीं समझा सका कि यह दो तत्व सम्पूर्ण समाज नहीं है। इसलिए उसका अध्ययन एकांगी है। उसने सामाजिक व्यवस्थाओं तथा शासकीय और प्रशासनिक अभिकरणों के मध्य सम्बन्धों को भी समझाने का प्रयास नहीं किया।

सारांश में उसने किसी सामान्य सिद्धान्त की रचना नहीं की और सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखा। यह उसकी कमजोरी थी।

11.11.2 गैब्रील ऑमण्ड की समालोचना (Gabriel Almond : Evaluation)

आमण्ड संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाकार है। लेकिन इस सम्बन्ध में उसके दृष्टिकोण की भी कम आलोचना नहीं हुई है। उसके विरूद्ध पहला तर्क यह है कि यद्यपि उसने टेलकॉट पारसंस से अपने विचारों को सजोने के लिए बहुत कुछ ग्रहण किया, लेकिन पारसंस के विचारों को उसने उस रूप में क्रियान्वित नहीं किया जो पारसंस का उद्देश्य था। पारसंस की दिलचस्पी व्यवस्थाओं में थी, जबकि ऑमण्ड की रूचि प्रकार्यों में थी। आमण्ड प्रकार्यों की बात तो करता है, लेकिन उस व्यवस्था की बात नहीं करता जहाँ प्रकार्य अर्थपूर्ण होते हैं। आमण्ड के अनुसार व्यवस्था अन्तःक्रियाओं का एक समुच्य है, लेकिन वह यह नहीं समझा पाता है कि 'व्यवस्था' या अन्तःक्रिया क्या है।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था से ग्रहण की है, लेकिन उसने यह साफ नहीं किया है कि किस तरह पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं और उनकी विशेषताओं को गैर-पश्चिमी राजनीतिक समाजों पर लागू किया जा सकता हे।

उसकी एक और आलोचना यह भी है कि उसने राजनीतिक व्यवस्था को तमाम स्वतंत्र समाजों में पाई जाने वाली अन्तःक्रियाओं की व्यवस्था माना है। लेकिन स्वतंत्र समाजों से उसका क्या अभिप्राय है, यह वह नहीं बता सका। ऑमण्ड ने प्रकार्यों के सात विभिन्न रूप गिनायें है, लेकिन व्यवहार में राजनीतिक और गैर-राजनतिक समूहों के मध्य अन्तर करना कठिन है। आमण्ड यह बताने में भी असफल हुआ है कि राज्य और समाज में स्वतंत्र संवाद कैसे होता है। उसकी आलोचना का एक आधार यह भी है कि उसने निर्गतन (Output) प्रकार्यों को उचित महत्व नहीं दिया है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि उसका तुलनात्मक राजनीतिक उपागम अपूर्ण है। उसने विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवथाओं की तुलना विकसित देशों से की है और इस तुलना से विकसित

राजनीतिक व्यवस्थाओं को हानि हुई है। उसने ऐसा करके अनेक राजनीतिशास्त्रियों और प्रशासनिक चिन्तकों को भटकाया है। इयुजान मोहान ने तो यहाँ तक कहा है कि ऑमण्ड ने वास्तव में किसी सिद्धान्त का निर्माण ही नहीं किया है। उसकी व्यवस्था सम्बन्धी योजना वास्तव में कोई योजना नहीं है। उसकी शब्दावली अपर्याप्त और उलझी हुई है।

11.12 सारांश

1. इस इकाई में दो प्रमुख दृष्टिकोणों की व्याख्या की गई है-परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की। रिग्स को प्रशासनिक प्रतिमान निर्माण का अगुआ माना जाता है। उसने तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विषेश रूप से विकासशील समाजों के सन्दर्भ में विस्तृत परिस्थितिकीय और विकास के परिप्रेक्ष में अध्ययन किया है।
2. रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर-सांस्कृतिक और अन्तर-राष्ट्रीय (Cross-Cultural and Cross-national) अध्ययन पर जोर देता है। उसने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझाने पर अधिक ज़ोर दिया है। उसने तीन विस्तृत धाराओं की पहचान की है। आदर्शवादी से अनुभावात्मक, विचारात्मक से तथ्यात्मक और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय। उसकी नजर में यह धाराऐं तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं।
3. रिग्स ने परिस्थितिकीय उपागम, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम तथा आदर्श प्रतिमानों को प्रशासनिक सिद्धान्तों के स्पष्टकरण (स्पष्टीकरण) के लिए महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक उपकरण माना है।
4. रिग्स के दृष्टिकोण की आलोचना भी की गई है। विशेष रूप से उसने जिस नई शब्दावली का प्रयोग किया है, वह भ्रम भी पैदा करता है और उलझाव भी।
5. जहाँ तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का प्रश्न है, रिग्स के अतिरिक्त रार्बट मर्टन और गेब्रील ऑमण्ड का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। मर्टन अपने विश्लेषण में प्रकार्यों तथा अकार्यों में अन्तर करता है। इसके अतिरिक्त वह प्रकटीय (Manifest) और अप्रकटीय (Latent) प्रकार्यों में भी अन्तर करता है। दोनों प्रकार्यों का अध्ययन अनिवार्य है।
6. मर्टन के अनुसार सामाजिक सिद्धान्त के निर्माण में तथ्यों और शोध को एक-दूसरे से जोड़ना चाहिए। उसके अनुसार सामाजिक और राजनीतिक तथ्यों को ज्ञात करने के लिए प्रकार्य आधार बनते हैं। संगठनात्मक व्यवस्था को समझने के लिए भी प्रकार्य अनिवार्य है।

7. मर्टन ने राजनीतिक और सरकारी व्यवस्थाओं में भी अन्तर किया है। उसके अनुसार राजनीतिक पहलू ज्यादा विस्तृत हैं, शासकीय पहलू की तुलना में। राजनीति व्यवस्था में राजनीतिक दलों, दबाव गुटों और नेतृत्व का भी अध्ययन किया जाता है।
8. मर्टन राजनीतिक विश्लेषण को अधिक वैज्ञानिक बनाना चाहता है। इस दृष्टि से वह अपने समय से बहुत आगे है।
9. मर्टन की भी आलोचना की गई है। सर्वप्रथम, उसने सामाजिक मूल्यों को स्पष्ट नहीं किया है। दूसरे, उसने राजनीतिक और सामाजिक क्रमिकता और प्रकार्यों का स्पष्ट सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। तीसरे, मर्टन ने अपने विश्लेषण में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नहीं लिया है।
10. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का तीसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तकार गेब्रील आमण्ड है। उसने अपने विश्लेषण में पांच राजनीतिक प्रकार्य गिनाये हैं- राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित अनुकूलन, हित एकीकरण और राजनीतिक संचार। शासकीय प्रकार्यों में नियम-निर्माण, नियम क्रयान्वयन और विनियम-किर्णावन आते हैं। तमाम राजनीतिक व्यवस्थायें इन प्रकार्यों को करती हैं।
11. आमण्ड का उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था का प्रकार्यात्मक सिद्धान्त खोजना था। वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्थाऐं पारम्परिक से आधुनिक में बदलती है। उसके अनुसार व्यवस्था एक सावयव (जीव) है और उसका सम्बद्ध सामाजिक व्यवस्था से है जिसकी अपनी विशेषताऐं होती हैं।
12. प्रशासनिक दृष्टि से संरचनातमक-कार्यात्मक ढ़ाँचे में ऑमण्ड ने नौकरशाही पर अपने विचार रखे हैं। उसके अनुसार नीतियों का क्रयान्वन प्रशासक करते हैं। इस क्रयान्वयन में नीतियों का स्वरूप कैसा हो इसकी व्याख्या नौकरशाह करते हैं। हितों के अनुकूल और एकीकरण में भी नौकरशाहों की अहम भूमिका रहती है।
13. आमण्ड के दृष्टिकोण की आलोचना हुई है। वह पारसंस से प्रभावित था लेकिन उसने पारसंस का अनुसरण नहीं किया। पारसंस व्यवस्थाओं में दिलचस्पी लेता है, लेकिन आमण्ड प्रकार्यों की बात करता है।
14. उसने राजनीतिक व्यवस्था का विचार पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं से लिया है, लेकिन वह यह नहीं समझा सका कि किस तरह पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशेषताओं को गैर-पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं पर लागू किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'दि एकोलॉजी ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' किस लेखक ने लिखी?
2. रिग्स ने अपने परिस्थितिकीय विश्लेषण में किस उपागम का प्रयोग किया?
3. 'पॉलिटिक्स ऑफ डेवेलपिंग कन्ट्रीज' का लेखक कौन है?
4. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण का सिद्धान्तकार कौन है?
5. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का सिद्धान्तकार कौन है?

11.13 शब्दावली

परिस्थितिकी (Ecology)- परिस्थितिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत सावयवों तथा उनके पर्यावरण के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

प्रकार्य (Functions)- प्रकार्यों तथा कार्यों में अन्तर है। प्रकार्य एक उपागम है जबकि कार्य मात्र एक गतिविधि है। प्रकार्य एक तकनीकी शब्द है जबकि कार्य एक सामान्य शब्द है।

सावयव (Organism)- सावयव जीव को कहते है जो अंगो से मिलकर बना है। प्रत्येक अंग का यद्यपि एक स्वतंत्र रूप है, लेकिन सावयव अर्थात अंग एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। वे अपने पर्यावरण (माहौल) से प्रभावित होते हैं और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

अप्रकार्य (Dys-Function)- वे प्रकार्य जो क्रियाशीलता पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं अथवा प्रकार्यों को निषेध करते है।

11.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रेड डब्ल्यू रिग्स, **2.** तुलनात्मक उपागम का, **3.** ऑमण्ड एवं कोलमैन, **4.** रिग्स, **5.** ग्रैबिल ऑमण्ड

11.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. S.P. Verma : Modern Political Theory.
2. D. Ravindra Prasad, V.S. Prasad, P. Stynarayana : Administrative Thinkers (Edited).
3. Riggs, Fred W., The Ecology of Public Administration.
4. प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक।
5. Maheshwari, S.R., Administrative Thinkers

6. Marcus Weeks, Politics in Miniuters (London)

11.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सुरेन्द्र कटारिया: प्रशासनिक चिन्तक, जयपुर।

2. Riggs, Fred W., Trends in the Comprarative Study of Public Administration (Paper).

3. Kumar, Ashok, History of Social Thought

11.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रिग्स का परिस्थितिकीय दृष्टिकोण क्या है। विस्तार से उत्तर दीजिए।

2. प्रकार्यात्मकता के तीन मूल सिद्धान्त क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।

3. राबर्ट मर्टन ने लोक प्रशासन की अवधारणा किस सन्दर्भ में प्रस्तुत की है। सपष्ट कीजिए।

4. गेब्रील ऑमण्ड ने पांच राजनीतिक प्रकार्यों का उल्लेख किया हैं। वे कौन-कौन से हैं? उनकी चर्चा कीजिए।

इकाई-12 विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल

इकाई की संरचना

भाग-1 विकास मॉडल

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 विकास की प्रशासनिक अवधारणा

12.3 प्रशासनिक विकास का लक्ष्य

12.4 प्रशासनिक विकास की प्रकृति

12.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र

12.6 विकास प्रशासन के घटक

12.7 विकास प्रशासन के साधन

12.7.1 विकास प्रशासन का सार

12.7.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

12.8 फ्रेड रिग्स की विकास की अवधारणा

12.9 रिग्स की विकास अवधारणा का तकनीकी सार

12.10 मूल्यांकन

भाग-2 डाउन्स मॉडल

12.11 ऐन्थानी डाउन्स: एक परिचय

12.12 डाउन्स की नौकरशाही की अवधारणा

12.12.1 ब्योरोज और निर्णय-निर्माण

12.13 ब्योरोज की परिभाषा तथा नौकरशाहों की प्रकृति

12.14 निर्णय निर्माण-सिद्धान्त और परिकल्पनाऐं

12.15 डाउन्स की पर्यावरण की अवधारणा

12.16 ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना

12.17 ब्योरोज पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याऐं

12.18 ब्योरोज के गतिज: उनका जीवन चक्र

12.19 ब्योरोज व्यवहार पर आयु का प्रभाव

12.20 मूल्यांकन

12.21 सारांश

12.22 शब्दावली

12.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.25 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.26 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

इस इकाई के दो भाग हैं। भाग-1 में विकास मॉडल की विवेचना की गयी है। भाग-2 में डाउन्स के मॉडल की व्याख्या है। विकास के कई आयाम हैं-आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि प्रशासन का विकास अन्य सभी विकासों की एक अनिवार्य शर्त है। विकास तथा विकास प्रशासन दो विभिन्न विषय हैं लेकिन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। विकास प्रशासन तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन है। यदि विकास एक मनः स्थिति है तो विकास प्रशासन उस मनः स्थिति को मूर्त रूप देने का एक माध्यम है। विकास प्रशासन की अपनी प्रकृति, अपना क्षेत्र, अपने लक्ष्य, अपने घटक तथा अपने साधन हैं। इसलिए विकास प्रशासन स्वयं में एक पूर्ण विज्ञान हैं। उसके सिद्धान्त हैं और उसकी एक अवधारणा है, जिसकी विवेचना इस इकाई में की गयी है।

डाउन्स एक अमरीकी अर्थशास्त्री है लेकिन लोक प्रशासन भी उसका विशिष्ट विषय रहा है। इसलिये उसने नौकरशाही पर अपनी खोज के अनुसार सिद्धान्त की रचना की है। वह नौकरशाही की सकारात्मक भूमिका को स्वीकार करता है, लेकिन शब्द नौकरशाही का वह प्रयोग करना नहीं चाहता है। उसका विश्लेषण विषय व्योरोज हैं जिनको विभाग या अनुभाग कहा जा सकता है। इन ब्योरोज़ का वह निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में विश्लेषण करता है। लोक प्रशासन में यही उसकी देन है। वह शब्द नौकरशाह(Bureaucrat) का भी प्रयोग नहीं करना चाहता है। इसके स्थान पर उसने 'Officials' (अधिकारी) का नाम अधिक पसन्द किया है तथा अधिकारियों की भूमिका, स्वभाव, उद्देश्य तथा कार्यविधि की उसने विवचेना की है। इस तरह नौकरशाही से सम्बन्धित अपने सिद्धान्त को उसने न तो मॉडल कहा है और न आदर्श। एक और विशेष बात यह है कि मैक्स बेबर से असहमत होते हुये भी

उसने बेबर की नौकरशाही के आदर्श मॉडल से 'पदसोपान' का सिद्धान्त ग्रहण किया है। संक्षेप में डाउन्स के मॉडल या सिद्धान्त के तार्किक पहलू हैं, जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासन, विकास तथा विकास प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाओं तथा आधुनिक विषम समाज में उनके महत्व को समझ सकेंगे।
- विकास और विकास प्रशासन दो अलग विषय हैं। इस इकाई के माध्यम से दोनों के शास्त्रीय अन्तर को जान सकेंगे।
- विकास प्रशासन की प्रकृति, उसके लक्ष्यों, क्षेत्र और उसके घटकों की जानकारी कर सकेंगे।
- आधुनिकीकरण और विकास का आपस में क्या सम्बन्ध है, यह जान पायेंगे।
- विकास से सम्बन्धित रिग्स की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- इकाई का दूसरा भाग-एन्थानी डाउन्स के मॉडल से सम्बन्धित डाउन्स के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- डाउन्स ने नौकरशाही का अध्ययन ब्यारोज के सन्दर्भ में किया है, जिसे समझ सकेंगे।
- डाउन्स ने ब्योरोज में किस तरह निर्णय-निर्माण के सिद्धान्त के अध्ययन को विषय बनाया है, यह जान पायेंगे।
- डाउन्स ने निर्णय-निर्माण से सम्बन्धित कुछ परिकल्पनाओं का सहारा लिया है, उनमें से एक ब्योरोज के पर्यावरण से सम्बन्धित है। यह क्या अवधारणा है, इसको समझ सकेंगे।
- ब्योरोज की संरचना का आधार पदसोपान है, इससे जुड़ी हुई संचार और नियंत्रण की समस्याओं से तथा उनके जीवन चक्र तथा आयू सम्बन्धित डाउन्स के सिद्धान्त से परिचित हो सकेंगे।

12.2 विकास की प्रशासनिक अवधारणा (Administrative Concept of Development)

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विश्लेषण आयामों का निरन्तर विकास होता रहा है। समाजशास्त्री तथा प्रशासनिक चिन्तक निरन्तर यह समझने का प्रयास करते रहे हैं कि विषम तथा विविधतापूर्ण प्रशासनिक व्यवस्थाओं में परिवर्तित क्यों और कैसे आते हैं। दो विश्व युद्धों ने सामाजिक विज्ञान से लेकर मनोविज्ञान तक प्रत्येक विषय का

स्वरूप बदल दिया। लोक प्रशासन भी इससे अछूता नहीं रहा। परम्परागत लोक प्रशासन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रहा था। उसको नई दिशा की जरूरत थी। एडवर्ड वाइडनर ने इस वास्तविकता को समझ कर विकास प्रशासन की अवधारणा प्रस्तुत की। यह कोई नई बात नहीं थी। समाजशास्त्रियों की ओर से आर्थिक विकास में सामाजिक दृष्टिकोण को पहिचानने की वकालत पहले ही हो चुकी थी। बी0एफ0 होजलिट्ज, नील स्मेलजर तथा आर0डब्ल्यू0 मैक के ग्रंथ इस दिशा में प्रकाशित हो चुके थे। अब एक तार्किक धारणा यह बनी थी कि जब तक सामाजिक विकास नहीं होगा आर्थिक विकास अर्थहीन है और जब तक प्रशासनिक विकास नहीं होगा अन्य विकास संभव नहीं हैं।

विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। राजनीति तथा आर्थिक विकास के बदलते स्वरूप ने विकास प्रशासन को जन्म दिया है। समाज का आधुनिकीकरण, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, लोकतान्त्रिक राजनीति के नये तकाजे तथा शहरी और ग्रामीण विकास की नई मांगे विकास प्रशासन के लिये नये दरवाजे खोलती है। विकास प्रशासन को समझने से पहले संक्षेप में विकास को समझना होगा। विकास समाज की गतिशीलता है जो एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर अग्रसर रहती है। बाइडनर के अनुसार, विकास एक मनः स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा है। बदलते रहना विकास की प्रकृति है। रिग्स के अनुसार, विकास एक व्यवस्था की उस क्षमता में वृद्धि है, जिसके अनुसार वह अपने भौतिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक पर्यावरण को अपनी इच्छानुसार आकार देती है। विकास का अर्थ मात्र आर्थिक विकास या आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) नहीं है। यह भौतिकवादी नजरिया है। विकास बहुआयामी होता है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के विकास अनिवार्य हैं और नई अवधारणा यह है कि अब यह विकास प्रशासनिक विकास पर टिके हुये हैं। विकास प्रशासन के दो अर्थ हैं। प्रथम, विकास गतिविधियों के प्रशासन तथा बहुआयामी विकास के लिये निर्मित नीतियों के क्रियान्वयन के तरीके से लिया जाता है। दूसरे, प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि विकास है। इन दोनों का एक- दूसरे के सम्बन्ध है। विकास प्रशासन के विश्लेषण का केन्द्रीय बिन्दु सरकारीतंत्र की क्षमता है। बहुआयमी विकास के लक्ष्यों को पाने के लिये प्रशासनिक कुशलता एक अहम भूमिका अदा करती है। इसके लिये नियोजित तकनीकें एवं सिद्धान्त अपनाये जाते हैं। इसलिये विकास प्रशासन को नियोजित (planned) परिवर्तन माना गया है। विकास प्रशासन चार 'P' पर टिका हुआ है: P- Planning (योजना), P- Policy (नीति), P- Programme (कार्यक्रम) तथा P- Project (परियोजना)। विकास प्रशासन जनता के लिए जनता के सहयोग से चलता है। विकेन्द्रीकरण और सहभागिता इसका मूल मंत्र है। यह कल्याणकारी है और मानवीय है। जनता तथा विकास प्रशासन एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

12.3 प्रशासनिक विकास का लक्ष्य (Objectives of Alministrative Development)

प्रशासन को गतिशील, क्रियाशील और तर्कसंगत बनाये रखना प्रशासनिक विकास के अन्तिम लक्ष्य हैं। प्रशासनिक विकास नवीनीकरण में विश्वास रखता है। वह परम्परावादी प्रशासन की कमियों को सुधारता है। वह परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढालता है। जहाँ विकसित समाजों की गति का वह कारण है वहाँ विकासशील देशों में भी वह ऐसा ही विकास लाना चाहता है। वह आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण का माध्यम है जिसकी नकल विकासशील देश करते हैं। विकास प्रशासन एक विषय है। यह तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन का परिणाम है और इसलिए यह प्रशासनिक विकास का एक अभिन्न अंग है। संक्षेप में प्रशासनिक विकास पाँच तत्वों पर टिका हुआ है-

1. प्रशासनिक विकास, विकास प्रशासन का एक अभिन्न अंग है;
2. प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार इसका लक्ष्य है ताकि एक अर्थपूर्ण सार्थक नतीजा निकल सके;
3. यह प्रशासन की परम्परागत प्रक्रियाओं, पद्धतियों एवं नियमों में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन लाने का प्रयास करता है;
4. प्रशासनिक क्षमता, कुशलता तथा गतिशीलता में वृद्धि इसका लक्ष्य है; तथा
5. यह बहुआयामी विकास की माँगों को पूरा करने का प्रयास करता है।

12.4 प्रशासनिक विकास की प्रकृति (Nature of Development Administration)

विकास प्रशासन अध्ययन और विषय की दृष्टि से प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन का नतीजा है और अब यह लोक प्रशासन का एक अंग माना जाता है। त्वरित विकास, परम्परागत प्रशासन की कमजोरी, विदेशी तकनीकी सहायता तथा विविध आवश्यकताओं की तीव्रता ने इसके महत्व को बढ़ा दिया है, इसीलिये जरूरी है कि विकास प्रशासन की प्रकृति को पहले समझा जाऐ। इसकी प्रकृति से सम्बन्धित सात विशेषताऐं सामने आती हैं जो इस प्रकार हैं-

1. त्वरित विकास (Rapid development) के लिए नवोदित राष्ट्रों की जो पहली माँग थी तथा जो विकसित राष्ट्रों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहते हैं ऐसे देशों में एक नियोजित कार्यक्रम की आवश्यकता होती है, जिसको क्रियान्वित करने तथा उनमें गतिशीलता लाने का काम विकास प्रशासन कर सकता है।

2. परम्परागत विकास तथा परम्परागत प्रशासन में अन्तरद्वन्द के कारण विकास की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में विकास प्रशासन परिवर्तित माहौल के अनुसार क्रियाशील होकर विकास को गति देता है।
3. विकास प्रशासन विदेशी तकनीकी सहायता पर निर्भर करता है। वह विकसित देशों में होने वाले नित-नये प्रशासनिक प्रयोगों और उनके परिणामों का लाभ उठाता है।
4. तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन ने विकास प्रशासन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की नींव डाली है। तुलनात्मक प्रशासन सिद्धान्तों तथा प्रतिमानों (मॉडलों) का नमूना है जिसका लाभ विकास प्रशासन उठाता है।
5. परिवर्तन के अनुकूल ढालना विकास प्रशासन की मूल प्रकृति है। विकास स्थिर या निश्चल (Static) नहीं है। वह परम्परावादी भी नहीं है। गतिशीलता उसका लक्षण है। परिस्थितियों के अनुकूल चलना उसका स्वभाव है।
6. नियोजित प्रयास के माध्यम से विकास प्रशासन परिवर्तन लाता है।
7. जन-सहभागिता पर आधारित होना विकास प्रशासन की एक विशेषता है। वह जनकल्याण के लिए है और प्रशासनिक नीतियों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को मूर्त रूप देने के लिये जन सहयोग पर निर्भर करता है। इन सात विशेषताओं के अतिरिक्त विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुख होता है। निर्धारित लक्ष्यों की एक समय सीमा में प्राप्ति उसकी प्रकृति है। विकास प्रशासन न तो पलायनवादी है तथा न लक्ष्यों और प्रकार्यों के प्रति उदासीन। वह उत्तर दायी है और जिम्मेदारी के साथ अपने कर्त्तव्य को परिस्थितियों के अनुसार निभाता है। विकास प्रशासन प्रगतिशील है; वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर बढ़ता है। वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तकाजों को पूरा करने के लिए कटिबद्ध है।

12.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र (Scope of Development Administration)

प्रशासन तथा विकास प्रशासन में अन्तर करना कठिन है। यदि सैद्धान्तिक नजरिये से ऐसा कोई अन्तर किया भी जाए तो केवल कह सकते हैं कि प्रशासन सामान्य शब्द है जबकि विकास प्रशासन विशिष्ट। दोनों का कार्यक्षेत्र एक है, दोनों का लक्ष्य एक है। सभी प्रशासनिक अभिकरणों(Agencies) का विकास से सम्बन्ध है। कुल मिलाकर विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसको अनेक भागों में बाँटा जा सकता है, जो इस प्रकार है-

1. **सामान्य प्रशासन के अभिकरण-** शासकीय नीतियों के निर्धारण, राजनीतिक तथा प्रशासनिक मुद्दों के मध्य समन्वय तथा प्रशासनिक प्रकार्यों का निर्देशन, उन पर नियंत्रण तथा उनका निरीक्षण सामान्य प्रशासन के अभिकरणों की परिधि में आता है।
2. **प्रशासनिक विकास के अभिकरण-** प्रशासनिक संरचना, प्रशासनिक संगठन (विभाग, अनुभाग) तथा इनसे सम्बन्धित कार्मिक (Personnel) प्रशासन, उनकी भर्ती, उनका चयन तथा उनमें दक्षता के आधार पर उत्तर दायित्वों का बँटवारा प्रशासनिक विकास अभिकरण के अन्तर्गत आते हैं।
3. **नियोजन-परिवर्तन तथा प्रशासन-** विकास प्रशासन के अभिकरण आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन के लिये नियोजन के माध्यम से लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं। इन अभिकरणों में योजना आयोग (अब नीति आयोग), राज्य योजना विभाग तथा समाज कल्याण विभाग आते हैं। 2016 से पूर्व पंचवर्षीय योजनाऐं देश के त्वरित आर्थिक और सामाजिक विकास के उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल रही थी।
4. **संगठन-कार्मिक वर्ग तथा प्रशासन-** विकास प्रशासन का सबन्ध केवल विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से ही नहीं है वह प्रशासनिक संगठनों की आन्तरिक कार्य क्षमता बढ़ाने के साथ उनकी भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, प्रोन्नति तथा पदस्थापन से सम्बन्धित समस्याओं का भी निबटारा करता है।
5. विकास प्रशासन के मानवीय पहलू- विकास प्रशासन के अध्ययन में समाज तथा समाज से सम्बन्धित पहलू जिनका रिश्ता मानवीय विकास तथा मानव कल्याण से हो सम्मिलित किये जाते हैं। आर्थिक नियोजन का लक्ष्य यही है।
6. विकास प्रशासन मानव संसाधनों की दृष्टि से- शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, सुरक्षा, रोजगार इत्यादि जैसे-बहुआयामी क्षेत्र विकास प्रशासन की परिधि में आते हैं। संक्षेप में विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत विकसित है। यह कल्याणकारी राज्य की भावना को मूर्त रूप देता है।

12.6 विकास प्रशासन के घटक (Elements of Development Administration)

विकास प्रशासन तुलनात्मक प्रशासन का नवीनतम् विषय है। यदि विकास प्रशासन का कोई प्रतिमान (मॉडल) स्वीकार किया जाता है तब उसके कुछ घटकों का निर्धारण करना होगा। इस दृष्टि से प्रशासनिक चिन्तकों ने विकास प्रशासन के जो घटक तय किए हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. **लोकतांत्रिक मूल्य-** लोकतांत्रिक संस्कृति पर प्रशासनिक विकास का टिका रहना वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्य हैं। व्यस्कमताधिकार, राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा समानता, राजनीतिक संस्थाओं में भागीदारी तथा असहमति यह वे मूल्य हैं जो प्रशासनिक विकास का आधार बनते हैं।
2. **लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना-** आधुनिक राज्य का लक्ष्य जनकल्याण है। भारतीय संविधान में दिये गये राज्य की नीति के निर्देशक तत्व जनकल्याण की भावना को अभिव्यक्त करते हैं।
3. **मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था-** यदि जनकल्याण या बहुआयामी विकास एक साध्य है तो मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था एक साधन है। अमेरिका का विकास वैज्ञानिक प्रबन्धन के कारण हुआ है। किसी देश के विकास की धीमी गति ढीले प्रशासन के कारण होती है।
4. **शक्तियों का विभाजन-** प्रशासनिक संरचना शक्तियों के विभाजन पर आधारित है, जो पदसोपान के सिद्धान्त में निहित हैं। विकास प्रशासन इस शक्ति विभाजन के प्रभाव पर टिका होता है।
5. **कल्याणकारी कानून तथा नीतियाँ-** कार्यपालिका का काम लोक कल्याणकारी नीतियाँ बनाना तथा व्यवस्था का काम इन नीतियों के बारे में कानून बनाना होता है। विकास प्रशासन का आधार यही नीतियाँ और कानून या नियम होते हैं।
6. **संसाधनों का महत्व-** आर्थिक, प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों की उपलब्धि विकास प्रशासन को गतिशील और सुगम बनाती है।
7. **समाज के मूल्य तथा परम्पराऐं-** विकास प्रशासन समाज के तर्कसंगत मूल्यों तथा परम्पराओं पर टिका होता है। मूल्य एवं परम्पराऐं विकास की दिशा को तैय करते हैं।
8. **राजनीति का स्वरूप-** किसी समाज का स्वरूप क्या है? जनतन्त्रीय(लोकतंत्रीय), एकाधिकारिक या राजतन्त्रीय-प्रशासन की अवधारणा इस स्वरूप पर निर्भर करती है।
9. **जनतंत्रीय शर्तें-** राजनीतिक दबाव समूह, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक समाजीकरण, स्वतन्त्र मीडिया, जनतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण, मौलिक अधिकार, मानव अधिकार, समाज के कमजोर अल्पसंख्यक तबकों के प्रति रुख, राजनीति का स्वाभाव (दलगत राजनीति तथा धार्मिक-जातीय धुव्रीकरण) यह ऐसे घटक हैं, जो प्रशासनिक विकास की प्रकृति का निर्धारण करते हैं।
10. **बहुआयामी भौतिक प्रगति-** वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, औद्योगिक, कृषि एवं संचार प्रगति, वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता, मानवीय कौशल और क्षमता, राष्ट्रीय इच्छा शक्ति, स्वदेश प्रेम, नैतिक

चरित्र का उत्थान (ताकि भ्रष्टाचार न बढ़े) तथा राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सौहार्द तथा राष्ट्रीय मनोबल इत्यादि यह ऐसे तत्व हैं, जो प्रशासनिक विकास का आधार बनते हैं।

यूरोप तथा अमेरिका यदि विकसित कहलाते हैं, तो इसका कारण वहाँ उक्त सभी घटकों की अर्थपूर्ण मौजूदगी है और यहाँ यह स्पष्ट है कि तृतीय विश्व के विकासशील तथा अविकसित राष्ट्र प्रशासनिक विकास के इन घटकों को पाने के लिए संघर्ष करते नजर आ रहे हैं। इन्हीं घटकों से सम्बन्धित विकास प्रशासन के साधन हैं।

12.7 विकास प्रशासन के साधन (Means of Administrative Development)

विकास प्रशासन के तीन प्रमुख साधन माने जाते हैं- प्रशासनिक सुधार, नवीनीकरण या नवाचार तथा स्वतः प्रशासनिक विकास।

1. **प्रशासनिक सुधार-** प्रशासन की गतिशीलता सतत् बनी रहती है। लेकिन कभी-कभी उसमें जड़ता आ जाती है जिसके कारण उसका रूप विकृत होने लगता है। ऐसी स्थिति में प्रशासन में कुछ सुधारों की आवश्यकता होती हैं। यह विकास प्रशासन की अनिवार्य शर्त है। विकास प्रशासन में सुधार लाने के लिए सुनियोजित प्रयास होते रहते हैं, जिनके फलस्वरूप संगठन और संरचना में परिवर्तन लाये जाते हैं। नई प्रशासनिक तकनीकें तथा पद्धतियां प्रयोग में लाये जाती हैं। नियमों तथा मानवीय व्यवहार में सुधार किया जाता है। कार्यशैली तथा लक्ष्यों को नया रूप दिया जाता है।
2. **नवीनीकरण या नवाचार-** नवीनीकरण के लिए तीन साधन अपनाये जाते हैं- नई तकनीक एवं नये विचार का अविष्कार अथवा नवीन विधियों का अविष्कार किया जाता है, इन अविष्कारों की स्वीकृति ली जाती है; तथा इस स्वीकृति के बाद उसका व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। ऐसा करना केवल आधुनिक समाज में संभव है, परम्परागत समाजों में नहीं।
3. **स्वतः प्रशासनिक विकास-** विकास एक ऐसी यांत्रिकी है, जिसके कारण विकास की प्रक्रिया स्वतः चलती रहती है। समय तथा परिस्थितियां भी प्रशासन को विकसित करती हैं। समाज का स्वभाव, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, विज्ञान तथा तकनीकों के प्रभाव प्रशासन को प्रभावित करते हैं। इन परिस्थितियों से प्रशासन के विकास में गति आती है।

12.7.1 विकास प्रशासन का सार (Essence of Development Administration)

प्रशासन और प्रशासनिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रशासन एक सामान्य शब्द है लेकिन विकास प्रशासन तक विशिष्ट अर्थ रखता है। जब राजकीय संगठनों द्वारा नीति और भौतिक लक्ष्यों की योजनाऐं क्रियान्वित होती हैं तो

इसका कारण विकास प्रशासन होता है। विकास प्रशासन में प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को पाने के मार्गदर्शन की प्रक्रिया को अपनाना होता है। विकास प्रशासन में विशेष ध्यान कार्य-परक (Action-oriented) एवं ध्येय-परक (Goal-oriented) प्रशासन प्रणाली पर रहता है। प्रशासन में परिवर्तन पर्यावरण में परिवर्तन के बिना नहीं लाये जा सकते हैं और पर्यावरण स्वयं परिवर्तित नहीं हो सकता, जब तक विकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सुदृढ़ नहीं किया जाता। विकास प्रशासन का आधार सरकार की क्षमता है।

12.7.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास (Political Modernisation and Development)

यदि आधुनिकीकरण (Modernisation) और विकास की बात की जाये तो इन दोनों को परिभाषित करना वास्तव में बहुत कठिन है। दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिये दोनों को विभाजित करना मुश्किल है। लेकिन फिर भी पहले आधुनिकीकरण को समझना जरूरी है। आधुनिकीकरण का अगर अर्थ, आधुनिक समाज से लिया जाये तो फिर आधुनिक समाज को समझना होगा। पश्चिमी अर्थ में आधुनिक समाज की विशेषता है, शहरीकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग। वहाँ जीवन के यह आधुनिक रास्ते हैं अर्थात् पश्चिमी अर्थ में पारम्परिक समाज का विघटन और सामाजिक सम्बन्धों के प्रति धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, जन मामलों में न्याय और इस विचार को स्वीकृति कि राष्ट्र-राज्य राजनीतिक संस्था (Polity) की पहली और सर्वोच्च इकाई है। पश्चिम में ऐसे आधुनिकीकरण का पहला चरण औद्योगिक क्रान्ति था जो समय के साथ पूरे विश्व में फैल गया। इसके बाद दूसरा चरण सुधार युग (Reformation Era) का था। यह दोनों चरण आधुनिकीकरण की अभिव्यक्ति थे, जिनके फैलाव को रोकना असंभव था। हनंटिगटन (Huntington) का कहना है कि आधुनिकीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानव चिन्तन और क्रियाशीलन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन लाती है। उसके अनुसार शहरीकरण, औद्योगीकरण और धर्म-निरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण तथा आधुनिक समाज की विशेषताऐं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, अभिवृत्तियों और अपेक्षाओं में भी परिवर्तन हो जाता है।

सारॉंश में राबर्ट एवर्ड के शब्दों में ‘‘आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है, जो संसाधनों के तार्किक उपयोग पर आधारित है और जिसका उद्देश्य एक आधुनिक समाज की स्थापना करना है। यह एक ऐसी अवधारणा है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और मनः सांस्कृतिक आयाम आते हैं। आधुनिक समाज का उद्देश्य राजनीतिक दृष्टि से समाज को गतिशील बनाना है। इसी स्थिति को विकास कहा जायेगा।

12.8 रिग्स की विकास की अवधारणा (Rigg's Concept of Development)

रिग्स उन प्रशासनिक चिन्तकों में से है जिन्होंने सामाजिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में विकास को तकनीकी शब्दावली के माध्यम से परिभाषित किया है। उदाहरण के लिये उसने विकास को परिभाषित करने के लिये 'विवेकशीलता' (Discretion) तथा 'विवर्तन' (Diffraction) जैसी शब्दावली का प्रयोग किया है। उसके अनुसार विकास सामाजिक व्यवस्थाओं की बढ़ती हुई स्वायत्तता की एक प्रक्रिया है, जो विवर्तन के उठते हुए स्तर से सम्भव होती है।' वह विवेकशीलता को ही स्वायत्तता के रूपमें लेता है। विवेकशीलता क्या है? रिग्स के अनुसार, विवेकशीलता विकल्पों में से चुने जाने का कौशल है जबकि विवर्तन (बहुरंगी पैटर्न में विभाजन) एक समाज में अवकलन (Differentiation) या भेदात्मक और एकीकरण के स्तर को दर्शाता है। परिस्थितिकीय दृष्टिकोण से विकास एक ऐसी बढ़ती हुई क्षमता है, जो पर्यावरण को प्रभावित करने वाले सामूहिक निर्णय लेती है तथा उनको क्रियान्वित करती है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि रिग्स अन्तरता या अवकलन और एकीकरण को विकास की प्रक्रिया के दो प्रमुख तत्व मानता है।

अवकलन का अर्थ है, एक ऐसी स्थिति का अस्तित्व जिसमें प्रत्येक प्रकार्य को पूरा करने के लिए एक विशिष्ट संरचना मौजूद होती है। दूसरी ओर एकीकरण का अर्थ है, एक ऐसी यांत्रिकी जो विभिन्न प्रकार की विशिष्ट भूमिकाओं को एक-दूसरे से जोड़े, उनको मिलाये, उनको गूंथे और उनमें समन्वय पैदा करे। अवकलन तथा एकाकीरण के स्तर विकास की विवर्तनीय (diffracted) तथा प्रिज्मीय (प्रिज्मीय, एक त्रिकोणीय व्यवस्था है जिसका रूप इन्द्रधनुष जैसा है, जिसमें से तिरंगी किरणें फूटती है) स्थितियाँ होती हैं। यदि समाज में पूरी तरह भिन्नता है, लेकिन एकीकरण में कमजोरी या कमी है, तो यह प्रिज्मीय समाज है। विवर्तनीयता विकास को आगे बढ़ाती है और विवर्तनीयता तथा एककीकरण का जितना उच्चतर स्तर होगा, उतना उच्चतर विकास का स्तर होगा तथा जितना निम्नस्तर इनका स्तर होगा, उतना कम विकास होगा। इसी तरह रिग्स के अनुसार, विवर्तनीयता तथा एककीकरण के मध्य विकृत तारतम्यता प्रिज्मीय स्थितियों के विभिन्न स्तरों के रूप में प्रकट होती हैं।

रिग्स ने विवर्तनीयता और एकीकरण के बदलते हुये स्तरों के मध्य दो रेखाऐं खींची हैं। यहाँ वह यह सिद्ध करता है कि दोनों के मध्य एक विकर्ण (Diagonal) है। यह विकर्ण उस एककीकरण के उस आदर्श स्तर को प्रस्तुत करता है जो उन विषमताओं को संभालने का काम करता है और जो विवर्तनीय भूमिकाओं में समन्वय लाने के लिये जरूरी है। इसके लिये वह प्रत्येक भूमिका को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान करता है, ताकि वह सफलता के साथ विभिन्न प्रकार्यों का निष्पादन कर सके। रिग्स ने परिकल्पनात्मक आधार पर कुछ ऐसे काल्पनिक समाजों को

प्रस्तुत किया है, जो अधिक से अधिक विवर्तनीय हैं और जो परिवर्तनों से उत्पन्न समस्याओं पर सफलता पाये बिना अधिकाधिक भिन्न होते जाते हैं।

12.9 रिग्स की विकास अवधारणा का तकनीकी सार (Technical essence of Rigg's Development Concept)

रिग्स न तो इंजीनियर था और न ही भौतिकी वैज्ञानिक, लेकिन उसे विकास के सन्दर्भ में अपने दृष्टिकोण को सिद्ध करने के लिये वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के प्रयोग करने का एक जूनून था। उदाहरण के लिये वह विवर्तन (differention) एककीकरण (integration) जैसे शब्दों के अतिरिक्त 'भेदन' या 'वेद्यन' (penetration), भागीदारी (Participation), प्रिज्मैटिक(Prismatic) आदि जैसे शब्दों का भी प्रयोग विकास से सम्बन्धित अपने प्रतिमानों को गढ़ने के लिये करता है। नतीजा यह है कि उसका नजरिया अस्पष्ट और उलझा हुआ नजर आता है।

उदाहरण के लिये, रिग्स के अनुसार, किसी भी देश में विवर्तन का स्तर प्रौद्योगिकीय तथा गैर-प्रौद्योगिकीय कारकों पर निर्भर करता है। प्रौद्योगिकी का जितना अधिक विकास होगा, विवर्तन का स्तर उतना ही ऊँचा होगा। रिग्स का तर्क है कि एकीकरण दो महत्वपूर्ण कारकों पर निर्भर करता है। अर्थात् भेदन (Penetration) और भागीदारी (Participation) पर। भेदन सरकार की वह क्षमता या योग्यता है, जिसके आधार पर वह (सरकार) निर्णय लेती है तथा उन्हें पूरे देश में लागू करती है। भागीदारी का अर्थ है कानून की ग्रहणशीलता (Receptivity) तथा शासन ने जो कानून बनाये हैं उनके क्रियान्वयन कराने में मदद करने की इच्छा। इस तरह जहाँ भेदन का सम्बन्ध शासन से है, वहीं भागीदारी का सम्बन्ध जनता से है।

भागीदारी के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं- इच्छा और क्षमता। अर्थात जन-समाज में सरकारी नीतियों और कानूनों को लागू कराने की अपनी इच्छा तथा क्षमता का प्रदर्शन करना। रिग्स के अनुसार लोगों में भागीदारी की जितनी अधिक इच्छा और क्षमता होगी सरकारी मामलों में भागीदारी का स्तर उतना ही ऊँचा होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि वेद्यन या भेदन और भागीदारी विवर्तनीय संरचनाओं के एककीकरण को आसान बनायेगी और नतीजा यह होगा कि अन्तिम उद्देश्य अर्थाथ विकास सम्भव होगा।

12.10 मूल्यांकन

विकास एक ऐसा विषय है जिसके बारे में सामाजिक विज्ञानों के विद्वानों ने अपना दृष्टिकोण अपने विषय-क्षेत्र के सन्दर्भ में रखा है। अर्थशास्त्रीयों ने आर्थिक वृद्धि के सन्दर्भ में विकास को लिया है। समाजशास्त्रीयों ने सब से पहले विकास के सामाजिक पहलुओं को उजागर किया। इन समाजशास्त्रियों में बी0एफ0 होजीलट्ज, नील जे स्मेलजर

तथा आर0डब्ल्यू0 मैक का नाम लिया जा सकता है। इन विद्वानों ने आर्थिक और सामाजिक विकास को एक साथ बाँधने का प्रयास किया है। विकास से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त भी रचे गये जिनमें प्रकार्यात्मक तथा द्वन्दात्मक दृष्टिकोणों को महत्व दिया गया है।

लेकिन लोक प्रशासन में तुलनात्मक अध्ययन के साथ लोक प्रशासन का सम्बन्ध तुलनात्मक लोक प्रशासन से जुड़ गया, जिसके फलस्वरूप विकास प्रशासन का नजरिया सामने आया। विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विकास प्रशासन एक शास्त्रीय विषय है (अकादमिक) जिसके कुछ सिद्धान्त हैं, लेकिन प्रशासनिक विकास एक प्रक्रिया है जो विकास प्रशासन पर टिकी हुई है। एडवर्ड वाइजनर ने सबसे पहले विकास प्रशासन की अवधारणा प्रस्तुत की। विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के बदलते स्वरूपों ने विकास प्रशान को जन्म दिया है। वाइडनर का यह कथन समझाने के योग्य है कि ''विकास एक मनः स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा है।'' विकास बहुआयामी होता है और अब स्थिति यह है कि विकास, विकास प्रशासन की गति पर टिका हुआ है। विकास प्रशासन आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण में विश्वास रखता है। उसके कुछ निश्चित लक्ष्य हैं, उसकी अपनी प्रकृति है तथा उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसी तरह विकास प्रशासन के कुछ घटक हैं तथा उसके अपने कुछ लक्ष्य हैं। इन सारी बातों ने विकास प्रशासन का अपना एक सिद्धान्त और मॉडल तैयार किया है, जिस पर आज सामान्य प्रशासन टिका हुआ है।

लेकिन यहाँ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रशासन, विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास की अवधारणाऐं एक-दूसरे से इतनी उलझ गई हैं कि उन्हें सुलझाना कभी-कभी कठिन लगता है।

भाग- 2 डाउन्स मॉडल

12.11 ऐन्थानी डाउन्स: एक परिचय (Anthony Downs : His Life and Work)

ऐन्थॉनी डाउन्स को एक अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री तथा एक प्रशासनिक चिन्तक की हैसियत से जाना जाता है। उसका जन्म 21 नवम्बर 1930 को वांशिंगटन, संयुक्त राज्य अमेरीका में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा कार्टेलन कॉलिज तथा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई। उसका अध्ययन-क्षेत्र पब्लिक एकोनॉमी तथा राजनीति विज्ञान था लेकिन मूल रूप से वह एक अर्थशास्त्री था और अर्थशास्त्र के नजरिये से ही उसने लोक प्रशासन तथा राजनीति का विश्लेषण किया। उसके सिद्धान्तों पर जोजेफ शुमपीटर, जूलियस मारगोलिस, के0 नेथ, जे0 ऐरो तथा मैक्स वेबर का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'An Economic Theory of Democracy' (1957) है। इस ग्रन्थ में उसने लोकतंत्रीय व्यवस्था में लोगों के मतदान रीति (Voting Pattern) का विश्लेषण किया है

और वह इस नतीजे पर पहुँचा है कि कुल मिलाकर अकेले या सामुहिक रूप से मतदाता स्वःहित (Self-Interest) से प्रेरित होकर मतदान करते हैं। उसके इस नतीजों को पश्चिमी लोकतंत्रों में बहुत मान्यता मिली। डाउन्स लोक प्रशासन का भी विद्यार्थी रहा था। इस क्षेत्र में उसका योगदान अद्वितीय है। उसने अपने शोध प्रबन्ध 'Inside Bureaucracy' (1967) में नौकरशाही से सम्बन्धित अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसको 'डाउन्स मॉडल' कहा जा सकता है, यद्यपि वह अपने सिद्धान्त को मॉडल कहना पसंद नहीं करता है। इस प्रबन्ध में उसने मूल रूप से 'ब्योरोज'(Bureaus) का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। डाउन्स ने अमरीका के प्रसिद्ध संस्थानों में उच्च पदों पर काम किया, जिनमें Brooking Institutions, Rand Corporation हैं। उसने लगभग 24 पुस्तकों तथा 500 से अधिक लेखों एवं शोध प्रबन्धों की रचना की। 86 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

12.12 डाउन्स की नौकरशाही की अवधारणा (Downs' Concept of Bureaucracy)

एन्थॉनी डाउन्स ने अपने शोध प्रबन्ध (Inside Bureaucracy, 1964) में नौकरशाही पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। उसकी नजर में यह विडम्बना की बात है कि नौकरशाही को नफरत से देखा जाता है, जबकि ब्योरोज (Bureau) विभाग या कार्यालय विश्व के प्रत्येक देश में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थाऐं हैं। वे रोजगार का एक बड़ा स्रोत हैं और निर्णय-निर्माण का एक बड़ा साध्य हैं। इस तरह डाउन्स ने नौकरशाही पर अपने चिन्तन में 'ब्योरेज' को अपने अध्ययन का केन्द्रीय विषय बनाया है तथा उन्हें 'निर्णय-निर्माण' (decision-making) प्रक्रिया के सन्दर्भ में लिया है, क्योंकि उसकी नजर में ब्योरोज ही वे संस्थाऐं हैं, जो निर्णय-निर्माण के माध्यम से विश्व के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और यहाँ तक कि नैतिक जीवन की दिशाओं को तैय करती हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि यद्यपि डाउन्स 'नौकरशाही' का विश्लेषण करना चाहता है, लेकिन आज नौकरशाही एक नापसंदीदा शब्द है, इसलिये वह नौकरशाही के स्थान पर 'ब्योरोज' और 'आफिशियल्स' (Officials) कहना पसंद करता है।

12.12.1 ब्योरोज और निर्णय-निर्माण (Bureaus and Decision-making)

मार्श, साइमन, ब्लाउ तथा स्कॉट के 'औपचारिक संगठनों' के नजरिये से प्रभावित होकर डाउन्स ने अपना नौकरशाही सम्बन्धी निर्णय-निर्माण सिद्धान्त पूर्वानुमयता के उद्देश्य से प्रस्तुत किया है। उसका यह सिद्धान्त उस मौलिक परिकल्पना पर आधारित है कि नौकरशाही वाले अधिकारी, समाज के अन्य प्रतिनिधियों के समान अपने निजी हितों से प्रेरित होते हैं। इस निष्कर्ष पर डाउन्स- एडम स्मिथ (अर्थशास्त्री), साइमेल, ट्रूमेन, राइकर, साइमन

(राजनीतिशास्त्री) इत्यादि से प्रभावित है। उसके नौकरशाही सम्बन्धी निर्णय-निर्माण सिद्धान्त के चार भाग हैं- शब्दावली की परिभाषा, अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाऐं, एक काल्पनिक पर्यावरण तथा पर्यावरण पर लागू परिकल्पनाओं पर आधारित प्रस्ताव।

12.13 ब्योरोज की परिभाषा तथा नौकरशाहों की प्रकृति (Definition of Bureaus and Nature of Bureaucrats)

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज संगठन का एक विशिष्ट प्रारूप है। इसलिये पहले संगठन को परिभाषित करना जरूरी है। उसकी नजर में संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सजग समन्वित गतिविधियों या शक्तियों की एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था को अस्तित्व में लाने का कारण एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करना है। इस तरह एक संगठन एक ऐसा ब्योरो है जिसकी चार मौलिक विशेषताऐं हैं-

1. यह इतना बड़ा है कि सर्वोच्च स्तर के सदस्य व्यक्तिगत तौर पर संगठन के आधे से कम लोगों को जानते हैं।
2. इसके अधिकतर सदस्य पूर्णकालिक कर्मचारी होते हैं, जो अपनी आय के लिए संगठन की नौकरी पर निर्भर रहते हैं।
3. संगठन में कर्मचारियों की उपलब्धियों के आधार पर उनको सेवा में स्थायित्व और प्रोन्नति का अवसर मिलता है, भले ही यह बात सैद्धान्तिक हो।
4. संगठन के द्वारा होने वाले निर्गतन (Output) का किसी बाजार में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आंकलन नहीं किया जाता है।

ब्योरोज से सम्बन्धित इन चार विशेषताओं से जो तथ्य सामने आते हैं, उनका सार यह है कि बड़ा आकार होने के कारण ब्योरोज (विभाग) निर्वैव्यक्तिकरण की ओर अधिक बढ़ते हैं और परिणामस्वरूप अनेक प्रशासनिक समस्याओं का सामना करते हैं। पूर्णकालिक रोज़गार का अर्थ है कि ब्योरोज के सदस्य नीम हकीम (अल्प ज्ञानी) नहीं होते हैं, वे अपने कार्य में दक्ष तथा उसके प्रति बफादार होते हैं। उनका बाजार मूल्य (Market Value) होता है, वे प्रतिस्पर्धा में भागीदार होते हैं। जहाँ तक कर्मचारी उपलब्धियों से सम्बन्धित प्रोन्नति के मापदण्डों या नीतियों का प्रश्न है, सच यह है कि कर्मी (Personnel) पूरी तरह अपने वरिष्ठों पर निर्भर रहते हैं। नतीजा यह होता है कि कर्मी अपने व्यवहार को वरिष्ठों की मर्जी के अनुसार तथा उपलब्धियों को पाने की जिज्ञासा के अनुरूप ढालने का

प्रयास करते हैं और अन्त में, ब्योरोज के कार्यों का बाजार में मूल्यांकन न होने का कारण लाभ विहीन नजरिया है। अर्थात् उनके द्वारा निष्पादित कार्य ध्येय की पूर्ति के लिए होते हैं न कि लाभ के लिए।

डाउन्स ब्योरोज की अपनी इस परिभाषा में सरकारी विभागों के अतिरिक्त गैर-सरकारी संस्थाओं जैसे रोमन कैथेलिक चर्च, कैलीफोरनिया विश्वविद्यालय, दि न्यूयार्क पोर्ट अथारिटी तथा चायनीज कम्यूनिस्ट आर्मी जैसे संगठनों को ब्योरोज का दर्जा देता है।

यहाँ डाउन्स यह भी स्पष्ट करता है कि नौकरशाह मात्र वे व्यक्ति नहीं होते हैं जो ब्योरोज़ के लिए काम करते हैं। डाउन्स ब्योरोज को भी परिभाषित करता है। उसके अनुसार यह वह लोग हैं, जो 1. एक बड़े आकार के संगठन के लिए काम करते हैं। 2. उस संगठन से वेतन प्राप्त करते हैं, जो उनकी आय का एक बड़ा भाग होता हैं। 3. उनके खूबी से काम करने की योग्यता (Performance) और उपलब्धियों के आधार उनकी भर्ती, पदोन्नति और सेवा अवधि का निर्धारण होता है। इस तरह कोई भी अधिकारी जिस पर उक्त चार बातें लागू होती हों भले ही वह कहीं भी काम करता हो ''नौकरशाह'' कहलाया जा सकता है।

यहाँ यह याद रखना होगा कि डाउन्स अपने विश्लेषण में शब्द ''नौकरशाह''(Bureaucrat) का प्रयोग नहीं करना चाहता। इसलिए नहीं कि यह शब्द अनादरपूर्ण है, लेकिन इसलिये कि इसका प्रयोग लोगों को अपमानजनक लगता है। डाउन्स नौकरशाह के स्थान पर शब्द ''अधिकारी''(Official) का प्रयोग करता है।

12.14 निर्णय निर्माण-सिद्धान्त और परिकल्पनाऐं (Decision-Making Theory and Hypothesis)

ब्योरोज के सन्दर्भ में डाउन्स का निर्णय-निर्माण सिद्धान्त अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाओं पर आधारित है। यह इस प्रकार है-

अधिकारी (नौकरशाह) अपने ध्येयों की पूर्ति तर्क संगत तरीके से करते हैं। अर्थात् अपनी अधिकतम क्षमताओं और योग्यताओं के अनुसार सीमित साधनों तथा सूचना के दायरे में रहकर वे कार्यों का निबटारा करते हैं। इस तरह वे 'उपयोगिता को बढ़ाने वाले' (Utility maximizers) होते हैं। अर्थात् कम से कम लागत और समय में अधिकतम उपलब्धि उनका लक्ष्य होता है।

अधिकारियों के कुछ जटिल लक्ष्य होते हैं। इनमें शक्ति, आय, प्रतिष्ठा, सुरक्षा, सुगमता या सुविधा, वफादारी (विचार के प्रति, संस्था के प्रति, या राष्ट्र के प्रति), अति श्रेष्ठ कार्य से गर्व और जनहित के लिए सेवा भाव। इनको प्राप्त करना अधिकारियों के लक्ष्य होते हैं। कुछ अधिकारियों के बहुत छोटे लक्ष्य भी होते हैं। उदाहरण के लिये- 1. विशुद्ध आत्म-हितकारी अधिकारी जो ऐसे लक्ष्यों के लिये काम करते हैं जो उनको लाभ पहुचाये न कि ब्योरेज या

समाज को। ऐसे अधिकारी दो प्रकार के होते हैं, पहला- पर्वतारोही (Climbers) यहाँ अर्थ पर्वत से चढ़ने से नहीं है, अर्थात् वे अधिकारी जो अपनी शक्ति, आय और प्रतिष्ठा को दिन-रात बढ़ाये रखना अपना लक्ष्य समझते हैं। यह चालाकी से प्रोन्नति, अपना स्तर, अपनी स्थिति को बुलन्दियों तक ले जाते हैं। दूसरा- अनुदार (Conservers) यह अपनी सुरक्षा और सुविधा को बढ़ाने में लगे रहते हैं। यह यथास्थिति में विश्वास रखते हैं। यह परिवर्तन को अपनी स्थिति आय, प्रतिष्ठा के लिये खतरा समझते हैं। इसीलिए यह नवीनीकरण (Innovation) का विरोध करते हैं। 2. मिश्रित-प्रयोजन (Mixed-motive) अधिकारी- ये वे अधिकारी हैं, जो आत्म-हितों को जनहित मूल्यों से मिला लेते हैं। ऐसे अधिकारियों के तीन वर्ग हैं, पहला- उत्साही या जोशीले (Zealots), दूसरा- समर्थक(Advocates) और तीसरा- राजनीतिज्ञ(Statesmen)। उत्साही, संकुचित नीतियों के प्रति वफादार होते हैं लेकिन ऐसी नीतियाँ जो उनको लाभ पहुँचाये। समर्थक या वकालत करने वाले विस्तृत नीतियों का समर्थन करते हैं और राजनीतिज्ञ, राष्ट्र या समाज के प्रति वफादार होते हैं। लेकिन यह तीनों वर्ग कहीं न कहीं अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। शक्ति प्राप्त करना, प्रभावित करना तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना इनका विशिष्ट लक्ष्य होता है।

12.15 डाउन्स की पर्यावरण की अवधारणा (Down's Concept of Environment)

डाउन्स के सिद्धान्त में अधिकारी जिस जगत में काम करते हैं, वह यथार्थवादी है। वह इस यथार्थवादी स्थिति को 'पर्यावरण' कहता है। इस पर्यावरण की अनेक शर्तें हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. सूचना पर्यावरण की एक अनिवार्य शर्त है। संगठन के संचालन के लिये सूचना का आदान जरूरी है, लेकिन सूचना का आदान महँगा होता है, क्योंकि यह आँकड़ों को प्राप्त करने में देरी लगाता है, जोखिम माँगता है, धन भी व्यय होता है।
2. निर्णय-निर्माताओं की क्षमताऐं सीमित होती हैं। वे निर्णय-निर्माण में अधिक समय नहीं लगा सकते। उनके सामने निर्णय लेते समय अनेक मुद्दे होते हैं और जो आँकड़े उनको मिलते हैं, आवश्यक नहीं वे उनके लिये उपयोगी हों।
3. यद्यपि सूचना प्राप्त करके कुछ अनिश्चितता दूर की जा सकती है, लेकिन एक सीमा के बाद मूल अनिश्चितता निर्णय निर्माण में बांधा बनती है। इस तरह डाउन्स जिस पर्यावरण की बात करता है, वह भौगोलिक नहीं है, बल्कि संगठन का आन्तरिक पर्यावरण है जो, निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। सार यह है कि संगठन या ब्योरोज में निर्णय-निर्माण के लिये बाहर से सूचनाऐं आती हैं, जिनका सम्बन्ध आँकड़ों से होता है।

12.16 ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना (Hierarchical Structure of Bureaus)

यद्यपि डाउन्स, वेबर के आदर्श नौकरशाही के मॉडल से पूरी तरह सहमत नहीं है, लेकिन उसने वेबर के पदसोपनीय सिद्धान्त को स्वीकार किया है। वह पदसोपानीय संरचना को ब्योरोज का अनिवार्य कारक मानता है। उसके अनुसार दो कारणों से ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना होनी चाहिए। प्रथम, ऐसी संरचनाऐं उन टकरावों को रोकने के लिए जरूरी हैं, जो बड़े संगठनों में समन्वित गतिविधियों की उपज होती है। द्वितीय, ब्योरोज अधिकारियों के विभिन्न ध्येय, यथार्थ को देखने के विभिन्न नजरिये, उनके व्यवहार तथा उनकी तकनीकी अर्हताऐं टकराव का कारण होते हैं। डाउन्स के अनुसार इन टकरावों को रोकने के लिये ब्योरोज की कोई यांत्रिकी होनी चाहिये, जो चन्द वरिष्ठों के हाथों में हो। इस स्थिति को प्राप्त करने का साधन केवल पदसोपनीयता ही हो सकती है। जैसे-जैसे संगठन बड़े से बड़ा होता जाये, वरिष्ठों के सत्ता स्तर बनने चाहिये, ताकि वे निम्न स्तर के टकरावों को दूर कर सकें।

पदसोपानीय संगठन के पक्ष में दूसरा तर्क है, प्रभावशाली संचार की आवश्यकता। संगठन के सदस्यों में एक-दूसरे के व्यवहार या कार्य-विधि की जानकारी होना अनिवार्य है, लेकिन सब अन्य सब की जानकारी रखें, यह सम्भव नहीं है। इसीलिये एक यांत्रिकी होनी चाहिए जो केवल पदसोपानीय व्यवस्था ही प्रदान कर सकती है। डाउन्स ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है तथा पदसोपानीयता को संगठन के वास्तविक साध्य का एक प्रभावशाली साधन माना है। डाउन्स के अनुसार पद सोपानीयता के अनेक रूप हो सकते हैं। इनमें दो बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहला- लम्बे पदसोपान (Tall hierarchies) जिनमें नियंत्रण के विस्तार तंग, लेकिन पद (Levels) अनेक होते हैं। दूसरा- 'समतल' पदसोपान (Flat hierarchies) जिनमें नियंत्रण के विस्तार चौड़े और पद कम होते हैं।

1. लम्बे पद सोपानों की आवश्यकता वहाँ होती है, जहाँ संगठनों में टकराव की सम्भावना अधिक होती है। ऐसे संगठन बड़े विषम होते हैं। उनको परिभाषित करना कठिन होता है। उनके पर्यावरण अनिश्चित होते हैं। उनके कर्मी बहुत विशिष्ट होते हैं। यहाँ तकनीकी नवीनीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है। अनेकता और भिन्नता अधिक होती है।
2. समतल पदसोपान वहाँ अनिवार्य है, जहाँ टकराव की सभावना कम होती है। समतल पदसोपान ऐसे ब्योरोज की जरूरत हैं, जहाँ साधारण, सरल और परिभाषित प्रकार्य हों। जहाँ स्थायी पर्यावरण हो तथा कम विशिष्टता प्राप्त कर्मी हों। जहाँ आन्तरिक तकनीकों में स्थायित्व हो तथा समानुरूप सदस्यता हो।

समतल पद सोपान व्यवस्था विकेन्द्रीकरण की विशेषता है लेकिन लम्बे पदसोपान पूरी तरह केन्द्रित ब्योरोज की विशेषता होती है।

12.17 ब्योरोज पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याऐं (Problems of Communication are Control in Bureaus hierarchy)

ब्योरोज पद सोपानों में जो समस्याऐं पैदा होती हैं, डाउन्स उन्हें संचार (Communications) और नियंत्रण की समस्या कहता है। उसके अनुसार आधुनिक ब्योरोज की विषम पदसोपानीय व्यवस्थाऐं आँकड़ा-संकलन पद्धतियों के रूप में काम करती हैं और उनकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि वह केवल अनिवार्य सूचना को उच्चस्तरीय अधिकारियों तक पहुँचाती हैं ताकि वे महत्वपूर्ण नीतियों का चयन कर सकें। पदसोपान के प्रत्येक स्तर पर सूचनाओं की काटछाँट होती है और वे ही सूचनाऐं निर्गत होती है जो निर्णय निर्माण के लिये अति आवश्यक होती हैं।

ब्योरोज पदसपोनों में दूसरी समस्या निर्देशित-विकृतिकरण (Directive-Distortion) या तोड़ने-मरोड़ने की है। डाउन्स के अनुसार ब्योरो पदसोपान में आदेश तथा निर्देश नीचे की ओर जाते हैं। होता यह है कि उच्चतम अधिकारी सम्पूर्ण ब्योरो के लिए एक लक्ष्य निर्धारित करता है, क्योंकि उसके पास न तो समय होता है और न अनिवार्य सूचना, इसीलिये वह केवल सामान्य (General) खाका प्रस्तुत करता है। इस खाके की बारीकियाँ मातहतों(अधीन) पर छोड़ दी जाती है। मातहत उस सामान्य खाके को हर स्तर पर अधिक विशिष्ट बनाते चलते हैं। यहाँ उन्हें औचित्य के प्रयोग की छूट होती है। लेकिन यहाँ होता यह है कि मातहत औचित्य की शक्तियों का प्रयोग अक्सर अपने निजी हित के लिए करने लगते हैं, यद्यपि वे औपचारिक कार्यों की पूर्ति भी करते हैं। अतः ऊपर से निचले स्तर तक विकृतीकरण (Distortion) की समस्या पैदा होने लगती है। यहाँ तक कि निर्धारित तथा निर्देशित लक्ष्य अधिक से अधिक विकृत हो जाता है। उच्चतर अधिकारी के मौलिक ध्येय में निम्न स्तर के अधिकारियों की इच्छाऐं शामिल हो जाती हैं और इस तरह लक्ष्य का स्वरूप बदल जाता है। अपने इस विश्लेषण में डाउन्स जिन नतीजों पर पहुँचता है, वे इस प्रकार हैं-

1. बड़े संगठन में मातहतों के व्यवहार को उच्च स्तर के अधिकारी नियन्त्रित नहीं कर सकते। यहाँ टकराव की सम्भावना बनती है, विशेष रूप से ध्येयों के मामले में। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्योरोज की प्रत्येक इकाई पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता। यहाँ डाउन्स दो नतीजों पर पहुँचता है, पहला- किसी ब्योरो को संगठित करने का कोई प्रभावशाली तरीका नहीं है। बड़े संगठनों में नियन्त्रण की समस्या बड़ी जटिल होती है। दूसरा- प्रत्येक ब्योरो के नेता (leaders of organisation) बाहरी जाँच-पड़ताल से डरते हैं। जाँच-पड़ताल से किसी ऐसे व्यवहार का पता लगता है जिस से ब्योरो के औपचारिक लक्ष्य के साथ टकराव होना अनिवार्य बन जाता है, लेकिन जाँच-पड़ताल के डर से ब्योरोज

में पारस्परिक टकराव की सम्भावना कम हो जाती है। यह ब्योरोज के जीवित रहने के लिये जरूरी है। इसके अतिरिक्त जाँच-पड़ताल का डर ब्योरोज के अधिकारियों को काम या संगठन के प्रति ज्यादा वफादार बना देता है।

2. डाउन्स पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याओं से दूसरा नतीजा यह निकालता है कि किसी भी ब्योरो से 'फालतू'(Waste) को दूर करना नितांत गैर-जरूरी है। 'फालतू' से यहाँ अभिप्राय ऐसे कामों, सूचनाओं, आँकड़ों इत्यादि से हैं जो समय को बर्बाद करते हैं या अनुपयोगी होते हैं। डाउन्स का कहना है कि कोई भी मानव संगठन शत-प्रतिशत अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये एक सीमा तक 'फालतू' अपरिहार्य है। इससे यह नतीजा भी निकाला जा सकता है कि प्रत्येक ब्योरो पूर्ण नहीं है तथा संगठन का प्रत्येक व्यवहार अनिवार्य नहीं है।

12.18 ब्योरोज के गतिज: उनका जीवन चक्र (The Dynamics of Bureaus : Their Life Cycle)

डाउन्स अपने सिद्धान्त में ब्योरोज की गतिशीलता या गतिज (Dynamics) की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि किस तरह ब्योरोज अस्तित्व में आते हैं। उसके अनुसार ब्योरोज पैदा नहीं होते, वे बनाये जाते हैं। इनके बनाने वाले कुछ उत्साही (Zealots) लोग होते हैं, जो एक विशेष विचार को पर्याप्त सहयोग के माध्यम से ब्योरोज के रूप में साकार करते हैं। ब्योरोज वास्तव में आधुनिक समाजों की देन है, क्योंकि ऐसे समाजों में उत्साहियों को अपने 'विचार' (Idea) साकार करने का मौका और प्रोत्साहन मिलना आसान होता है। ब्योरोज के अस्तित्व में आने के लिये दूसरी शर्त उचित माहौल या पर्यावरण का होना है। अर्थात्, अनुकूल उदित परिस्थितियाँ (Exogenous conditions) नये ब्योरोज के लिये अपरिहार्य हैं। इस तरह 'उत्साही' अनुकूल पर्यावरण में अपने विचारों को ब्योरोज के रूप में साक्षात करते हैं। डाउन्स के अनुसार उत्साही चार तरीकों (Ways) से ब्योरोज का निर्माण करते हैं-

करिश्मे का उपयोग करके, जिसका समर्थन मैक्स वेबर ने भी किया है। यहाँ उत्साहित करिश्माई नेता होते हैं, जो अपनी निजी क्षमताओं को ब्योरोज में बदल देते हैं।

एक स्थापित ब्योरो को दो भागों में बाँट कर यहाँ उत्साही किसी स्थापित ब्योरो के सदस्य होते हैं, लेकिन वे उसी ब्योरो में एक पृथक अनुभाग स्थापित करके अपने विचार को मूर्त रूप देते हैं। यहाँ तक कि यह अनुभाग स्वयं एक स्वायत ब्योरो बन जाता है, क्योंकि इसको बाहरी समर्थन मिलता है।

उत्साहियों द्वारा अपने नये विचार को साकार करने के लिये उद्यमकर्ता-सम्बन्धी (Entrepreneurial) विकास का सहारा लेना पड़ता है। यहाँ अर्थ यह है कि एक नया उद्यमी अपनी योजना को साकार करने के लिये जिस तरह जोखिम उठाता है वैसे ही उत्साही नये ब्योरोज के निर्माण के लिये जोखिम उठाते हैं। वे पर्याप्त सहयोग प्राप्त करते हैं और अपना सपना साकार करते हैं।

क्रियेशन एक्स निहिलो (Creation ex nihilo) जैसी शब्दावली का प्रयोग करके डाउन्स ने ब्योरोज की उत्पत्ति की एक अस्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत की है, जो उलझन में डालने वाली है। उसका कहना है कि कुछ अन्य सामाजिक अभिकरणों (Agencies) के शक्तिशाली सदस्य किन्हीं प्रकार्यों को करने के लिए एक संगठन की आवश्यकता महसूस करते हैं। यह संगठन उत्साहियों की परिधि से बाहर होता है, लेकिन कुछ समय के बाद उत्साही इसके प्रति आकृषित होते हैं और जो लोग इस संगठन को बनाते हैं, वह यह महसूस करते हैं कि यदि वे उत्साहियों के समान काम करते हैं तो उनको बड़ी सफलता मिलेगी। लेकिन यह सदस्य किसी प्रकार के नियमों, अधिनियमों, परम्पराओं आदि की परवाह नहीं करते हैं, इसीलिये डाउन्स इनको 'ex nihilo' कहता है, जिसका अर्थ है कुछ नहीं अर्थात् कोई नियम नहीं, कोई परम्परा नहीं।

12.19 ब्योरोज व्यवहार पर आयु का प्रभाव

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज जितने पुराने (लम्बी आयु के) होते जाते हैं उतनी ही उनकी निपुणता बढ़ती जाती है और वे बाहरी सहायता, सहयोग और संसाधन जुटाकर अस्तित्व में बने रहते हैं। आयु के ब्योरोज पर जो प्रभाव पड़ते हैं वे निम्न प्रकार के हाते हैं-

1. ब्योरो अपने काम को निपुणता से करना सीखता है और उसमें अधिक क्षमता का संचार होता है। अधिकारी इस क्षमता का प्रयोग अधिक सेवाऐं प्रदान करने में करते हैं।
2. ब्योरोज अधिक प्रभावी नियमों और अधिनियमों को विकसित करते हैं। नई परिस्थितियों का सामना करने की ब्योरोज में शक्ति बढ़ती है।
3. ब्योरोज के उच्च अधिकारियों के ध्येय संगठन को बनाये रखने तथा विस्तृत करने में बदल जाते हैं। इस तरह वे प्रशासनिक मामलों में ज्यादा ध्यान देते हैं। इस लिए ब्योरोज की दीर्घ आयु ध्येय में लचीलापन लाती है।

4. अधिकारियों का महत्व ब्योरोज में परिवर्तित होता रहता है। उत्साहियों की शक्ति और प्रभाव घट जाती है, क्योंकि वे कमजोर प्रशासक होते हैं। अनुदारवादियों की शक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि वे अच्छे प्रशासक होते हैं तथा संगठनात्मक उद्देश्यों को बदलते में लचीले होते हैं।
5. एक ब्योरो जितना पुराना और बड़ा होता जाता है उतना ही वह ऊर्जाहीनता का शिकार होता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि दीर्घ आयु ब्योरोज नियमों के बारे में कम लचीले और ध्येयों के मामले में अधिक लचीले हो जाते हैं।

डाउन्स के सिद्धान्त का व्यवहारिक पहलू यह है कि, पहला- नौकरशाही या अधिकारी तन्त्रीय निर्णय-निर्माण का सिद्धान्त ब्योरोज कार्य-विधि को अच्छे ढंग से समझने में सहायता करता है तथा दूसरा- यह सिद्धान्त ब्योरोज के व्यहवार के बारे में अधिक सटीक भविष्यवाणियाँ करने में सक्षम होता है। डाउन्स ने इस सिद्धान्त का खाका ब्योरोज के यथार्थ जीवन से सम्बन्धित व्यवहारिक भविष्यवाणी करने के लिये तैयार किया है। इस सिद्धान्त के आधार पर ब्योरोज के कुछ आन्तरिक तत्व और ब्योरोज के प्रकार्यों के अनेक पहलू हमारे समाने आते हैं जो निम्न हैं-

आन्तरिक तत्व	ब्योरोज प्रकार्यों के पहलू
संचार व्यवस्था।	स्पष्टता जिससे इसके प्रकार्य परिभाषित किये जा सकते हैं।
सूचना संकलन पद्धति।	वह सरलता जिससे ब्योरोज़ की क्रिया के नतीजे देखे जा सकते हैं तथा उनके प्रभाव आँके जा सकते हैं।
सत्ता का बटबारा, औपचारिक तथा अनौचारिक दोनों।	ब्योरो के आन्तरिक तकनीकी पर्यावरण का स्थायित्व।
संसाधनों को बाँटने की पद्धति।	ब्योरो के बाहरी पर्यावरण का स्थायित्व बारे में रुख।
ब्योरो के लक्ष्य तथा कार्यों को परिभाषित करना।	ब्योरो के विभिन्न प्रकार्यों को अन्तर्निर्भरता।
नवीनीकरण का तरीका और नवीनीकरण के बारे में रूख।	प्रकार्यों की विषमता।

प्रकार्यों का आन्तरिक पृथककीरण।	प्रकार्यों का क्षेत्र।
आकार, तकनीकी पद्धति, सामाजिक प्रकार्यों के सन्दर्भ में स्थायित्व।	ब्योरो का उसके पर्यावरण में शक्ति निर्धारण।

12.20 मूल्यांकन

नौकरशाही पर मैक्स वेबर से लेकर आज तक बहुत कुछ लिखा गया है। नकारात्मक भी और सकारात्मक भी। लेकिन शायद ही कोई ऐसा प्रशासनिक चिन्तक हो, जिसने नौकरशाही की अनिवार्यता को स्वीकार न किया हो। आलोचकों ने नौकरशाही की आलोचना की है लेकिन वे यह बताने में असफल रहे कि इस तन्त्र का विकल्प क्या है।

एन्थोनी डाउन्स उन चिन्तकों में से एक हैं, जो नौकरशाही की अनिवार्यता को मौजूदा राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समाज के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानता है। यद्यपि डाउन्स ने मैक्स वेबर के नौकरशाही सम्बन्धी नजरिये को स्वीकार किया है, लेकिन वह उसके आदर्श प्रकार के मॉडल को स्वीकार करने से कतराता नजर आता है। शायद इसलिए कि वह अपनी एक अलग पहिचान बनाये रखना चाहता है। लेकिन वेबर का नौकरशाही का मॉडल एक ऐसा जाल है, जिसमें जो एक बार फँस गया उसका मुक्त होना बहुत कठिन है। ऐसा ही कुछ डाउन्स के साथ हुआ है। उसने अपने सिद्धान्त में मैक्स वेबर का वह तथ्य स्वीकार किया है, जो वेबर के मॉडल का केन्द्रीय बिन्दु है। अर्थात् प्रशासनिक संगठन की पदसोपानीय व्यवस्था।

डाउन्स के विश्लेषण की इकाई 'ब्योरो' (विभाग) है, लेकिन वह ब्योरोज के सदस्यों को नौकरशाह न कहकर 'अधिकारी' (Officials) कहता है। यहाँ उसके दृष्टिकोण में विरोधाभास नजर आता है। वह नौकरशाही के आलोचकों की भर्तसना करता है और स्वयं वह शब्द ''नौकरशाही'' या ''नौकरशाह'' का प्रयोग नहीं करता है। ऐसा इसलिये कि शब्द ''नौकरशाह'' बदनाम है। डाउन्स का रुजहान निर्णय-निर्माण की ओर है। यहीं वह अपने सिद्धान्त की मौलिकता बनाये रखता है।

डाउन्स यह स्वीकार करने से हिचकिचाता है कि नौकरशाही में कुछ मानवीय दुर्बलताऐं हैं। लेकिन वह इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि नौकरशाही के अधिकारी अपने प्रशासन में तथा निर्णय लेने में अपने निजी हितों से प्रेरित होते हैं। यहाँ वह यह भूल जाता है कि यह निजी हित ही नौकरशाही को विकृत करते हैं। डाउन्स ने ब्योरोज की जो परिभाषा दी है उसमें उसने वे तत्व सम्मिलित किये हैं जिनको वेबर ने अपने आदर्श प्रकार के मॉडल में दर्शाया है। इसलिये उसकी परिभाषा में नया कुछ भी नहीं है। डाउन्स ने ब्योरोज का विश्लेषण निर्णय-

निर्माण के सन्दर्भ में किया है। यह उसका मौलिक विचार नहीं है। निर्णय-निर्माण का सिद्धान्त रिचर्ड सी0 स्नाइडर ने विकसित किया था। बाद में इस दृष्टिकोण का समर्थन बर्क, स्पेन, डेविड ईस्टन, और विलियम राइकर ने खुलकर किया। डाउन्स का योगदान यह है कि उसने शुद्ध प्रशासनिक दृष्टि से निर्णय-निर्माण को अपने सिद्धान्त का आधार बनाया। लेकिन उसके द्वारा निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में लगे अधिकारियों का जो विश्लेषण पर्वतारोही (Climbers) तथा अनुदार (Conservers) के रूप में किया गया है वह मात्र काल्पनिक है। यथार्थ से उसका कोई लेना देना नहीं है।

लेकिन डाउन्स का 'पर्यावरण' सम्बन्धी विश्लेषण यथार्थ के काफी समीप है। सूचना की उसकी अवधारणा तर्क-संगत है। इसी तरह डाउन्स ने ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना की जो अवधारणा प्रस्तुत की है, उसमें पर्याप्त यथार्थ है। ब्योरोज में होने वाले आन्तरिक टकरावों को दूर करने के लिये वह पदसोपान को एक यांत्रिकी के रूप में लेता है जो अनिवार्य है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि डाउन्स ने ब्योरोज की निर्णय-निर्माण की भूमिका का विश्लेषण करके नौकरशाही को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है, भले ही जिस शब्दावली का इस विश्लेषण में प्रयोग किया है उस से सिद्धान्त को स्पष्टता न मिली हो।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकास प्रशासन कितने 'P' पर टिका हुआ है?
2. विकास प्रशासन का पहला सिद्धान्तकार कौन है?
3. विकास प्रशासन का घटक नहीं है?
4. 'विवेकशीलता' तथा 'विवर्तन' की अवधारणा किस चिन्तक की देन है?
5. डाउन्स के शोध प्रबन्ध का शीर्षक क्या है?
6. डाउन्स नौकरशाह को क्या कहता है?
7. डाउन्स किस इकाई का विश्लेषण करता है?
8. डाउन्स के सिद्धान्त की मूल्य अवधारणा क्या है?
9. कौन सा विचार डाउन्स का नहीं है?

12.21 सारांश

1. इस इकाई में विकास का सम्बन्ध आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक विकास से नहीं है। यहाँ विषय विकास बनाम प्रशासन है। जिसे विकास प्रशासन कहा जाता है और जो तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन है।
2. प्रशासन और विकास प्रशासन में अन्तर बहुत कम है। पहला, एक क्रिया है तो दूसरा, एक शास्त्रीय विषय।
3. सार यह है कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय और तकनीकी या वैज्ञानिक विकास, विकास प्रशासन की अवधारणा पर टिके हुये हैं।
4. विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। वह कल्याणकारी तथा आधुनिकीकरण की एक मांग है। विकास एक मन स्थिति, एक प्रकृति और एक दिशा है।
5. विकास प्रशासन के कुछ निश्चित लक्ष्य हैं। प्रशासन को गतिशील तथा तर्कसंगत बनाये रखना उसका सर्वोपरि ध्येय है। वह बहुआयामी विकास की माँगों को पूरा करता है।
6. विकास के अनेक घटक हैं, जिनमें लोकतांत्रिक मूल्य, सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था, शक्तियों का विभाजन, कल्याणकारी नीतियाँ, संसाधनों का महत्व, सामाजिक परम्पराऐं, राजनीतिक स्वरूप तथा बहुआयामी भौतिक प्रगति प्रमुख हैं।
7. रिग्स की विकास अवधारणा ने विकास को नया तकनीकी रूप प्रदान किया है।
8. डाउन्स ने अपनी नौकरशाही का सिद्धान्त अपने शोध प्रबन्ध ''Inside Bureaucracy'' में प्रस्तुत किया है। वह अपने नौकरशाही सम्बन्धी नजरिये को सिद्धान्त कहना पंसद करता है न कि मॉडल। इसी तरह नौकरशाह के स्थान पर वह अधिकारी(officials) कहना ज्यादा उपयुक्त समझता है।
9. नौकरशाही सम्बन्धी उसके विश्लेषण की इकाई 'ब्योरो'(officials) है, जिसका अर्थ है- विभाग। ब्योरोज को वह निर्णय-निर्माण का माध्यम मानता है।
10. डाउन्स का निर्णय-निर्माण चार भागों पर आधारित है- शब्दावली की परिभाषा, परिकल्पनाऐं, एक काल्पनिक पर्यावरण तथा पर्यावरण पर लागू परिकल्पनाओं पर आधारित प्रस्ताव।

11. उसने संगठन के सन्दर्भ में ब्योरोज को परिभाषित किया है तथा उनकी चार मौलिक विशेषताऐं बताई हैं- संगठन का बडा आकार, संगठन के सदस्य पूर्ण कालिक कर्मचारी, स्थायित्व और प्रोन्नति उपलब्धियों के आधार पर तथा संगठन के निर्गतनों का आकलन की परिधि से बाहर होना।

12. डाउन्स ने ब्योरोज का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। यह अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाओं पर आधारित है। यह इस प्रकार है- अधिकारी उपयोगिता बढ़ाने वाले होते हैं (Utility Maximizers), अधिकारियों के कुछ जटिल लक्ष्य होते हैं। अधिकारी दो प्रकार के होते हैं, विशुद्ध स्व-हितकारी या आत्म-हितकारी तथा मिश्रित प्रयोजन अधिकारी। आत्म हितकारी भी दो प्रकार के होते हैं, पर्वतारोही अर्थात् अपनी आय, शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बुलन्दी तक ले जाने वाले तथा अनुदार जो यथास्थिति बनाये रखने में लगे रहते हैं। मिश्रित प्रयोजन अधिकारी तीन प्रकार के होते हैं- उत्साही, समर्थक तथा राजनीतिज्ञ।

13. डाउन्स ने ब्योरोज के पर्यावरण की विवेचना की है जिसकी अनेक शर्ते हैं, जिनमें सूचना का संचार; निर्णय-निर्माण की क्षमताऐं तथा पर्यावरण का आन्तरिक स्वरूप।

14. डाउन्स ने ब्योरोज के विश्लेषण में पदसोपान को विशेष मान्यता दी है, जो ब्योरोज के आन्तरिक टकारावों को रोकने में सहायक होती है। पदसोपनीयता के दो रूप हैं, पहला- 'लम्बा' (Tall) तथा दूसरा- 'समतल' (Flat)।

15. डाउन्स ने पदसोपानों में संचार, नियंत्रण और विकृतिकरण की समस्या को स्पष्ट किया है।

16. डाउन्स अपने सिद्धान्त में ब्योरोज की गतिशीलता की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि किस प्रकार से ब्योरोज अस्तित्व में आते हैं और जीवित रहते हैं।

17. ब्योरोज का निर्माण करने वाले कुछ 'उत्साही' (Zealots) होते हैं। वे यहाँ चार साधनों का प्रयोग करते हैं- करिश्मे का, टुकड़े करके, उद्यमकर्मी की तरह तथा, क्रियेशन ऐक्स निहिलों की हैसियत से।

18. डाउन्स के अनुसार ब्योरोज के व्यवहार पर आयू (अवधि) का भी प्रभाव पड़ता है। उसने ब्योरोज के व्यवहार उनके आन्तरिक तत्व तथा ब्योरोज के प्रकार्यों के अनेक पहलुओं की भी चर्चा की है।

19. डाउन्स के सिद्धान्त की अनेक बिन्दुओं पर आलोचना की जा सकती है। विशेष रूप से यह कहा जा सकता है कि उसका सिद्धान्त काल्पनिक तथा परिकाल्पनिक अधिक है व्यवहारिक कम। वह स्वयं को वेबेरियनवाद से मुक्त नहीं कर सका है। यद्यपि उसने कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, लेकिन उसमें अन्त-द्वन्द स्पष्ट है।

12.22 शब्दावली

आधुनिकीकरण (Modernisation)- एक ऐसा शब्द जो आधुनिकता से जुड़ा हुआ है, जो वैज्ञानिक-तार्किक विकास पर जोर देता है और जो जड़ परम्पराओं और रुढ़ियों का विरोधी है।

विवेकशीलता (Discretion)- यहाँ विवेकशीलता का अर्थ है, विकल्पों में से चुने जाने का कौशल।

विवर्तन (Diffraction), अर्थात् एक समाज में अवकलन या भेदात्मक और एककीकरण (Integration) के स्तर को प्रदर्शित करना ही विवर्तन है।

भेदन (Penetration), अर्थात् सरकार की वह क्षमता या योग्यता जिसके आधार पर सरकार निर्णय लेती है।

ब्योरो (Bureau) का शाब्दिक अर्थ- मेज, डेस्क, अल्मारी, पत्राजात लेकिन सिद्धान्त में विभाग, प्रशासनिक संगठन जिसमें काम करने वाले Bureaucrats (अधिकारी) या नौकरशाह कहलाऐ जाते हैं।

कलाइम्बर्स (Climbers) शाब्दिक अर्थ- पर्वतारोही, ऊँचाई पर जाने वाले लेकिन सिद्धान्त में वे लोग जो अपनी शक्ति, आय, प्रतिष्ठा, सुरक्षा इत्यादि को ऊँचाइयों तक ले जाना चाहते हैं, अर्थात् महत्वाकांक्षी अधिकारी।

एक्सोजीनस कन्डीशन्स (Exogenous Conditions) शाब्दिक अर्थ- अनुकूल उदित परिस्थितियाँ, अर्थात् ब्योरोज के अस्तित्व के लिये अनुकूल परिस्थितियों का होना जरूरी है।

एक्स निहिलो (ex nihilo) शाब्दिक अर्थ- 'कुछ नहीं' (nothing) अर्थात्, वह अवधारणा जो वर्तमान विचारों तथा नई परम्पराओं का विरोध करती है।

जीलटस (Zealots) का शाब्दिक अर्थ है, उत्साही या जोशीले। यहाँ वे लोग जो, नित नये ब्योरोज का निर्माण करते हैं।

12.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चार, **2.** रिग्स, **3.** आर्थिक व्यवस्था, **4.** रिग्स, **5.** 'Inside Bureaucracy' **6.** ब्यूरो (Officials) **7.** ब्यूरोज, **8.** निर्णय-निर्माण, **9.** विकास

12.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. S.P. Varma : Modern Political Theory, Poona.
2. Vats Yayan : Principles of Sociology, Meerut.
3. Kumar : Social Change and Social Control, Agra.

4. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
5. Anthony Downs : Inside Bureaucracy, 1964.
6. Joseph La Palombava : (ed) Bureaucracy and Political Development (1963).
7. Max Weber : Bureaucracy in Sociology, 1962.
8. Max Weber : The Routinization of Charisma, The Theory of Social and Economic Organization.
9. Ludvig Yon Mises : Bureaucracy, 1962.

12.25 सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. B.F. Hozelitz : Sociolgical Aspect of Economic Growth.
2. S.N. Eisenstadt : Essays on Sociological Aspects of Political and Economic Development.
3. Neil J. Smelser : The Sociology Life.
4. R.W. Mack : Social Change in Developing Areas.
5. S.P. Varma : Modern Political Science.
6. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
7. D. Ravindra Parasad (ed) : Administrative Thinkers.
8. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक।

12.26 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास की प्रशासनिक अवधारणा क्या है? प्रशासनिक विकास के लक्ष्य, प्रकृति एवं क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
2. रिग्स की विकास की अवधारणा क्या है? रिग्स की विकास अवधारणा के तकनीकी सार पर चर्चा कीजिए।
3. डाउन्स के नौकरशाही के सिद्धान्त के कौन-कौन से भाग हैं? नौकरशाहों की अवधारणा डाउन्स ने क्यों प्रस्तुत की?

4. डाउन्स ने अपने सिद्धान्त में किस इकाई का विश्लेषण किया है? डाउन्स की अधिकारियों (Officials) की अवधारणा क्या है? स्पष्ट करें।
5. डाउन्स ने निर्णय-निर्माण को किस रूप में लिया है? पदसोपान पर डाउन्स के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।